



परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री  
**सुविधिसागर जी महाराज**

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर  
सुविधि-परिवार के द्वारा आयोजित

**जिनवाणी-महोत्सव**



**सहस्रग्रन्थसंग्रह**

\* जन्मदिवस 19-03-1971

\* मुनिदीक्षा-11-05-1989

\* आचार्यपद- 20-06-2004

पट्टाधीशपद- 24-12-2010 (20-06-2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मत्तिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:-

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी-जुलाई 2004) (अक्षयज्योति-अक्तूबर 2004)





# दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि

लेखक  
डॉक्टर कामताप्रसाद जैन

प्रकाशक  
श्री रघुवरदयाल जैन स्मृति ग्रन्थमाला  
दिल्ली

(परम्परानायक)



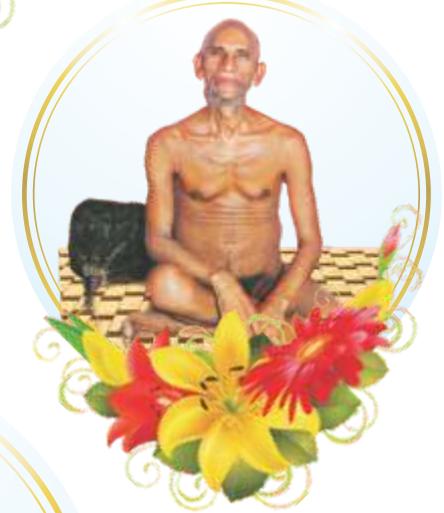
(द्वितीय पट्टाधीश)



परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि,  
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती,  
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज  
(अंकलीकर)

(तृतीय पट्टाधीश)



परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,  
आचार्यश्री सन्मत्तिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)



परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें। मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि-परिवार

पुण्य क्रमांक-1

# दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि

कीर्त्तिका मणि  
स्व. कामताप्रसाद जैन  
जैनशास्त्र वि. एच. एड. प्र.  
जैनशास्त्र वि. एच. एड. प्र.

प्रस्तावना .

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल  
भारत्री, न्यायतीर्थ एम. ए वी एड ,  
जयपुर ( राज )

प्रकाशक .

श्री रघुवरदयाल जैन स्मृति ग्रन्थमाला

B-2/22 सोपिा सेन्टर  
सफदरजंग एनक्लेव  
नई दिल्ली 110 029

संस्करण 1000

१ अक्टूबर १९६१

मूल्य : स्वाध्याय

फोटोटाइपसेटिंग : प्रिन्टोमीटिक्स जयपुर

मुद्रक:

बाहुबली प्रिन्टर्स

लासकोठी

जयपुर-15

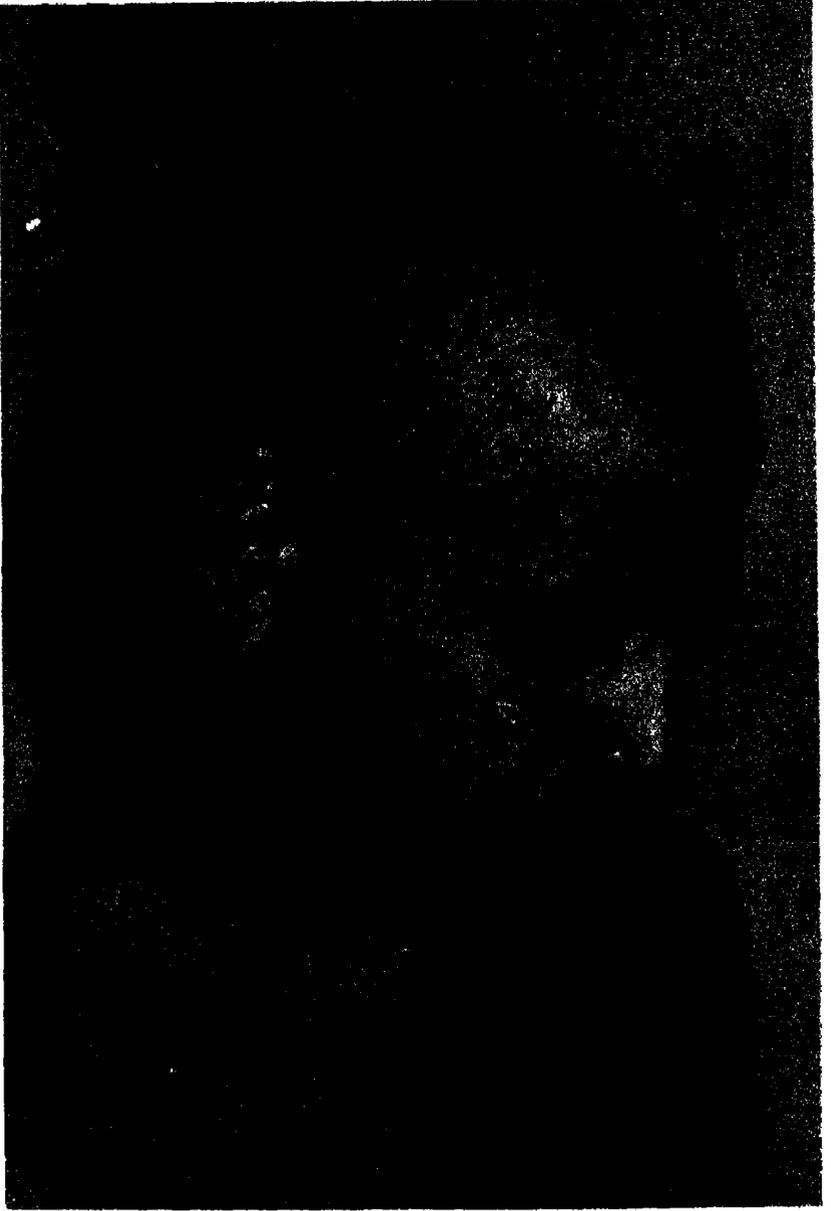
फोन - 62480



## समर्पण

परमपूज्य 108 सन्त शिरोमणि  
आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के  
कर-कमलों में  
सादर समर्पित।

खेमचन्द जैन  
एवं  
- (डॉ. )सत्यप्रकाश जैन  
दिल्ली



दिगम्बर जैनाचार्य १०८ आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

## 108 आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज का चरित्र जीवन परिचय

जन्म	-	विद्या संवत् 2003 अर्थात् श्री सुवर्ण युगिक सदस्य, त्रि. वेल्सिंग (कॉन्टैक)
जन्म-स्थान	-	श्री विद्याधर
श्रीकृष्णस्यारण का नाम	-	श्री मन्मथ जी
पितृ नाम	-	श्री सम्प्रति मुनि श्री सन्नितागार जी
मातृ नाम	-	श्री श्रीमती जी
भाई :	-	( सम्प्रति आश्रम सम्बन्धी जी ) आचार्य श्री के अतिरिक्त तीन भाई श्री योगसागर जी, श्री सम्प्रसागर जी के नाम से मुनि व्रत धारण कर आत्म कल्याण में प्रवृत्त हैं।
मुनि दीक्षा	-	अष्टादश सुदी 5 संवत् 2025 तकनुसार 30 जून 1968 ई. अजमेर।
आचार्य श्री के गुरु	-	परम पूज्य स्वर्गीय 108 आचार्य श्री शानसागर जी महाराज।
आचार्य पद	-	मगसिर कृष्ण 2 संवत् 2029 ई तदनुसार 29 नवम्बर 1972 ई नसीराबाद ( उ.प्र. ) में प्राप्त
भाषाओं तथा विद्याओं में वैदुष्य: -	-	संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, बराठी, हिन्दी, अंग्रेजी एवं कन्नड

**श्रीगुरु हैं उपगारी ऐसे.....**

श्रीगुरु हैं उपगारी ऐसे, वीतराग गुणधारी वे ॥१॥  
 स्वानुभूति रमणी संग ब्रवीं, ज्ञान सम्पदा भारी वे ॥१॥  
 ध्यान पिबरा में जिन रोकै, चित खम चंचलचारी वे ॥२॥  
 तिनके चरण सगेरुह ध्यावै, 'भागचन्द' अघटारी वे ॥३॥

## प्रकाशकीय

मेरे पूज्य पिता स्व. श्री रघुवरदयालजी जैन के जीवन पर उनके दादा स्व. श्री बलदेवकृष्णदा जी, पिता स्व. श्री श्रीपाल जी एव स्व. माता सुखादेवी के धार्मिक संस्कारों का विशेष प्रभाव था।

मेरे पिता के दादा श्री एवं पिता श्री की दोनों पीढ़ियाँ धार्मिक-भावनाओं से ओत-प्रोत थीं ही, उनका धर्माचरण भी अनुकरणीय था। वे धर्म के प्रति समर्पित थे।

मेरे पिताश्री पर उन्हीं के धार्मिक संस्कारों का अप्रतिम प्रभाव था फलस्वरूप उनका सम्पूर्ण जीवन धर्ममय रहा। आप मुक्त भिण्ड निवासी हैं और भिण्ड के मुमुक्षुमंडल स्थापित करने का अधिकांश श्रेय आपको ही जाता है। आप वर्षों तक प्रतिवर्ष, वर्ष में दो-तीन बार ~~मुमुक्षुमंडल~~ कानजीरवासी के प्रवचनों का लाभ लेने के लिए सोनगढ गये।

भिण्ड में 105 क्षु. मनोहरलालजी वर्णा के द्वारा चातुर्मास करने से उनके सान्निध्य का पूरा-पूरा लाभ भी पिता श्री ने लिया तथा उनके आध्यात्मिक प्रवचनों से प्रभावित होकर कई चातुर्मास उन्होंने भी वर्णा जी के कराये।

पू. पिताश्री सम्वत् 1976 में कुण्डलपुर में पूज्य गुरुवर 108 आचार्य विद्यासागर जी महाराज के सम्पर्क में आये। उस समय आचार्य श्री एकदम नवयुवक होते हुए भी ज्ञान व वैराग्य की दृष्टि से वर्तमान सभी मुनिराजों में अग्रगण्य हो गये थे। पिताश्री उनके इस अन्तर्वाह्य व्यक्तित्व से बहुत ही प्रभावित हुए और समय-समय पर उनके सान्निध्य का लाभ भी वे लेते रहे।

आप का चित्त उदारता से ओत-प्रोत था, समय-समय पर सभी क्षेत्रों में यथाशक्ति दान देने के साथ-साथ अतिशय क्षेत्र आहार जी, पपीरा जी एव भिण्ड में भी आपने जिनालयों में निर्माण कराया एव कई बार सम्पूर्ण भारत के तीर्थ स्थानों की यात्रा की। जो कुछ भी यत्किंचित धार्मिक संस्कार मुझ में और मेरे अग्रज आदरणीय श्री खैमचन्द्र जी जैन में दिखाई देते हैं वे भी उन्हीं के धार्मिक संस्कारों का प्रभाव है। उन्हीं की पावन प्रेरणा से मैं पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर महाराज से जुड़ा हूँ।

यद्यपि लौकिक शिक्षा के लिए होस्टल में रहने तथा डाक्टर का व्यवसाय होने के कारण मेरे कदम हागमगा गये, मेरा प्रारंभिक जीवन सदाचार की दृष्टि से अच्छा नहीं रह सका। आधुनिक वातावरण के प्रभाव से मैं थोड़ा सा भटक गया। बाजारू खान-पान के साथ सिगरेट और सुरापान जैसी मोटी आदतें भी मुझ में घर कर गई थीं। पर पूज्य आचार्य विद्यासागरजी के सम्पर्क में आने से उनके निमित्त से अब मैं सभी दुर्व्यसनो से सम्पूर्ण तथा मुक्त हूँ। और समय से पूर्व ही सेवा निवृत्त होकर अपने शेष जीवन को मेने अध्यात्म के लिए समर्पित कर दिया है इसका सम्पूर्ण श्रेय पूज्य आचार्य श्री को ही जाता है। अतः मैं उनके इस ऋण से कभी उक्तण नहीं हो सकता।

प्रत्यर्थ में उनका जितना उपकार करने-बोझा है। सभी सत्यधर्म प्रस्तुत ग्रन्थ से दिगम्बर व दिगम्बर मुनि का यकार्य स्वल्प सम्झकर अपना कल्याण करें यही मेरी भावना है।

पिता श्री की स्मृति में इस ग्रन्थमाला का शुभारंभ किया है। इसके द्वारा मैं जिन्मवाणी की सेवा करता रहूँ ऐसी मेरी भावना है-

- डॉ. सत्यप्रकाश जैन

( निवासी मिण्ड प्रवासी देहली )

प्रकाशक - श्री रघुवरदयाल स्मृति ग्रन्थमाला  
दिल्ली

### धन-धन जैनी साधु अबाधित.....

धन-धन जैनी साधु अबाधित, तत्त्वज्ञान विलासी हो ॥१॥  
दर्शन-बोधमयी निजमूरति, जिनको अपनी भासी हो ।  
त्यागी 'अन्य सम्स्त वस्तु में, अहंबुद्धि दुःखदासी हो ॥१॥  
जिन अशुभोपयोग की परणति, सत्साहित विनाशी हो ।  
होय कदाच शुभोपयोग तो, तहं भी रहत उदासी हो ॥२॥  
छेदत जे अनादि दुःखदायक, दुर्विधि बन्ध की फाँसी हो ।  
मोह-क्षोभ-रहित जिन परणति, विमल मयक कला-सी हो ॥३॥  
विषय-चाह-द्व-दाह खुजावन, साम्य सुधारस-रासी हो ।  
भागचन्द' ज्ञानानन्दी पद, साधत सदा हुलासी हो ॥४॥

## अन्तर्भावना

अनेक संस्कारों के बीच एक तिम्टियाले छोटे से दीपक की भावना हुई, उसके मन में भाव उभा - "जितनी भी मेरी प्रगट सामर्थ्य थी, मैंने अपने संशय प्रकाश से स्वपर का मार्गदर्शन किया, अपना उत्तरदायित्व निभाया। मैं स्वयं जलकर अपना एवं अपने असपास के अंधकार को दूर करने का प्रयास करता रहा।

अब मेरी जीवन ज्योति बुझ रही है। मैं चाहता हूँ कि मेरी बुझने से पहले दूसरा दीपक जलने लगे और इसी तरह दीपक से दीपक जलता रहे। प्रत्येक दीपक अपना प्रकाश पुंज छोड़ कर ही जलते। मेरे पीछे भी धर्म के संस्कारों की ज्योति जलती रहे, प्रकाश फैलता रहे।

जब एक सामान्य सा जल दीपक भी स्वयं अंधकार खोकर दूसरों को प्रकाश देता है तो जीव तो ऐसा ज्ञान का दीपक है, जिसका स्वभाव ही मिथ्यात्व व अज्ञान को नष्ट करना एवं ज्ञान देना है। स्वपर का प्रकाशन करना है। पर मेरे पीछे ऐसे ज्ञातक स्वभाव का सद्गुरु लेना कौन ? वह कर्म करेगा कौन ? उस दीपक के सामने वह एक समर्थक ही, एक प्रश्न था।

इस प्रश्न के उत्तर में उसी दीपक के अंतर से आवाज आई - "भले ही मैं जा रहा हूँ, पर मैं अपने पीछे अपने "सत्यप्रकाश" को जो छोड़े जा रहा हूँ। वह भुद्रात्म के सहारे से अवश्य ही धर्म का प्रकाश करके मेरा स्वप्न साकार करेगा, मेरा अधूरा काम पूरा करेगा।

संभवतः उस दीपक का वह आत्मविश्वास सच ही था। यदि दीपक से उत्पन्न हुआ प्रकाश ही दीपक की भावना पूरी नहीं करेगा तो और कौन करेगा ? मुझे विश्वास है कि मेरा प्रकाश भी इसमें अपना परम सौभाग्य समझेगा और उसे समझना भी चाहिए। प्रकाश का तो काम ही अंधकार दूर करना है। इसके सिवाय सत्यप्रकाश का और काम ही क्या है ?

दीपक की प्रेरणा से प्रकाश ने अपने कर्तव्य को पहचाना, इससे दीपक का आत्म तो संतुष्ट हुआ ही प्रकाश - सत्यप्रकाश भी धन्य हो गया।

वह ज्ञानदीप और कोई नहीं मेरे पूज्य पिता रघुवरदयाल जैन ही थे, जिन्होंने मुझ (सत्यप्रकाश) जैसे पुत्र पर ऐसा आत्मविश्वास प्रगट किया। जैसा उन्होंने मेरा नामकरण किया था, वैसा ही सत्यप्रकाश बनने की सदाप्रेरणा भी दी। पर जब तक काललक्ष्मि व होनहार नहीं आती तब तक न तो अनुकूल निमित्त ही मिलते हैं और न वैसा उद्यम ही होता है। कहा भी है --

तद्गुणी जायते बुद्धि, व्यवसायोऽपि तातृणः ।

साहायः तद्गुणः सन्ति, यादृशी भवितव्यता ॥"

कस वही कारण था कि मैं अपने जीवन के प्रारंभ में कुछ समय के लिए रास्ता भटक गया। मेरे पिताजी इससे निराश नहीं हुए और उन्होंने मुझे परमपूज्य आचार्य विद्यासागर

जैसे विश्व के सागर में मोल लाने की प्रेरणा दी।

इस समय तक मेरी भाव्य रेखाये बदन घुंकी थीं। आचार्य श्री उस समय कुण्डलपुर में विराजमान थे। प्रियश्री की प्रेरणा से मैं चर्च गया। वहाँ आचार्य श्री के प्रवचनों से मेरे जीवन की दिशा ही बदल गई। सधम्य मेरे आत्मा की अन्वयक्रिया ही हो गई। मैं जो अनेक दुर्घटनाओं से अकंठ निगमन ही तब था, वहाँ से निर्ध्वसनी होकर लौटा। मेरे कदम अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ने लगे।

अब तक मेरा नाम जो केवल नाममात्र सत्प्रकाश था, अब मुझे ऐसा लगने लगा कि मैं शीघ्र ही अपने इस नाम को सार्थक कर लूंगा।

तभी पूज्य आचार्यश्री के प्रति मेरी प्रज्ञा हो गई। जिसके निमित्त से जिसका जीवन बदलता है, सही दिशा मिलती है, उसके अन्वय उपकार को जीवन में कभी भुलाया नहीं जा सकता, भूलना भी नहीं चाहिए। उनके द्वारा रचित छन्द द्वारा ही मैं उनसे यह प्रार्थना करता रहता हूँ कि -

अधीर हूँ मुझे धीर दो, सहन करूँ सब पीर।

धीर धीर कर चिर सिखूँ अन्तर की तस्वीर।

आचार्यश्री ने भी नामों मेरे लिए ही वह पद्य लिखा --

तन भिला तो तप करो, करो कर्म का नाश।

रवि रशि से भी अधिक हो, तुम में दिव्यप्रकाश।”

यद्यपि आचार्य श्री का वह संदेश उत्तम है पर मुझे ऐसा लगता है कि बाह्य में शारीरिक स्वास्थ्य की प्रतिकूलता के कारण एव अन्तर में वर्तमान पुण्यार्थ की कमी के कारण इस जन्म में तो मेरी इस भावना की पूर्ति संभव नहीं है, पर मैं भावना भाता हूँ कि अगले जन्मों में शीघ्र ही मुझे यह शक्ति व योग्यता प्राप्त हो, ताकि मैं तत्त्वज्ञान पूर्वक दिगम्बरत्व को अंगीकार करके आत्मा की पूर्ण साधना कर सकूँ। मैं एक बार पुनः आचार्य श्री को नमन करता हुआ अपनी बात से विराम लेता हूँ।

-- सत्प्रकाश जैन

# प्रस्तावना

पण्डित रतनचंद भारिल्ल, जयपुर

दिगम्बर मुनि-गणों इन्द्रियो के विषयों से विरक्त, अतीन्द्रिय आनन्द-रक्षण-संन्यास में अनुभक्त, सभी प्रकार के आरंभ व परिग्रह से रहित दिनरात जाग्रतान एवं तप में निमग्न रहते हैं।

दिगम्बर मुनियों के हृदय में सब जीवों के प्रति पूर्ण समता भाव होता है। उनकी दृष्टि में शत्रु-मित्र, महल-मशाल, कंचन-कॉच, निन्दा-प्रशंसा आदि में कोई भेद नहीं होता; वे पदपूजक और अस्त्र-शस्त्र प्रहारक में सदा समता भाव धारण करते हैं।

दिगम्बर मुनि पूर्ण स्वावलम्बी और स्वाभिमानी होते हैं। उन्हें किंचित् भी अज्ञानता स्वीकृत नहीं है। जब अर्द्धरात्रि में सारा जगत मोह की नींद में आता है तब दिगम्बर मुनि विषयवासनाओं में मग्न होकर मुक्ति के निष्कटक पथ में विचरते हुए जागृत होते हैं, तब दिगम्बर मुनि अनित्य-अशरण आदि कारण-भाव-प्रकार-संसार, शरीर व भोगों की असागता का एव ज्ञान के स्वरूप का ध्यान-भजन करते हुए आत्मध्यान में मग्न रहने का पुरुषार्थ करते रहते हैं। काम-क्रोध-मद-मोह आदि विकारों पर विजय प्राप्त करते हुए अपना मोक्षमार्ग प्रशस्त करते रहते हैं।

वे नवजात शिशुवत् अत्यन्त निर्विकारी होने में मग्न ही रहते हैं। उन्हें वस्त्र धारण करने का विकल्प ही नहीं आता। अतः दयता ही अनुभव नहीं होती। जिस तरह काम वासना से रहित बालक माँ बहिन के समक्ष लजाता नहीं है, शरमाता नहीं है एवं सकोच भी नहीं करता ठीक इसी तरह मुनि भी पूर्ण निर्विकारी होने के कारण लज्जित नहीं होते।

छठवें सातवें गुणस्थान की भूमिका में तप-ग्रहण करने का मन में विकल्प ही नहीं आता। सज्वलन क्रोध-मद-माया लोभ के सिवाय अनन्तानुबन्धी आदि तीनों कषायों की चौकड़ी का अभाव हो जाने से उन के पूर्ण निर्गम्य दशा प्रकट हो गई है। इस तरह जब उनके मन में ही, आत्मा में ही कोई ग्रन्थि (गाँठ) नहीं रही तो तप पर वस्त्र की गाँठ कैसे लग सकती है ?

वैसे सबर व निर्वस्त्र के पक्ष-विपक्ष में अनेकों तर्क दिये जा सकते हैं, उनके लाभ अक्षय्य गिनाये जा सकते हैं। पर वे सब कुतर्क होंगे, क्योंकि वस्तु का स्वरूप में कोई तर्क नहीं चलता। वस्तु का स्वरूप तो तर्क वितर्क से परे है। अग्नि गर्म व पानी ठंडा क्यों है ? नारी के मुखे व मोरनी के पंख क्यों नहीं होते ? इसके पीछे तर्क खोजने की जरूरत नहीं है। हाँ, वैज्ञानिक व मनोवैज्ञानिक कारणों की खोज अवश्य की जा सकती है, पर वस्तुस्वरूप में तर्क-वितर्कों की कतई आवश्यकता नहीं है। लौकिक दृष्टि से भी गांधुओं को सामाजिक सीमाओं में नहीं घेरा जा सकता है, क्योंकि वे लोकव्यवहार से अतीत ही चुके हैं व्यवहारातीत हो चुके हैं। वे जो वनगासी सिंह की तरह पूर्ण स्वतंत्र स्वावलम्बी और अत्यन्त निर्भय होते हैं। इसी कारण वे मुख्यतया बनवासी ही हाते हैं।

यदि कोई पवित्रभाव से दिगम्बर जैन मुनियों के नग्न होने के कारणों को खोजना करना चाहे, शीमासा करना चाहे तो जान सकता है, एतदर्थ निम्नांकित बिन्दु द्रष्टव्य हैं -

नग्नता निर्दोषता, निर्भयता, निश्कता, निर्वेक्षता, निर्विकारता, निश्चिन्तता निर्लोभता की सूचक है। अर्थात् वे निर्दोष हैं निर्भय हैं निश्क हैं, निर्वेक्ष हैं, निर्विकार हैं, निश्चिन्त हैं, निर्लोभी हैं-अतः नग्न हैं। तथा पूर्ण स्वाधीन हैं, संयमी हैं, सहिष्णु हैं, अतः नग्न हैं।

वस्त्र विकार के प्रतीक हैं, पराधीनता के कारण हैं, भय, चिन्ता तथा आकुलता उत्पन्न कराने में एवं ममता, मोह बढ़ाने में नितित्त हैं-अतः मुनि नग्न ही रहते हैं।

2-3 वर्ष के छोटे बालकों में काम विकार नहीं होता तो उसे नग्न रहने में लज्जा नहीं आती, उसी प्रकार मुनियों को व उन्हें देखने वालों को भी लज्जा नहीं आती-अतः मुनि नग्न ही रहते हैं।

जो इन्द्रियों को जीतता है, वही जितेन्द्रिय है। मुनियों ने इन्द्रियों की जीत ली है-अतः वे जितेन्द्रिय हैं। नग्नता जितेन्द्रियता की सूचक है।

जिसे अखण्ड आत्मा को प्राप्त करना हो उसे अखण्ड स्पर्शन इन्द्रियको जीत ही लेना चाहिए। अखण्ड आत्मा का अभिलाषी अखण्ड इन्द्रिय को जीतता है। नग्नता स्पर्शन इन्द्रिय की जीत की पहचान है। जिस तरह शरीर में लगी छोटी सी फांस भी उस हयवेदना का कारण बनती है, उसी तरह एक वस्त्र का भी परिग्रह असीम दुःख का कारण है और जब दिगम्बर मुनि को

जितेन्द्रिय होने से वस्त्रादि की आवश्यकता का अनुभव ही नहीं होता तो वह वस्त्रादि परिग्रह रखकर अनावश्यक दुःख को आमंत्रण ही क्यों देगा ?

जब व्यक्ति को एक वस्त्र की झंझट छूट जाने से हजारों अन्य झंझटों से सहज ही मुक्ति मिल जाती हो, तो वह बिना वजह वस्त्र का बोझा टोपे ही क्यों ? एक लंगोटी के स्वीकार करते ही पूरा का पूरा परिग्रह मध्ये-मद् जाता है ।

उदाहरणार्थ-लंगोटी धारी साधु को दूसरे ही दिन लंगोटी बदलने के लिए दूसरी लंगोटी चाहिए, फिर उसे धोने के लिए पानीसाबुन, रस्तरखाव के लिए पेट्टी, पानी के लिए बर्तन, बर्तन के लिए धर, धर के लिए धरवाली, धरवाली के भरण-पोषण के लिए घंघा-व्यापार कहाँ तक अन्त आयेगा इसका ? पूजन की पवित्र में ठीक ही कहा है -

"फांस तनक सी तन में साले, बाह लंगोटी की दुःख भाले"

सर्वस्त्र साधु पूर्ण अहिंसक, निर्मोही और अपरिग्रही रह ही नहीं सकता। अयाचक, स्वाधीन व स्वावलंबी भी नहीं रह सकता। वह लज्जा परीषहजयी भी नहीं हो सकता, क्योंकि वस्त्र के प्रति अनुराण एवं ममता बिना वस्त्र का शरीर पर बहुत काल तक रहना एवं उसे बदलना संभव नहीं है और राग एवं ममत्व ही तो भावहिंसा, मोह और परिग्रह के लक्षण हैं ।

अन्नपान (भोजन) के पक्ष में भी कदाचित कोई यही तर्क दे सकता है, पर आहार लेना अशक्यानुष्ठान है। आहार के बिना तो जीवन ही संभव ही नहीं है पर वस्त्र के साथ यह समस्या नहीं है ।

दूसरे भोजन यदि स्वाभिमान के साथ निर्दोष व निरन्तराय न मिले तो छोड़ा भी जा सकता है, छोड़ भी दिया जाता है, पर वस्त्र के साथ ऐसा होना संभव नहीं है। उसे तो हर हालत में धारण करना, बदलना ही होगा एवं रख रखाव की व्यवस्था भी करनी ही होगी। अतः वस्त्र धारण करने में दीनता-हीनता एवं पराधीनता की संभावना अधिक है ।

दिगम्बरत्व मुनिराज का भेष या ड्रेस नहीं है, जिसे मानमाने ढंग से बदला जा सके। वह तो उसका स्वाभिवक रूप है, स्वरूप है। अपने मन को इसकी स्वाभाविकता स्वीकृत है, एतदर्थ एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक आर्केमिडीज की उस घटना का स्मरण किया जा सकता है, जिसमें वह सारे नगर में नंगा

धुना था। उसके बारे में कहा जाता है कि-वह एक वैज्ञानिक सूत्र की खोज में बहुत दिनों से परेशान था। दिनरात उसी के सूत्र विचार में डूबा रहता था। एक दिन बाथरूम में नग्न होकर स्नान कर रहा था कि अचानक उसे उस अन्वेषणीय सूत्र का समाधान मिल गया, जिससे उसके हर्ष का ठिकाना न रहा। वह भावविभोर हो स्नान घर से वैसा नंगा ही निकलकर नगर के बीच से गुजरता हुआ दौड़ता-दौड़ता राजा के पास जा पहुँचा। उसे नग्न देखकर राजा को आश्चर्य ही रहा था और हंसी भी आ रही थी। पर उसके लिए वह अस्वभाविक नहीं था। ऐसी धुन के बिना कोई भी शोध-खोज संभव नहीं है। चाहे वह ज्ञान-विज्ञान की हो या सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा की हो।

आर्कमिडीज भी अपने धुन का धुनिया था। राजा क्या कह रहा है, क्या कर रहा है, इसकी परवाह किए बिना वह तो अपनी ही कहे जा रहा था। अपनी उपलब्धि के गीत गाये जा रहा था। अपनी नग्नता पर उसका ध्यान ही नहीं था, दिगम्बरमुनि भी एकसे ही अपने आत्मा की शोध-खोज में इतने मग्न रहते हैं कि उन्हें कपड़े की ग्रंथी लगाने की न तो आवश्यकता होती है, ना शुध होती है और ना ही फुरसत। अतः वे पूर्ण निग्रन्थ ही रहते हैं।

दिगम्बरत्व की स्वाभाविकता, सहजता और निर्विकारता के साथ उसकी अनिवार्यता से अपरिचित कतिपय महानुभवों को मुनि की नग्नता में असम्यता और असामाजिकता दृष्टिगोचर होती है। अतः ऐसे लोग नग्नता से नाक भी सिकोड़ते रहते हैं, धृणा का भाव भी व्यक्त करते रहते हैं, पर उन्हें नग्नता को निर्विकारता की दृष्टिकोण से देखना चाहिए।

हाँ, केवल तन से नग्न होने का नाम दिगम्बरत्व नहीं है, रागद्वेष व कामादि विकारों से रहित होने के साथ नग्न होना ही सच्चा दिगतम्बरत्व है। ऐसी नग्नता अपने में कभी अशिष्टता नहीं हो सकती, लज्जाजनक नहीं हो सकती। निर्विकारी हुए बिना नग्नता निश्चित ही निन्दनीय है। नग्नता के साथ निर्विकार होना अनिवार्य है।

हिन्दु धर्म के प्रसिद्ध पौराणिक पुरुष शुक्राचार्य के कथानक से यह बात अत्यन्त स्पष्ट है कि तन से अज्ञता के साथ मन का निर्विकारी होना कितना आवश्यक है, अन्यथा जो नग्नता पूज्य है वही निन्द्य भी हो जाती है। कहा जाता है कि--शुक्राचार्य युवा थे, पर शिशुवत निर्विकारी थे। अतः सहजभाव से नग्न रहते थे। एक दिन वे एक तालाब के किनारे जा रहे थे, वहाँ

देवकन्यायें निर्वस्त्र होकर स्नान व जलक्रीडा कर रही थी, शुक्राचार्य को देखकर वैसे ही स्नान करती रही, जरा भी नहीं लजाई वे एक दूसरे की नग्नता से जरा भी प्रभावित नहीं हुए।

थोड़ी देर बाद उन्हीं के वयोवृद्ध पिता वहां से निकले उन्हें देखते ही सभी देव कन्यायें लजा गईं वे न केवल लजाई बल्कि क्षुब्ध भी हो गईं। जलक्रीडा को जलाजलि देकर हड़-बड़ में निकली और सबने अपने-अपने वस्त्र पहन लिए और लज्जा से अपनी सब सुध-बुध खो बैठीं।

एक नगे युवा को देखकर तो लजाई नहीं और एक वृद्ध व्यक्ति को देखकर लजा गई, जरा सोचिए इसका क्या कारण हो सकता है ?

बस यही न कि तन से नंगा युवक मन से भी नगा था, निर्विकारी था और उसके पिता अभी मन से पूर्ण निर्विकारी नहीं हो सके थे यह बात नारियों के निगाह से छिपी नहीं रही। रह भी नहीं सकती। कोई कितना भी छिपाये, विकार तो सिरपर चढ़कर बोलता है। "मुखाकृति कह देत है, मैले मन की बात।"

नग्नता से नफरत करने का अर्थ है कि हमें अपना निर्विकारी होना पसंद नहीं है। पापी रहना एवं उसे वस्त्रों से छुपाये रहना ही पसंद है। शरीर में हरे भरे घावों को खुला रखना भी तो मौन को आमंत्रण देना है, अतः यदि मन में विकार के घाव हैं तो तन को वस्त्र से ढकना भी अनिवार्य है।

जिनभावना के बिना अर्थात् निर्विकारी हुए बिना मात्र नग्नता तो कलक ही है। अतः तन की नग्नता के साथ मन की नग्नता अनिवार्य है। इसीलिए तो कहा है कि "सम्यग्ज्ञानी होय, बहुरि दृढचारित्र लीजै"

बिना आत्मज्ञान के भी कभी-कभी व्यक्ति मुनि व्रत अगीकार कर लेता है, जिससे कोई लाभ नहीं होता। आचार्य कुदकुद भाव पाहुड की गाथा 68 में स्वयं लिखते हैं:-

णग्गो पावह दुःखं णग्गो संसार सागरे भभइ ।

णग्गो न लहहि बोहि जिणभावण वज्जिओ सुइरं ।।

जिन भावना से रहित केवल तन नग्न व्यक्ति दुःख पाता है, वह संसार सागर में ही गोते खाता है, उसे बोधि की प्राप्ति नहीं होती। अतः तन से नग्न होने के पहले मन से नग्न अर्थात् निर्विकारी होना आवश्यक है।

जिनागम के सिवाय अन्य जैनैतर शास्त्रों एवं पुराणों में भी दिगम्बर मुनियों के उल्लेख मिलते हैं जो इस प्रकार हैं:-

रामायण में दिगम्बर मुनियों की चर्चा है--सर्ग 14 के 22वें श्लोक में राजा दशरथ जैन श्रमणों को आहार देते बताये गये हैं भूषण टीका में श्रमण का अर्थ स्पष्ट दिगम्बर मुनियों का उल्लेख मिलता है।

हिन्दु धर्म के प्रसिद्ध पुराण श्रीभद्रभागवत और विष्णु पुराण में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का ही दिगम्बर मुनि के रूप में उल्लेख मिलता है। इसी तरह वायुपुराण एवं स्कंध पुराण में भी दिगम्बर जैन मुनियों का अस्तित्व दर्शाया गया है।

बौद्धशास्त्रों में भी ऐसे उल्लेख मिलते हैं जो भगवान महावीर से पहले दिगम्बर मुनियों को होना सिद्ध करते हैं।

ईसाई धर्म में भी दिगम्बरत्व को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि आदम और हव्वा नंगे रहते हुए कभी नहीं लजाये और न वे विचार के चंगुल में फँसकर अपने सदाचार से हाथ धो बैठें! परन्तु जब उन्होंने पापपुण्य का वर्जित (निषिद्ध) फल खा लिया तो वे अपनी प्राकृत दशा छोड़ बैठे और संसार के साधारण प्राणी हो गये।

इसप्रकार हम देखते हैं कि इतिहास एवं इतिहासातीत श्रमण एवं वृष्णव साहित्य के आलोक में उपर्युक्त तथ्यों को उजागर करने वाली "दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि" नामक प्रस्तुत पुस्तक में अपने नाम के अनुरूप ही विषयवस्तु का प्रतिपादन किया गया है। विद्वान् लेखक ने मुख्यतः इतिहास (ईसा पूर्व आठवीं सदी) और इतिहासातीत (वेदों पुराणों में उल्लिखित भगवान ऋषभदेव का काल-एक अज्ञात अतीत) के आलोक में दिगम्बरत्व और दिगम्बरमुनि का अस्तित्व और औचित्य सिद्ध किया है।

लेखक ने अनादिकाल से चली आ रही दिगम्बरत्व की पुनःस्थापना के लिए उसकी उपयोगिता, एवं अनिवार्य आवश्यकता की सिद्धि में न केवल श्रमण संस्कृति को आधार बनाया, बल्कि वैष्णव, शैव, इस्लाम ईसाई, यहूदी आदि सभी भारतीय एवं भारतेतर धर्म, दर्शनों एवं दार्शनिकों के चिंतन के आधार पर दिगम्बरत्व की अनिवार्य आवश्यकता पर भी प्रकाश डाला है। और यत्रतत्र उल्लिखित प्रमाणों के आधार पर आत्मा की साधना एवं मुक्ति की प्राप्ति में दिगम्बरत्व को ही परम उत्कृष्ट साधन सिद्ध किया है। यहाँ तक कहा गया है कि दिगम्बर मुनि हुए निना मोक्ष की साधना, एवं केवल्यप्राप्ति संभव ही नहीं है।

लगभग पचास वर्ष पहले किसी प्रान्त विशेष में ऐसी परम पवित्र नग्नता के आधार पर दिगम्बरमुनियों के विहार करने पर प्रश्नचिन्ह लगाने का असफल प्रयास किया गया था, उनकी नग्नता पर कुतर्क किए गये थे, उसी के परिणामस्वरूप इस शोध-स्रोजपूर्ण पुस्तक का उद्भव हुआ था।

आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। इस उक्ति के अनुसार इस अति उपयोगी पुस्तक का आविष्कार हो गया। पुस्तक निःसंदेह दिगम्बरत्व की सुरक्षा और उसमें आस्था उत्पन्न कराने के लिए वे जोड बन गई है। इसके रहते कोई व्यक्ति दिगम्बरत्व पर कभी भी किसी प्रकार की आशंका व्यक्त नहीं कर सकता।

इस दृष्टि से इस पुस्तक का अपना अलग ही महत्व है। दिगम्बरत्व की पुनःस्थापना के क्षेत्र में इसका जो अमूल्य योगदान है, उसकी कोई मिसाल नहीं हो सकती।

इस प्रयोजन से ऐसी पुस्तकों के प्रचार-प्रसार की भी जरूरत है। इससे किन्हीं-किन्हीं जैनेतरों के मन में दिगम्बर मुनिराजों एवं मूर्तियों की नग्नता के प्रति जो लज्जा का भाव है, वह तो निकलेगा ही दिगम्बरत्व के प्रति आस्था भी उत्पन्न होगी। तथा जिसे अपनी अज्ञानता से नग्नता में निर्लज्जता दिखाई देती होगी, उसका वह भ्रम भी भंग हो जायेगा।

डॉ सत्यप्रकाश जैन ने अपने पिताश्री की पुण्यस्मृति में स्थापित "श्री रघुवरदयाल स्मृति ग्रंथमाला" का शुभारंभ इस पुस्तक के प्रकाशन से आरंभ किया है, यह उनकी दिगम्बरत्व के प्रचार-प्रसार में उनकी रुचि एवं सद्भावना को भी प्रदर्शित करती है।

यद्यपि डॉ. जैन से मेरा बहुत पुराना परिचय नहीं है, पर जब से उनसे मेरी भेंट हुई, मैं उनके कई सद्गुणों से प्रभावित हुआ हूँ। एक तो वे अत्यन्त स्पष्टवादी हैं, दूसरी उनका जीवनखुली किताब की तरह है, जिसमें कोई दुरावधिपाव नहीं है। धर्म व धर्मात्माओं के प्रति उनका पूर्ण समर्पण है। देव-शास्त्र-गुरु के प्रति उनमें श्रद्धाभक्ति तो है ही, सत्य तत्व का समझने की भी उनमें भारी जिज्ञासा है। इसमें उनके पिताश्री द्वारा दिये गये संस्कारों एवं प्रेरणा का ही सर्वाधिक योगदान है।

दिगम्बर जैन समाज इस कृति के लेखक का तो ऋणी रहेगा ही, साथ ही प्रकाशक संस्था भी अनेकश. धन्यवाद का पात्र है इति। शुभ।

पण्डित रतनचंद भारिल्ल



स्व० रघुवर दयाल जी जैन

जन्म स्थान : ग्राम रानीपुरा, जिला- भिण्ड , (म. प्र)

जन्म तिथि : अगहन सुदी पचमी, स. १९७१

पुण्य तिथि : कार्तिक वदी १२, सं. २०४६, तदनुसार, २६ अक्टूबर १९८६

कमः सिद्धिः ।

# दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि

[ 1 ]

दिगम्बरत्व !

( मनुष्य की आदर्श स्थिति )

"मनुष्य मात्र की आदर्श स्थिति दिगम्बर ही है। आदर्श मनुष्य सर्वथा निर्दोष - विकारमूक्त होता है।"

--- च. गांधी ।

"प्रकृति की पुकार पर जो लोग ध्यान नहीं देते, उन्हें तरह-तरह के रोग और दुःख घेर लेते हैं; परन्तु पवित्र प्राकृतिक जीवन बिताने वाले जंगल के प्राणी रोममुक्त रहते हैं और मनुष्य के दुर्गुणों और पापाचारों से बचे रहते हैं।"

-- रिटर्न टु नेचर ।

दिगम्बरत्व प्रकृति का रूप है। वह प्रकृति का दिया हुआ मनुष्य का रूप है। आदम और हव्वा इसी रूप में रहे थे। दिशावे ही उनके अम्बर थे-वस्त्र विन्यास उनका वही प्रकृतिदत्त नग्नत्व था। वह प्रकृति के अंचल में सुख की नींद सोते और आनन्द रेतियाँ करते थे। इसलिये कहते हैं कि मनुष्य की आदर्श स्थिति दिगम्बर है। नग्न रहना ही उसके लिए श्रेष्ठ है। इसमें उसके लिये अशिष्टता और असभ्यता की कोई बात नहीं है, क्योंकि दिगम्बरत्व अथवा नग्नत्व स्वयं अशिष्ट अथवा असभ्य वस्तु नहीं है। वह तो मनुष्य का प्राकृत रूप है ईसाई मतानुसार आदम और हव्वा नग्न रहते हुये कभी न लज्जाये और न वे विकार के चंगुल में फँसकर अपने सदाचार से हाथ धो बैठे। किन्तु जब उन्होंने बुराई-भलाई, पाप पुण्य का वर्जित फल खा लिया, वे अपनी प्राकृत दशा को खो बैठे-सरलता उनकी जाती रही। वे संसार के साधारण प्राणी हो गये, बच्चों को लीजिये, उसे कभी भी अपने नग्नत्व के कारण लज्जा का अनुभव नहीं होता और न उसके माता-पिता अथवा अन्य लोग ही उसकी नग्नता पर नाक भों सिकोड़ते हैं। अशक्त रोगी की परिचर्या स्त्री धाय करती है - वह रोगी अपने कपड़ों की सर सभाल रख्य नहीं कर पाता, किन्तु स्त्री धाय रोगी की सब सेवा करते हुए जरा भी अशिष्टता अथवा लज्जा अनुभव नहीं करती। यह कुछ उदाहरण हैं जो इस बात को स्पष्ट करते हैं कि नग्नत्व वस्तुतः कोई बुरी चीज नहीं है। प्रकृति भला कभी किसी जमाने में बुरी हुई भी है ? तो फिर मनुष्य नग्नता से क्यों शिष्टता है ? क्यों आज लोग नग्न रहना समाज भ्रष्टाचार के

लिये अशुष्ट और घातक समझते हैं ? इन प्रश्नों का एक मीठा सा उत्तर है--"मनुष्य का नैतिक पतन चर्म रोगों को आज पहुंच चुका है - वह पाप में इतना सना हुआ है कि उसे मनुष्य की आदर्श-स्थिति दिगम्बरत्व पर घृणा आती है। अपनेपन को गवाकर पाप के पर्व में कपड़ों का गड्डना ही उसने श्रेष्ठ समझा है।" किन्तु वह भूलता है, पर्वों पाप की जड़ है-वह गदगै का ढेर है। बस, जो जग भी गमझ-विवेक-स काग बना जानता है, वह गदगी को अपना नहीं सकता और नही ही भयनी आदर्श स्थिति दिगम्बरत्व से चिद सकता है।

वस्त्रों का परिधान मनुष्य के लिये लाभदायक नहीं है और न वह आवश्यक ही है। प्रकृति ने प्राणीभार के शरीर का भ्रमन इस प्रकार की है कि यदि वह प्राकृत वेप में रहे तो उसका स्वास्थ्य निरोग और श्रेष्ठ है और उसका मदाचार भी उत्कृष्ट रहे। जिन विद्वानों ने उन मील आदिकों को अध्ययन की दृष्टि से देखा है, जो नगे रहते हैं, वे इसी परिणाम पर पहुंचे हैं कि उन प्राकृत वेप में रहने वाले "जंगली" लोगों का स्वास्थ्य शहरों में बसने वाले सभ्यताभिमानी "सज्जनों" से लाख दर्जा अच्छा होता है और आचार-विचार में भी वे शहरवालों से बड़े-चढ़े होते हैं। इस कारण वे एक वस्त्र परिधान की प्रधानता-युक्त सभ्यता को उच्च कोटि पर पहुंचते स्वीकार नहीं करते।<sup>1</sup> उनका यह कथन है भी ठीक, क्योंकि प्रकृति की होड़ कृत्रिमता नहीं कर सकती। म गाँधी के निम्न शब्द भी इस विषय में द्रष्टव्य हैं -

"वास्तव में देखा जाय तो कुदरतने चर्म के रूप में मनुष्य को योग्य पोशाक पहनाई है। नग्न शरीर कुरूप देख पड़ता है, ऐसा मानना हमारा भ्रम मात्र है। उत्तम-उत्तम मीन्द्र्य के धिय तो नग्न दशा में ही देख पड़ते हैं। पोशाक से माध्याग्न भ्रम को दूर कर हम माना कुदरत के दोषों को दिखला रहे हैं। जैसे जैसे हमारे पास ज्यादा पोष्य होते जाते हैं वेसे ही वेसे हम सजावट बढ़ाते जाते हैं। कोई किन्ही भाति प्रौढ कोई किष्पी कर्तव्य रूपवान बनना चाहते हैं और बनठन कर काच में मुह देख प्रसन्न होते हैं कि "वाह मैं कैसा खूबसूरत हूँ।" बहुत दिनों के ऐसे ही अभ्यास से उत्तम हमारे दृष्टि खराब न हो गई हो तो हम तुरन्त देख सकेंगे कि मनुष्य का उत्तम से उत्तम रूप उस की नग्नतावरथा में भी है और उसी में उस का आरोग्य है।"<sup>2</sup>

1 Having given some study to the subject, I may say that Rev J. T. Wilkinson's remarks upon the superior morality of the races that do not wear clothes is fully borne out by the testimony of the observers. It is true that wearing of clothes goes with a higher state of civilisation and to the extent with civilisation, but it is on the other hand attended by a lower state of health and morality so that no clothed civilisation can expect to attain to a high rank."  
- "Daily News, London" of 18th April 1913

2 आरोग्य पृ. ७७

इस प्रकार सौम्य और स्वस्थ के लिये दिगम्बरत्व अवश्या मन्त्र एक मूल्यमई  
 केंद्रु हैं, किन्तु उसका वास्तविक मूल्य तो मनुष्य समाज में सदाचार की सृष्टि करने में है।  
 नम्रता और सदाचार का अविनाशायी सम्बन्ध है। सदाचार के बिना नम्रता कौड़ी मोल  
 की नहीं है। नगा मन और नगा तन ही मनुष्य की आदर्श स्थिति है। इस के विपरीत मन्दा  
 मन और नगा तन तो निरी प्रभुता है। उसे कौन बुद्धिमान स्वीकार करेगा।

लोगों का अर्थान है कि कण्डे-लत्ते पहनने से मनुष्य शिष्ट और सदाचारी रहता है।  
 किन्तु बात वास्तव में इस के बर-अवस है। कण्डे लत्ते के सहारे तो मनुष्य अपने पाप  
 और विकार को छुपा लेता है। दुर्गुणों और दुराचार का अग्रगण्य बना रह कर भी वह कण्डे  
 की ओट में पाखण्डरूप बना सकता है, किन्तु दिगम्बर वेध में वह असम्भव है। श्री शुक्राचार्य  
 जी के कथानक से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि शुक्राचार्य युवा थे, पर दिगम्बर वेध में रहते  
 थे। एक रोज वह वहा सं जा निकले जहां तालाब में कई देव कन्यायें नगी होकर जल  
 कीड़ा कर रही थी। उनके नगी तन ने देव रक्षणियों में कुछ भी क्षोभ उत्पन्न न किया। वे  
 जैसी की तैसी नहाती रहीं और शुक्राचार्य अपने निकले चले गये। इस घटना के थोड़ी देर  
 बाद शुक्राचार्य के पिता वहां आ निकले। उन को देखते ही देवकन्यायें नहाना धोना भूल  
 गईं। झकपट वे जल के बाहर निकलीं और अपने वस्त्र उन्होंने पहन लिये। एक नगी युवा  
 को देख कर तो उन्हें ग्लानि और लज्जा न आई, किन्तु एक वृद्ध शिष्ट-से -दिखते  
 "सज्जन" को देख कर वे लजा गईं। भला इस का क्या कारण है ? यही न कि नगा युवा  
 अपने मन में भी नगा था-उसे विकार ने नहीं आघेरा था। इस के विपरीत उसका वृद्ध और  
 शिष्ट पिता विकार से रहित न था। वह अपने शिष्ट वेध (1) में इस विकार को छिपाये  
 रखने में सफल था, किन्तु दिगम्बर युवा के लिए वैसा करना असंभव था। इसी कारण वह  
 निर्विकारी और सदाचारी था। अतः कहना होगा कि सदाचार की मात्रा नगी रहने में  
 अधिक है। नंगेपन - दिगम्बरत्व का वह भूषण है। विकार भाव को जीते बिना ही कोई  
 नगा रहकर प्रशंसा नहीं पा सकता। विकारी होना दिगम्बरत्व के लिये कसक है। न वह  
 सुखी हो सकता है और न उसे विदेक-नेत्र मिल सकता है। इसीलिये भगवद्  
 कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं-

भगो पावह, दुर्बलं भगो संसार सागरे भद्र ।

भगो न लहईं बोधि, जिब भावणजिओ सुदूर ।<sup>3</sup>

भावार्थ - "नगा दु ख पाता है, वह संसार सागर में भ्रमण करता है, उसे बोधि  
 विज्ञान दृष्टि प्राप्त नहीं होती, क्योंकि नगा होते हुए भी वह जिन भावना से दूर है। इसका  
 मतलब यही है कि जिन भावना से युक्त नम्रता ही पूज्य है-उपयोगी है। और जिन भावना  
 से मत्स्व रागद्वेषादि विकार भावों को जीत लेना है। इस प्रकार नगा रहना उसी के लिये  
 उपादेय है जो रागद्वेषादि विकार भावों को जीतने में लग गया है-प्रकृति का होकर प्रकृत  
 वेध में रह रहा है। संसार के पाप-पुण्य, बुराई-भलाई का जिसे भान तक नहीं है, यही

दिगम्बरत्व धारण करने का अधिकारी है। और चूंकि सर्वसाधारण गृहस्थों के लिये इस परमोच्च स्थिति को प्राप्त कर लेना सुगम नहीं है, इसलिए भारतीय ऋषियों ने इतना विद्वान गृहस्थागी अरण्यवासी साधुओं के लिये किया है। दिगम्बर मुनि ही दिगम्बरत्व को धारण करने के अधिकारी हैं, यद्यपि यह बात जरूर है कि दिगम्बरत्व मनुष्य की आदर्श स्थिति होने के कारण मानव-समाज के पथ-प्रदर्शक श्री भगवान् ऋषभदेव ने गृहस्थों के लिये भी महीने के पूर्व दिनों में तंग रहने की आवश्यकता का निर्देश किया था<sup>4</sup> और भारतीय गृहस्थ उनके इस उपदेश का पालन एक बड़े जमाने तक करते रहे थे।

इस प्रकार उक्त वक्तव्य से यह स्पष्ट है कि दिगम्बरत्व मनुष्य की आदर्श स्थिति है - आरोग्य और सदाचार का वह पोषक ही नहीं जनक है। किन्तु आज का संसार इतना पाप-ताप से झुलस गया है कि उस पर एक दम दिगम्बर-बारि डाला नहीं जा सकता। जिन्हें विज्ञान-दृष्टि नसीब हो जाती है, वही अभ्यास करके एक दिन निर्दोष दिगम्बर मुनि के वेप में विचरते हुए दिखाई पड़ते हैं उनको देखकर लोगों के मस्तक स्वयं झुक जाते हैं। वे प्रजा-पुत्र और तपो धन लोक कल्याण में निरत रहते हैं। स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, ऊँच-नीच, पशु-पक्षी - सब ही प्राणी उन के दिव्य रूप में सुख-शांति का अनुभव करते हैं। भला-प्रकृति प्यारी क्यों नहीं हो। दिगम्बर साधु प्रकृति के अनुरूप हैं। उन का किसी से द्वेष नहीं - वे तो सब के हैं और सब उन के हैं - वे सर्वप्रिय और सदाचार की मूर्ति होते हैं। यदि कोई दिगम्बर होकर भी इस प्रकार जिन भावना से युक्त नहीं है तो जैनाचार्य कहते हैं कि उसका गन वेप धारण करना निरर्थक है - परमोद्देश्य से वह भटक हुआ है - बड़ लोक और परलोक, दोनों ही उस के नष्ट हैं।<sup>5</sup> बस, दिगम्बरत्व वही शोभनीय है जहा परमोद्देश्य दृष्टि से ओझल नहीं किया गया है। तब ही तो वह मनुष्य की आदर्श स्थिति है।

4 सागर. अ ६ श्लोक ६ व भम्बु. पृ २०५-२०६।

5 "निरटिद्वा नगमरुई उ तप्स, जे उल्लापट्ट विवज्जाल्लमेई,  
इसे विसे नत्ति धरे विलोप, हुइओ विसे विज्जज्ज तत्थ लोप। ४६।"  
- उत्तराध्ययन सूत्र व्या २०

"In vain he adopts nakedness, who errs about matters of paramount interest, neither this world nor the next will be his. He is a loser in both respects in the world." - Js II P 106

## धर्म और दिगम्बरत्व ।

"निष्कामधर्मिणां उदाहृतं परमविभवसिद्धिम् ।

एकही हि मोक्षमार्गो वेदात् न ज्ञानमवा सत्ये ॥ १० ॥"

अर्थात् - अधैतुक-नानस्व और हाथों की भोजनपात्र बनाने का उपदेश जिनेन्द्र ने दिया है। यही एक मोक्ष-धर्म-मार्ग है। इसके अतिरिक्त वेद सब अमार्ग हैं।

"धम्मो वस्तु सहावो" - धर्म वस्तु का स्वभाव है और दिगम्बरत्व मनुष्य का निजरूप है, उसका प्रकृत स्वभाव है। इस दृष्टि से मनुष्य के लिये दिगम्बरत्व परमोपादेय धर्म है। धर्म और दिगम्बरत्व में यहाँ कुछ भेद ही नहीं रहता। सर्वमुख सदाचार के आधार पर टिका हुआ दिगम्बरत्व धर्म के सिवा और कुछ हो भी क्या सकता है ?

जीवात्मा अपने धर्म को गंवये हुये है। लौकिक दृष्टि से देखिये, धाँसे आध्यात्मिक से, जीवात्मा भयभ्रमण के घबकर में पड कर अपने निज स्वभाव से हाथ धोवे बैठा है। लोक में वह नंग आया है। फिर भी समाज-मर्यादा के कृत्रिम भय के कारण वह अपने निजरूप - नानत्व - को खुशी खुशी छोड़ बैठता है। इसी तरह जीवात्मा स्वभाव में सच्चिदानन्द रूप होते हुये भी संसार की माया-ममता में पड कर उस स्वानुभवानन्द से वञ्चित है। इसका मुख्य कारण जीवात्मा की रागद्वेष जनित परिणति है। रागद्वेषमई भावों से प्रेरित होकर वह अपने मन-वचन और काय की क्रिया तद्रत् करता है। इसका परिणाम यह होता है कि उस जीवात्मा में लोक में भरी हुई पौरुषिक कर्म-वर्णणवे आकर-घिपट जाती हैं और उनका आवरण जीवात्मा के ज्ञान-दर्शन आदि गुणों को प्रकट नहीं होने देता। जितने अंशों में वे आवरण कम या ज्यादा होते हैं उतने ही अंशों में आत्म के स्वाभाविक गुणों का कम या ज्यादा प्रकाश प्रकट होता है। यदि जीवात्मा अपने निजस्वभाव को पाना चाहता है तो उसे इन सब की कर्म सबन्धी आवरणों को नष्ट कर देना होगा, जिनका नष्ट कर देना संभव है।

इस प्रकार जीवात्मा के धर्म-स्वभाव-के घातक उसके पौदात्मिक सम्बन्ध हैं। जीवात्मा को आत्म-स्वातंत्र्य प्राप्त करने के लिये इस पर-सम्बन्ध को बिल्कुल छोड़ देना होगा। पार्थिव ससर्ग से उसे अकृत हो जाना होगा। लोक और आत्मा - दोनों ही क्षेत्रों में वह एक मात्र अपनी उद्देश्य प्राप्ति के लिये सतत् उद्योगी रहेगा। बाहरी और भीतरी सब ही प्रपंचों से उसका कोई सरोकार न होगा। परिग्रह नाम मात्र को वह न रख सकेगा। यथा ज्ञातरूप में रह कर वह अपने विभावमई रागादि कषाय भवुओं को नष्ट करने पर तुल रहेगा। ज्ञान और ध्यान भस्त्र लेकर वह कर्म-सम्बन्धों को बिल्कुल नष्ट कर देगा। और तब वह अपने स्वरूप को पा लेगा। किन्तु यदि वह सत्य मार्ग से जरा भी विचलित हुआ और बल बराबर परिग्रह के मोह में जपझुके तो उसका कभी ठिकाना नहीं। इसीलिये कहा गया है कि-

बालगोदिकर्ता परिग्रहग्रहण न होई साधूना ।

भुञ्जि परिग्रहपत्तौ दिगम्बरं ब्रह्मचर्यमग्नि ॥ 17 ॥

भावार्थ :- बाल के अग्रभाग-नोक के बराबर भी परिग्रह का ग्रहण साधु के नहीं होता है। वह आहार के लिये भी कोई बरतन नहीं रखता-खाय ही उसके भोजनपात्र है और भोजन भी वह दूसरे का दिया हुआ एक स्थान पर और एक दके ही ऐसा ग्रहण करता है जो प्रासुक है-स्वयं उसके लिये न बनाया गया हो !

अब भला कहिये, जब भोजन से भी कोई नश्वर न रखती यई-दूसरे शब्दों में जब शरीर से ही ममत्त्व हटा लिया गया तब अन्य परिग्रह दिगम्बर साधु कैसे रखेगा ? उसे रखना भी नहीं चाहिये, क्योंकि उसे तो प्रकृत रूप आत्मस्वातंत्र्य प्राप्त करना है, जो संसार के पार्थिव पदार्थों से सर्वथा भिन्न है ! इस अवस्था में वह वस्त्रों का परिधान भी कैसे रख सकेगा ? वस्त्र तो उसके मुक्ति-मार्ग में अर्गला बन जायेंगी। फिर वह कभी भी कर्म-बन्धन से मुक्त न हो पायेगा। इसीलिये तत्त्ववेत्ताओं ने साधुओं के लिये कहा है कि-

अहं जाय स्वस्त्रिसो तिलतुल्यविरतं न विदधि हस्तेषु ।

अहं लेह अप्यपबुधुवं तन्नो पुन अहं निगोदन् ॥ 18 ॥

अर्थात् - मुनि कदाजातस्य है-जैसा जन्मता बालक ननरूप होता है वैसा ननरूप दिगम्बर मुद्रा का धारक है- वह अपने हाथ में शिकके तुप मात्र भी कुछ ग्रहण नहीं करता। यदि वह कुछ भी ग्रहण करने को वह निगोद से उबता है !

परिग्रहधारी के लिये आत्मोन्नति की पराकाष्ठा या लेना असंभव है। एक लंगोटीवत् के परिग्रह के मोह से साधु किस प्रकार पतित हो सकता है, वह धर्मात्मा सज्जनों की जानी सुनी बात है। प्रकृति तो कृत्रिमता की सर्वानुति चाहती है-तब ही वह प्रसन्न होकर अपने पूरे सौन्दर्य को विकसित करती है। चाहे पैगम्बर या तीर्थंकर ही क्यों न हो, यदि वह गृहस्थाश्रम में रह रहा है- समाज मर्यादा के आत्मिमुख बन्धन में पड़ा हुआ है-तो वह भी अपने आत्मा के प्रकृत रूप को नहीं पा सकता ! इसका एक कारण है। वह यह कि धर्म एक विज्ञान है। उनमें कहीं किसी जमाने में भी किसी कारण से रथमात्र अन्तर नहीं पड़ सकता है ! धर्म विज्ञान कहता है कि आत्मा स्वाधीन और सुखी तब ही हो सकता है जब वह पर-सम्बन्ध, पुद्गल के ससर्ग से मुक्त हो जावे। अब इस नियम के होते हुये भी पार्थिव वस्त्र-परिधान को रखकर कोई यह चाहे कि मुझे आत्मस्वातंत्र्य मिल जाय तो उसकी वह चाह अकाम-कुसुम को पाने की आशा से बढकर न कही जायेगी। इसी कारण जैनाचार्य पहले ही सावधान करते हैं कि--

न वि सिञ्चइ वस्त्रवरो जिणसासन्न जइवि होइ तित्थवरो ।

बग्गो विनोवज्जग्गो सैसा उन्नाग्गवा सव्वे ॥ 23 ॥

भावार्थ - जिन ज्ञासन में कहा गया है कि वस्त्रधारी मनुष्य मुक्ति नहीं पा सकता है, जो तीर्थंकर होते तो वह भी गृहस्थाश्रम में मुक्ति को नहीं पाते हैं - मुनि दीक्षा लेकर जब दिगम्बर वेध धारण करते हैं तब ही मोक्ष पाते हैं। अतः ननन्व ही मोक्षमार्ग है-बाकी सब लिंग उन्मार्ग है।

धर्म के इस वैज्ञानिक नियम के काबल संस्कार के प्रायः सब ही प्रमुख प्रवर्तक रहे हैं, जैसे कि ज्ञाने के पृष्ठों में व्यक्त किया गया है और उनका इस नियम - दिगम्बरत्व - को मान्यता देना ठीक भी है, क्योंकि दिगम्बरत्व के बिना धर्म का मूल्य कुछ भी शेष नहीं रहता - वह धर्मरसमय रह ही नहीं पाता है। इस प्रकार धर्म और दिगम्बरत्व का सम्बन्ध स्पष्ट है।

### सम आराम विहारी साधुजन.....

सम आराम विहारी साधुजन, सम आराम विहारी ॥१८॥  
 एक कल्पतरु पुष्पन सेती, जजत भक्ति विस्तारी ॥१॥  
 एक कण्ठविच सर्प नाखिया, क्रोध दर्पजुत भारी ।  
 राखत एक वृत्ति दोउन में, सब ही के उपगारी ॥२॥  
 व्याघ्रबाल करि सहित नन्दिनी, व्याल नकुल की नारी ।  
 तिनके चरन-कमल आश्रय तैं, अरिता सकल निवारी ॥३॥  
 अक्षय अतुल प्रमोद विधायक, ताकौ धम्म अपारी ।  
 काम धरा विच गढ़ी सो चिरतैं, आतमनिर्नाध अविकारी ॥४॥  
 खनत ताहि लैकर कर मे जे, तीक्ष्ण बुद्धि कुदारी ।  
 निज शुद्धोपयोगरस चाखत, पर-ममता न लगारी ॥५॥  
 निज सरधान ज्ञान चरनात्मक, निश्चय शिवमगचारी ।  
 'भागचन्द' ऐसे श्रीपति प्रति, फिर-फिर ढोक हमारी ॥६॥

## दिगम्बरत्व के आदि प्रचारक ऋषभदेव ।

"भुवनाम्भोजं नारीचं धर्मोत्तमं परोधार्यम् ।  
केचि कल्पतरुं नीचि देवदेवैरुत्तमैश्च यजन् । - ज्ञानार्थ

दिगम्बरत्व प्रकृति का एक रूप है। इस कारण उसका आदि और अन्त कहा ही नहीं जा सकता। यह तो एक सनातन नियम है, किन्तु उस पर भी इस परिच्छेद के शीर्षक में श्री ऋषभदेव जी को दिगम्बरत्व का आदि प्रचारक लिखा है। इसका एक कारण है। विवेकी सज्जन के निकट दिगम्बरत्व केवल नग्नता मात्र का द्योतक नहीं है, पूर्व परिच्छेदों को पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो गई है। वह रागादि विभाव भाव को जीतने वाला क्या आता रूप है और नग्नता के इस रूप का संस्कार कभी न कभी किसी महापुरुष द्वारा जरूर हुआ होगा। जैनशास्त्र कहते हैं कि इस कल्पवृक्ष में धर्म के आदि प्रचारक श्री ऋषभदेव जी ने ही दिगम्बरत्व का सबसे पहले उपदेश दिया था।

एक ऋषभदेव अर्थात् मनु नाभिस्य के सुपुत्र थे और वह एक अत्यन्त प्राचीन काल में होते थे, जिसका पता लगना सुगम नहीं है। हिन्दू शास्त्रों में जैनों के इन पहले तीर्थंकर को ही विष्णु का आठवाँ अवतार माना है और वहां भी इन्हें दिगम्बरत्व का आदि प्रचारक बताया है। जैनाचार्य उन्हें "योगिकल्पतरु" कहकर स्मरण करते हैं।

हिन्दुओं के धीमदभयवत में इन्हीं ऋषभदेव का वर्णन है और उसमें उन्हें परमहंस-दिगम्बर-धर्मका प्रतिपादक लिखा है, यथा -

"एवमुक्त्यात्सयात्सजन् स्वयमनुशिष्टानपि लोकानुभासनाथं महानुभाव परमसुदृढ  
भक्त्यानुसूची देव उपभ्रमशीत्सानानुपरतकर्मणाम् महामुनीना भक्तिज्ञान वैराग्यलक्षणम्  
पद्मप्रदीपकमंभुर्गुणैश्चैवमभः स्वतन्वभतज्यैष्ठं परमभावतं भागवज्जनपरायणं भरत  
धर्मोत्तमं नारायणभिरिष्य स्वयं भवन परोक्षरित शरीरं मात्र परिग्रह उन्मक्त इव गगनपरिधन  
प्रकीर्णितं चारुचन्दनं पिता हयनीयो ब्रह्मावर्तार्ति प्रवक्ष्याज ॥ 29 ॥ भागवतस्कन्ध 5 अ. 5

अर्थात् - "इस भाति महाशक्ती और सबके सुदृढ ऋषभ भगवान् ने, यद्यपि उनके पुत्र सब भाति से चतुर थे, परन्तु मनुष्यों को उपदेश देने के हेतु, प्रशान्त और कर्मज्ञान से रहित महामुनियों को भक्तिज्ञान और वैराग्य के दिखाने वाले परमहंस आधम की शिक्षा देने के हेतु, अपने ही पुत्रों में ज्येष्ठ परम भागवत, हरि भक्तों के सेवक भरत को पृथ्वी याज्ञिक के हेतु, राज्याभिवेक कर तत्काल ही संसार को छोड़ दिया और आत्मा में होमाग्नि का आरौप्य कर केश खोल उन्मत्त की भाति नग्न हो, केवल शरीर को सग ले, ब्रह्मावर्त से नग्नहंस धारण कर चल निकले।"

इस उद्धरण से ऋषभदेव का परमहंस-दिगम्बर-धर्म शिक्षक होना स्पष्ट है।

कहा इसी ग्रन्थ के स्कंध 2 अध्याय 7 पृ. 76 में इनके "विद्यमान और जैनमत का सम्बन्ध बताने" उसके टीकाकार ने लिखा है।<sup>6</sup> कुछ लोगों ने उसी विद्यमान को शक्ति के द्वारा व्याख्या बतलाया है -

मन्वेरणां युक्त आत्मसु दीव सुतु-  
 शैवैव चर संगडम् जड योगवर्त्तम् ।  
 यद् धारणार्थं यन्मन्त्रः पदमन्त्रादि  
 स्वस्वः प्रधातुकरचः परिमुक्त संमः ॥१०॥

उपर हिन्दुओं के प्रसिद्ध योगशास्त्र "हठयोगप्रदीपिका" में सबसे पहले मंगलाधरण के तौरपर आदिनाथ ऋषभदेव की स्तुति की गई है और वह इस प्रकार है -<sup>7</sup>

श्री आदिनाथ नवोऽनु तर्ष्व,  
 शैवोपदिष्टा हठयोगविद्या ।  
 विभाजते प्रोक्ततराज योग-  
 नारदोऽपि चोपरधिरेशिगीव ॥१॥

अर्थ - "श्री आदिनाथ को नमस्कार हो, जिन्होंने उस हठ योग विद्या का सर्वप्रथम उपदेश दिया जो कि बहुत ऊंचे राजयोग पर आरोहण करने के लिये नरैनी के समान है।"

हठयोग का श्रेष्ठतम रूप विद्यमान है। परमहंस मार्ग ही तो उत्कृष्ट योगमार्ग है। इसी से "नारद परिव्रजकोपनिषद्" में योगी परमहंसस्य साक्षान्मोक्षसाधनम् इस वाक्य द्वारा परमहंस योगी को साक्षात् मोक्ष का एक मात्र साधन बतलाया है। सद्यन्तु "अजैन शास्त्रों में जहां कहीं श्री ऋषभदेव - आदिनाथ - का वर्णन आया है, उनको परमहंस मार्ग का प्रवर्तक बतलाया है।"<sup>8</sup>

किन्तु मध्यकालीन साम्प्रदायिक विद्वेष के कारण अजैन विद्वानों को जैन धर्म से ऐसी छिद्र हो गई कि उन्होंने अपने धर्मशास्त्रों में जैनों के महत्त्वसूचक वाक्यों का या तो स्मरण कर दिया अथवा उनका अर्थ ही बदल दिया।<sup>9</sup> उदाहरण के रूप में उपरोक्त (हठयोग प्रदीपिका) के श्लोक में वर्णित आदिनाथ को उसके टीकाकार शिव (महादेव जी) बताते हैं, किन्तु वास्तव में इसका अर्थ ऋषभदेव ही होना चाहिये, क्योंकि प्रार्यों 'अमरकोषादि' किसी भी कोष ग्रन्थ में महादेव का नाम आदिनाथ नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त यह बात

6 जिनेन्द्रमत द्रष्टव्य, प्रथम भाग पृ. १०

7 "अनेकान्त" कर्ष १ पृ. ५३८

8 अनेकान्त, कर्ष १ पृ. ५३६

9 श्री टोडरमस जी द्वारा उल्लिखित हिन्दू शास्त्रों के अवतरणों का पता आजकल के छपे हुए ग्रन्थों में नहीं मिलता। किन्तु उन्हीं ग्रन्थों की प्राचीन प्रतियों में उनका पता मिलता है, यह बात पं. मधुसूदनलाल जी जैन अपने 'वेद पुराणादि ग्रन्थों में जैनधर्म का अस्तित्व' नामक टैकट (पृ. ४१-५०) में प्रकट करते हैं। प्रो. सरध्वन्प्रयोगीपाल एम. ए. काव्यतीर्थ आदि ने भी हिन्दू 'पद्मपुराण' के विषय में यही बात प्रकट की थी। (देखो J.G. XIV 90)

भी ध्यान देने योग्य है कि श्री ऋषभदेव के ही सम्बन्ध में यह वर्णन जैन और अजैन शास्त्रों में मिलता है - किसी अन्य प्राचीन मत प्रवर्तक के सम्बन्ध में नहीं-कि वह स्वयं दिगम्बर रहे थे और उन्होंने दिगम्बर धर्म का उपदेश दिया था। उस पर 'परमहंसोपनिषद्' के निम्न वाक्य इस बात को स्पष्ट कर देते हैं कि परमहंस धर्म के स्थापक कोई जैनाचार्य थे -

"तदेतद्विज्ञाय ब्रह्मण पात्र कमण्डलुं कटिसूत्रं कौपीनं च तत्सुर्वमस्यसिविसुज्याय जातरूपधरश्चरे दात्मानिमन्विच्छेद यथाजातरूपधरो निर्वृद्धे निष्परिग्रहस्तत्त्वब्रह्ममार्गं सम्यक् सम्पन्न शुद्ध मानस प्राणसंधारणार्थं यथोक्तकाले पद्य गृहेषु करपात्रेणावाधिताहार माहरन् लम्भोलम्भे समाभूत्वा जिर्मम शुक्लध्यानपरायणोऽध्यात्मनिष्ठ शुभाशुभकर्मनिर्मूलनपर परमहंस. पूर्णानन्दकबोधस्तदब्रह्मोहमस्मीति ब्रह्मप्रणयमनस्मरन् भ्रमर कीटकन्यायेन शरीरत्रयमुत्सृज्य देहत्याग करोति स कृतकृत्यो भवतीत्युपनिषद्<sup>10</sup>

अर्थात् - "ऐसा जानकर ब्रह्मण ( ब्रह्मज्ञानी ) पात्र, कमण्डलु, कटिसूत्र और लम्गोटी इन सब चीजों को पानी में विसर्जन कर जन्मसमय के वेव को धारण कर - अर्थात् बिल्कुल नग्न होकर - विचरण करे और आत्मान्वेषण करे। जो यथाजातरूपधारी ( नग्न दिगम्बर ), निर्वृद्ध, निष्परिग्रह, तत्त्वब्रह्ममार्ग में भले प्रकार सम्पन्न, शुद्ध हृदय, प्राणधारण के निमित्त यथोक्त समय पर अधिक से अधिक पाद्य घरों में बिहार कर कर-पात्र में अयाचित भोजन लेने वाला तथा लाभालाभ में समचित्त होकर निर्ममत्व रहने वाला, शुक्लध्यान परायण, अध्यात्मनिष्ठ, शुभाशुभ कर्मों के निर्मूलन करने में तत्पर परमहंस योगी पूर्णानन्द का अद्वितीय अनुभव करने वाला वह ब्रह्म मैं हूँ, ऐसे ब्रह्म प्रणव का स्मरण करता हुआ भ्रमरकीटक न्याय से ( कीड़ा भ्रमरी का ध्यान करता हुआ स्वयं भ्रमर बन जाता है, इस नीति से ) तीनों शरीरों को छोड़कर देहत्याग करता है, वह कृतकृत्य होता है, ऐसा उपनिषदों में कहा है।"

इस अवतरण का प्रायः सारा ही वर्णन दिगम्बर जैन मुनियों की चर्चा के अनुसार है, किन्तु इसमें विशेष ध्यान देने योग्य विशेषण 'शुक्लध्यानपरायण' है, जो जैन धर्म की एक खास चीज है। "जैन के सिवाय और किसी भी योग ग्रन्थ में शुक्लध्यान का प्रतिपादन नहीं मिलता। परंतजलि ऋषि ने भी ध्यान के शुक्लध्यान आदि भेद नहीं बनलाये। इसलिए योग ग्रंथों में आदि-योगाचार्य के रूप में जिन आदिनाथ का उल्लेख मिलता है वे जैनियों के आदि तीर्थंकर श्री आदिनाथ से भिन्न और कोई नहीं जान पड़ते।"<sup>11</sup>

"अथर्ववेद के जाबालोपनिषद् ( सूत्र 6 ) में परमहंस सन्यासी का एक विशेषण निर्गन्ध भी दिया है<sup>12</sup> और यह हर कोई जानता है कि इग्न नग्न से जैनी ही एक प्राचीनकाल से प्रसिद्ध है। बौद्धों के प्राचीनशास्त्र इस बात का खुला उल्लेख करते हैं।<sup>13</sup> जैनधर्म के श्री

10 अनेकान्त, वर्ष १ पृ ५३६-५४०

11 अनेकान्त, वर्ष १ पृष्ठ ५४१

12 "यथा जातरूपधरो निगन्धोनिष्परिग्रह " इत्यादि - दिनु पृ ८

13 जैकोबी प्रभृत विद्वानों ने इस बात को सिद्ध कर दिया है (Js Pt II Intro) 'भया की प्रस्तावना तथा सजै देखो'

मन्व्य ऋषि को उपनिषद्कार ने उग्रह और प्रयुक्त करके यह अष्टमी तरह दर्शा दिया है कि दिगम्बर साधु नारी का मूल श्रोत जैनधर्म है। और उग्रह हिन्दू पुराण इस बात को स्पष्ट करते ही हैं कि ऋषभदेव, जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर ने ही परमहंस दिगम्बर धर्म का उपदेश दिया था। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि श्री ऋषभदेव वेद-उपनिषद् ग्रंथों के रचने जाने के बहुत पहले ही धुके थे। वेदों में स्वयं उनका और 16 वें अवतार कामन का उल्लेख मिलता है।<sup>14</sup> अतः निस्सन्देह भ. ऋषभदेव ही यह महापुरुष हैं जिन्होंने इस युग की आदि में स्वयं दिगम्बर वेद धारण करके सर्वज्ञता प्राप्त की थी<sup>15</sup> और सर्वज्ञ होकर दिगम्बर धर्म का उपदेश दिया था। वही दिगम्बरत्व के आदि प्रचारक हैं।

संत साधु बन के विचरू.....

संत साधु बन के विचरूँ, वह घड़ी कब आयेगी।  
 चल पड़ूँ मैं मोक्ष पथ में, वह घड़ी कब आयेगी ॥१॥  
 हाथ में पीछी कमण्डल, ध्यान आत्म राम का।  
 छोड़कर घरबार दीक्षा, की घड़ी कब आयेगी ॥१॥  
 आयेगा वैराग्य मुझको, इस दुःखी संसार से।  
 त्याग दूँगा मोह ममता, वह घड़ी कब आयेगी ॥२॥  
 पांच सभिति तीन गुप्ति, बाइस परिषह भी सहुँ।  
 भावना बारह जु भाऊँ, वह घड़ी कब आयेगी ॥३॥  
 बाह्य उपाधि त्याग कर, निज तत्त्व का चिंतन करूँ।  
 निर्विकल्प होवे समाधि, वह घड़ी कब आयेगी ॥४॥  
 भव भ्रमण का नाश होवे, इस दुःखी संसार से।  
 विचरूँ मैं निज आत्मा में, वह घड़ी कब आयेगी ॥५॥

14 "विष्णुपुराण" में भी श्री ऋषभदेव को दिगम्बर लिखा है।

[Nishabha Deva ... naked, went the way of the great road"  
 (महाध्यानम्) - Wilson's Vishnu Purana, Vol. II (Book II ch 1) pp 103-104]

15 श्री नद्भागवत में ऋषभदेव को 'स्वयं भगवान् और कैवल्यपति' बताया है। (विकी भा ३ प ४४४)

## हिन्दू धर्म और दिगम्बरत्व ।

"सन्ध्यासः षड्विधो भवति: कुटीचक - बहुदक - हंस- परमहंस-  
तुरिया - तीत - अक्धूतपथेति ।" - सन्ध्यासोपनिषद् 13

भगवान् ऋषभदेव जब दिगम्बर होकर वन में जा रहे, तो उनकी देखा देखी और भी बहुत से लोग नंग होकर इधर-उधर घूमने लगे। दिगम्बरत्व के मूल तत्त्व को वे समझ न सके और अपने मनमाने ढंग से उदर पूर्ति करते हुये वे साधु होने का दावा करने लगे। जैनशास्त्र कहते हैं कि इन्हीं सन्यासियों द्वारा सांख्य आदि जैनतर सम्प्रदायों की सृष्टि हुई थी।<sup>16</sup> और तीसरे परिच्छेद में स्वयं हिन्दूशास्त्रों के आधर से यह प्रकट किया जा चुका है कि श्री ऋषभदेव द्वारा ही सर्वप्रथम दिगम्बर धर्म का प्रतिपादन हुआ था। इस अवस्था में हिन्दू ग्रंथों में भी दिगम्बरत्व का सम्माननीय वर्णन मिलना आवश्यक है।

यह बात जरूर है कि हिन्दूधर्म के वेद और प्राचीन तथा वृद्ध उपनिषदों में साधु के दिगम्बरत्व का वर्णन प्रायः नहीं मिलता। किन्तु उनके छोटे-मोटे उपनिषदों एवं अन्य ग्रंथों में उसका खास ढंग पर प्रतिपादन किया गया मिलता है। "भिषुकुउपनिषद्"<sup>17</sup> - सत्यव्यनीध उपनिषद्<sup>18</sup> ब्राह्मवत्य उपनिषद् - "परमहंस-परिवाजक-उपनिषद्" आदि में कृपि सन्यासियों के चार भेद (1) कुटीचक, (2) बहुदक, (3) हंस, (4) परमहंस - बताये गये हैं, परन्तु "सन्यासोपनिषद्" में उनको छे प्रकार का बताया गया है अर्थात् उपरोक्त चार प्रकार के सन्यासियों के अतिरिक्त (1) तुरियातीत और (2) अक्धूत प्रकार के सन्यासी और गिनाये हैं।<sup>19</sup> इन इन्हीं में पहले तीन प्रकार के सन्यासी त्रिदण्ड धारण करने के कारण त्रिदण्डी कहलाते हैं और शिखा या जटा तथा वस्त्र कौपीन आदि धारण करते हैं।<sup>20</sup> परमहंस परिवाजक शिखा और यज्ञोपवीत जैसे द्विजचिन्ह धारण नहीं करता और वह एक दण्ड ग्रहण करता तथा एक वस्त्र धारण करता है अथवा अपनी देह में भ्रम रमा लेता है।<sup>21</sup>

16 आदिपुराण पर्व १८ श्लो. ६२ व (Rishabh.p 112)

17 "अथभिषुणम् साधर्मोनाम् कुटीचक - बहुदक - हंस-परम-हंसाश्चेति दत्तार ।"

18. "कुटीचकी - बहुदकी - हंसः परमहंस-इत्येति पण्डित्वाक. चतुर्विधा भवन्ति ।"

19 "स सन्यासः षड्विधो भवति कुटीचक बहुदक हंस परमहंस तुरीयातीतसवधत्तामथेति ।"

20 "कुटीचक. शिखायज्ञोपवीती दण्डकमण्डलुधर कौपीनशाटीकन्याधर पितृमत्स्युर्वीराधनपर पिङ्गरक्षमित्रशिखादिभान्नसाधनपर एकत्रान्नादनपर श्वतोद्यपुरहुधारी त्रिदण्ड । बहुदक शिखादि कन्याधरविपुण्डधारी कुटीचकवत्सवसमी मधुकरवृत्त्याकपलाशी । हंसी जटाधारी त्रिपुराडोद्युपुण्डधारी असंबलुदाधुकरान्नाशी कौपीनखण्डतुण्डधारी ।

21 परमहंस शिखायज्ञोपवीत रहित पद्मगृहेषु करपात्री एक कौपीनधारी जातीमेकमेकं केनैवं दण्डमेकशाटीधारी वा भ्रमोहसन पर. ।

वह तुरियातीत परियोजना किन्तुस दिग्गमर कोश है और यह परमहंस निम्नो का कर्मण करता है।<sup>22</sup> अन्तिम अक्षरत पूर्ण दिग्गमर और निम्नो है--यह सत्यता निम्नो की भी परमहंस नहीं करता।<sup>23</sup> तुरियातीत अवस्था में परमहंस परमहंस परियोजना को निम्नो की रचना पकड़ है किन्तु उसे दिग्गमर जैन मुनि की तरह केवलकृष्ण नहीं करता-- यह अवस्था सिर बुझाह (पुण्ड) है और अक्षरत पद तो तुरियातीत की मरण अवस्था है।<sup>24</sup> इस कारण इन दोनों भेदों का समावेश परमहंस भेद में ही निर्मित किन्हीं उपनिषदों में मान लिया गया है। इस प्रकार उपनिषदों के इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि एक समय किन्तु धर्म में भी दिग्गमरत्व को विशेष आदर निम्नो का और यह सत्यता मोक्ष का कारण माना गया था। उस पर काण्डनिक सम्प्रदाय में तो यह सूत्र ही प्रचलित रहा, किन्तु वहां यह अपनी धार्मिक परिवर्तन को बैठा, क्योंकि वहां वह भोग की वस्तु रहा। अस्तु:

यहां पर उपनिषदादि वैदिक साहित्य में जो भी उल्लेख दिग्गमर साधु के सम्बन्ध में मिलते हैं, उनको उपरिष्ठत कर देना उचित है। देखिये "जाबालोपनिषत्" में लिखा है:-

"तत्र परमहंसानामसर्वस्य कारुणिक्येतेकेतुदुर्वास ज्ञानिदाद्यजहभरत वन्तोत्रेवैवत्सक प्रभृत्याहव्यकरिणा अत्यक्ताद्यारा अनुमत्ता उन्मत्तव्याधरन्तरिप्रदण्डं कम्पण्डलु स्वाहेत्यन्तु परित्यज्यात्मान मनिच्छेत् । यज्जात स्पष्टरो निम्नो निष्परिग्रहस्तत्तद्व्यहंगमो सम्यकसंपन्न - इत्यादि"।<sup>25</sup>

इसमें सर्वतक, अरुणि, श्वेतकेतु आदि को यज्जातरूपधर निम्नोय सिद्ध है अर्थात् इन्होंने दिग्गमर जैन मुनियों के समान आचरण किया था।

"परमहंसोपनिषत्" में निम्न प्रकार उल्लेख है -

"इदमन्तर ज्ञात्वा स परमहंस अक्षरज्ञान्यो न नमस्कारो न स्वाहाकारो न निन्दा न स्तुतियादृष्टिको भवेत्स भिक्षु ।<sup>26</sup>"

सद्यमुच दिग्गमर (परमहंस) भिक्षु को अपनी प्रशंसा निन्दा अक्षर आदर-अनादर से सरोकार ही क्या। आगे "नारदपरिप्राजकोपनिषत्" में भी देखिये -

"क्याविधिप्रवेज्जात स्पष्टरो भूत्वा ज्ञातरूपधरभरेदात्मानमन्विच्छेत्प्रज्ञा ज्ञातरूपधरो निर्द्वन्द्वो निष्परि ग्रहस्तत्त्वग्रहमार्गो सम्यक् संपन्न । 86-तुरीयोपदेश ।"<sup>27</sup>

22 सर्वतयागी तुरीयातीतो गोकुलधरयो फलाहारी अन्नाहारी वेदगृहत्रये देहमाप्रावृत्तिदो दिग्गमर कुणपवच्छरीर वृत्तिक ।

23 "अक्षरतस्त्वनिग्रमः पतिताभिस्तवर्जमपूर्वक सर्व वर्णोदयजवन-वृत्तान्तर पर स्वस्वपानुसंज्ञानपर ।

24 "सर्व विद्यमृत्यु तुरीया तीतावध\तक्षेणद्वैतकिष्ठापर प्रणवादात्मकानेन देहत्याग करीति व सोऽकधूल ।

25 ईशाद्य, पुण्ड १३१

26 ईशाद्य, पुण्ड १५०

27 ईशाद्य, पुण्ड २६७-२६८

"तुरीय-परमो हस. साक्षान्नारायणो यति. । एकरात्र बसेन्द्यामे नमरे पशवरात्रकम् ।।  
14 ।। कर्वाभ्योऽन्यत्र कर्वासु मासाभ्यघ घतुरोवसेत् । मुनि कौपीनवासाः स्यान्मग्नो वा  
ध्यान अपरः (32) जातरूपधरो भूत्वा दिगम्बर 1-घतुर्योपदेश 28

इन उल्लेखों में भी परित्राजक को नमन होने का तथा कर्वाकृतु में एक स्थान में रहने का विधान है। "मुनिः कौपीनवासा" आदि वाक्य में इन्हों प्रकार के सारे ही परित्राजकों का "मुनि" शब्द से ग्रहण कर लिया गया है। इसलिये उनके सम्बन्ध में वर्णन कर दिया कि चाहे जिस प्रकार का मुनि अर्थात् प्रथम अवस्था का अथवा आगे की अवस्थाओं का। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि मुनि वस्त्र भी पहिन सकता है और नमन भी रह सकता है, जिससे की नमनता पर आपत्ति की जा सके। यह पहले ही परित्राजकों के षड्भेदों में दिखाया जा चुका है कि उत्कृष्ट प्रकार के परित्राजक नमन ही रहते हैं और वह श्रेष्ठतम फल को भी पाते हैं, जैसे कि कहा है -

"आतुरो जीवति चेत्क्रम सन्यास कर्तव्य आतुर कुटीयकयोर्भूलोक भुवर्लोकौ ।  
वहृदकस्य स्वर्गलोक ।

हमस्य तपोलोक । परम हसस्य सत्यलोक । तुरीयातीताकधृतयो रवरमन्वेव कैवल्य  
स्वरूपानुसंधानेन भ्रमर कीटन्यायवत् । 29

अर्थात् - "आतुर यानी समारी मनुष्य का अन्तिम परिणाम ( निष्ठा ) भूलोक है, कुटीयक सन्यासी का भुवर्लोक, स्वर्गलोक हस सन्यासी का अन्तिम परिणाम है, परमहस के लिये वही सत्यलोक है और कैवल्य तुरियातीत और अवधूत का परिणाम है।"

अब यदि इन सन्यामियों में वस्त्र परिधान और दिगम्बरत्व का तात्त्विक भेद न होता तो उन के परिणाम में इतना गहन अन्तर नहीं हो सकता। दिगम्बर मुनि ही वास्तविक योगी है और वही कैवल्य-पद का अधिकारी है। इसीलिये उगे "साक्षात् नारायण" कहा गया है। "नारद परित्राजकोप निपद्" में आगे और भी उल्लेख निम्न प्रकार है -

"ब्रह्मघर्षेण सन्यस्यु सन्यासाज्जातरूपधरो वैराग्य सन्यासी" 30

"तुरीयातीतो गोमुख फलाहारी । अन्नाहारी चेदगृह त्रये देहमात्रावशिष्टो दिगम्बर  
कृणपवच्छरीरवृत्तिक । अवधूतरस्त्रनियमोऽ भिशस्तपतितवर्जनपूर्वक  
सर्वकर्णेष्वजगारकृत्याहारपर स्वरूपानुसंधानपर । परमहम्यादिव्रयाणा न कटिमृत्र न  
कोपीन न वस्त्रम् न कमण्डलुर्न दण्ड सार्वर्णिकभैक्षाटनपरत्व जातरूपधत्त्व विधि ।

सर्व परित्यज्य तत्प्रसक्तम् मनोदण्डं करपात्र दिगम्बर दुष्टा । परिव्रजेदिभधु ।। 1 ।।

अभ्य सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा चरिति यो मुनि । न तस्य सर्वभूतेभ्यो भयमुत्पद्यते कचित  
(16) आशानिवृन्तो भूत्वा आशाम्बरधरो भूत्वा सर्वदामनोवाक्कायकर्मभि  
सर्वसंसारमुत्सृज्य प्रपञ्चावाह्मुख ग्वरूपानुसन्धानेन भ्रमरकीटन्यापन युक्तो  
भवतीन्मुपनिषत् ।। पञ्चमोपदेश ।।"

28 ईशाद्य, पृष्ठ २६८-२६९

29 ईशाद्य, पृष्ठ ४१५ - सन्यासोपनिषत् ५६ ।

30 ईशाद्य, पृष्ठ २६१

"दिगम्बरम् परमहंसस्य एकं कोपीनं वा तुरीयातीत्याद्यद्वयव्योर्जातरूपधरत्वं इत्थं परमहंसयोरजिनं न त्वन्येषाम् ।" ---सप्तमोपदेशः 31

वैराग्य सन्यासी भेद एक अन्य प्रकार से किया गया है। इस प्रकार से परित्राजक सन्यासियों के चार भेद हैं किये गए हैं- (1) वैराग्य सन्यासी, (2) ज्ञान सन्यासी, (3) ज्ञान वैराग्य सन्यासी और (4) कर्म सन्यासी। इन में से ज्ञान वैराग्य सन्यासी को भी मन होना पड़ता है- 32

"अथजातरूपधरा निर्द्वन्द्व निष्परिग्रहाः शुक्लस्थानपराकणा आत्मनिष्ठाः प्राणसंधारणार्थं यथोक्तोक्तले भैक्षमाद्यरन्तः

भूय्यागारदेवकृतशुक्लवस्त्रौक्यं मूलकु लाल शालागिन्हीत्र शालानदी पुत्तिनिगिरि कन्दर कुम्भ कोटर निर्गारस्थिच्छले तत्र ब्रह्ममार्गं सम्पद्यसपन्ना शुद्धमानसा परमहंसाद्यरणेन सन्या सेन देहत्यागं कुर्वन्ति ते परमहंसा नामेत्युपनिषत् ।" 33

"तुरीयातीतोपनिषत्" में उल्लेख इस प्रकार है -

"सन्यस्य दिगम्बरो भूत्वा विवर्णजीर्णवल्कलाजिन परिग्रहमपि सत्यज्य तद्धर्ममन्त्रवदाघरन्ध्रीराभ्यहंसनानेर्ध्वं पुण्ड्रादिक विहाय लौकिक वैदिक मध्युपसंहृत्य सर्वत्र पुरायापुण्यवर्जितो ज्ञानाज्ञानमपि विहाय शीतोष्ण सुखदुःख मावमाने निजित्व वासनात्रयपूर्वक निन्दानिन्हागर्वमत्सर दम्भ दर्प द्वेष काम क्रोध लोभ मोह हर्षामर्षासूयात्म सरक्षणदिक दाध्या इत्यादि ।" 34

"सन्यासोपनिषत्" में और भी उल्लेख इस प्रकार है -

"वैराग्य सन्यासी ज्ञान सन्यासी ज्ञान वैराग्य सन्यासी कर्मसन्यासीति चतुर्विध्यमुपागत । तद्यथेति दृष्टानुग्रहिक विषय वैतृण्यमेत्य प्राक्पुरावकर्मविशेषात्संनयस्त स वैराग्य सन्यासी । क्रमेण सर्वमन्यस्य सर्वमनुभूय ज्ञान वैराग्याभ्यां स्वस्वानुसंधानेन देहमात्रावशिष्ट संन्यस्त जात रूपधरो भवति स ज्ञान वैराग्य सन्यासी ।" 35

'परमहंसपरिग्रहजकोपनिषत्' में भी दिगम्बर मुनियों का उल्लेख है -

"शिक्षामुकृष्य यज्ञोपवीतं छित्वा कस्त्रमथि भमौ वाप्सु वा विसृज्य उं भू स्वाहा उं सुव सवाहेत्या तेन जातरूपधरो भूत्वा स्वं रूप ध्यादन्पुन पृथक प्राणव्याहति पूर्वक मनसा वचसपि संन्यस्त म्या ।"

"यदालबुद्धिभक्तिदा कुटाघ को वा षडूद को वा इसो वा परमहंसो वा तत्रन्मन्त्रपूर्वक कटिसूत्र कोपीनं दण्डं कमण्डलुं सर्वमप्सु विसृज्याथ जातरूपधरधरत् ।" 36

31 ईशाद्य, पृष्ठ २६२।

32 क्रमेण सर्वमन्यस्य सर्वमनुभूय ज्ञानवैराग्याभ्यां स्वस्वानुसंधानेन देहमात्रावशिष्ट संन्यस्त जातरूपधरो भवति स ज्ञानवैराग्यसन्यासी ।"

- नागदपरिवृजाकोपनिषद् ११४११ तथा सन्यासोपनिषद् ।

33 ईशाद्य, पृष्ठ ३६८,

34 ईशाद्य, पृष्ठ ४१०

35 ईशाद्य, पृष्ठ ४१२

36 ईशाद्य, पृष्ठ ४१८-४१९

"याज्ञवल्क्योपनिषद्" में दिगम्बर साधु का उल्लेख करके उसे परमेश्वर होना बताया है। जैसे कि जैनों की मान्यता है -

"ब्रह्मजातसुप्रधारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहास्तत्त्वब्रह्मधर्मो सम्यक् संपन्नः श्रुद्धानसा-  
प्रणसंधारणार्थं ब्रह्मेत काले विमुक्तो भिक्षुमाचरन्तुदरपात्रेण लम्बालास्यो समी भूत्वा कर-  
पात्रेण वा कमण्डलूदकयो भिक्षुमाचरन्तुदरमात्रं सगृह । आशाम्बरो न नमस्कारो न  
दारपुत्राभिलाषी लक्ष्यालक्ष्यनिर्वृतक परित्राट् परमेश्वरो भवति ।"<sup>37</sup>

"दत्तत्रेयोपनिषद्" में भी है -

"दत्तात्रेय हरे कृष्ण उन्मत्तानन्द दायक । दिगम्बर मुने बालापिशाच ज्ञानसागर ।"<sup>38</sup>

"भिक्षुकोपनिषद्" आदि में संवर्तक, आरुणी, श्वेतकेतु, जडभरत, दत्तात्रेय, शुक, ब्रह्मदेव, हारीतिकी आदि को दिगम्बर साधु बताया है। "याज्ञवल्क्योपनिषद्" में इनके अतिरिक्त दुर्वासा, ऋभु, निन्द्राद्य को भी दूरियातीत परमेश्वर बताया है।<sup>39</sup> इस प्रकार उपनिषदों के अनुसार दिगम्बर साधुओं का होना सिद्ध है।

किन्तु यह बात नहीं है कि मात्र उपनिषदों में ही दिगम्बरत्व का विधान हो, बल्कि वेदों में भी साधु की नग्नता का साधारण सा उल्लेख मिलता है। देखिये "यजुर्वेद" अ 1.9 मंत्र 14 में है -<sup>40</sup>

"आतिथ्यस्य मासरम् महावीरस्य नगम्हु ।

रपनुपसदानेतास्त्रियो रात्री सुरासुता ।।"

अर्थ - (आतिथ्यरूप) अतिथि के भाव (मासर) महीनों तक रहने वाले (महावीरस्य) पराक्रमशील व्यक्ति के (नगम्हु) नग्नरूप की उपासना करो जिससे (एतत्) ये (तिस्त्रो) तीनों (णत्री) मिथ्या ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूपी (सुर) मद्य (असुता) नष्ट होती है।

इस मन्त्र का देवता अतिथि है। इसलिये यह मंत्र अतिथियों के सम्बन्ध में ही लग सकता है, क्योंकि वैदिक देवता का मतलब वाच्य है, जैसाकि निस्वतकार का भाव है- "याते नोच्यते सा देवता ।" इसके अतिरिक्त "अथर्ववेद" के पन्द्रहवें अध्याय में जिन व्रात्य और महाव्रात्य का उल्लेख है, उनमें महाव्रात्य दिगम्बर साधु का अनुरूप है। किन्तु यह व्रात्य एक वेदवाक्यसंप्रदाय था, जो बहुत कुछ निग्न्यसंप्रदाय से मिलता-जुलता था। बल्कि यूँ कहना चाहिये कि वह जैन-मुनि और जैन तीर्थंकर ही का द्योतक है।<sup>41</sup> इस अवस्था में वह नग्नता और भी पुष्ट होती है कि जैनतीर्थंकर ब्रह्मदेव द्वारा दिगम्बरत्व का प्रतिपादन सर्वप्रथम हुआ था और जब उसका प्राबल्य बढ़ गया और लोगों का समझ पड़ गया कि

37 ईसाद्य, पृष्ठ ४२४

38. ईसाद्य., पृ ५४२

39 IHO III, २४६-२६०

40 मालुल होता है कि इस मंत्र द्वारा वेदकारने जैन तीर्थंकर महावीर के आदर्श को उल्लेख किया है। दूसरे धर्मों के आदर्श को इस तरह छाप करने के उल्लेख मिलते हैं। IHO III 472-485

41 देखो भया. प्रस्तावना पृ. ३२-४६।

परशुराम को जाने के लिए विद्युत्वरस आवश्यक है तो उन्होंने उसे अपने शस्त्रों में भी स्थान दे दिया। यही कारण है कि वेद में भी इसका उल्लेख सामान्य रूप में मिल जाता है।

अब हिन्दू पुराणों में जो दिगम्बर साधुओं का वर्णन मिलता है, वह भी वेद के लेखन अधिकृत है। श्री भागवत पुराण में ऋषभ अवतार के सम्बन्ध में कहा है:-

"सर्वेषु तस्मिन्नेव विष्णु भगवन् परमर्षिभिः प्रसाद तो नाभेः प्रियविकिर्षया उदवरोधायने मस्देव्यां धर्मान् दर्शयन् कान्ते वातरजनानां भ्रमणानां कम्पीणामूर्धा मन्दिना शुक्लान् तान् वाकततार ।"

अर्थ - "हे राजन्। परीक्षित वा यज्ञ में परम ऋषियों करके प्रसन्न हो नाभिके प्रिय करने की इच्छा से वाके अन्तपुर में मस्देवी में धर्म दिखायवे की कामना करके दिगम्बर रहितेवारे तपस्वी ज्ञानी नैष्टिक ब्रह्मचारी उद्वेगिता ऋषियों को उपदेश देने को शुक्लवर्ण की वेद धार श्री ऋषभदेव नाम का (विष्णु ने) अवतार लिया।<sup>42</sup>

"लिंग पुराण" (अ. 47 पृ. 68) में नग्न साधु का उल्लेख है।<sup>43</sup>

"सर्वतन्मत्तम निस्त्राज्य परमात्मा मनोश्चर ।

मनोजटो निराहारो घोरिध्यात यतोहिंस ।। 22 ।।"

"स्कंधपुराण-प्रज्ञासखड" में (अ. 16 पृ. 221) शिव को दिगम्बर लिखा है।<sup>44</sup>

"वायनोपि ततश्चके तत्र तीर्थावगाहवम् ।

वायुपुत्र त्रिवेदित्वा सर्वविन्वे दिगम्बर ।। 94 ।।"

श्री भर्तृहरि जी "वैराग्यशतक" में कहते हैं -<sup>45</sup>

"एकाकी नि स्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः ।

कटाशम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मुलनक्षम ।। 58 ।।"

अर्थ - "हे शम्भो। मैं अकेला, इच्छा रहित, शान्त, पाणिपात्र और दिगम्बर होकर कर्मों का नाश कर सकूंगा।" वह और भी कहते हैं -<sup>46</sup>

अजीमहि क्वं भिज्जानाशावासो वसीमहि ।

अवीमहि महीपुष्टे कुर्वीमहि किनीश्वरैः ।। 90 ।।

अर्थ- "अब हम भिक्षा ही करके भोजन करेंगे, दिशा ही के वस्त्र धारण करेंगे अर्थात् नग्न रहेंगे और भूमि पर ही भयन करेंगे। फिर भला धनवालों से हमें क्या मतलब?"

सातवीं शताब्दी में जब चीनी यात्री हुएनसांग बनारस पहुंचा तो उसने वहां हिन्दुओं के बहुत से गेरे साधु देखे। वह लिखता है कि "महेश्वर भक्त साधु वालों को बांध कर जटा बन्धते हैं तथा वस्त्र परित्यक्त करके दिगम्बर रहते हैं और शरीर में भस्म का लेप करते

43 वैजे पृ. 3 ।

44 वैजे पृ. 4 ।

45 वैजे पृ. 38 ।

46 वैजे पृ. 84 ।

हे। ये बड़े तपस्वी हैं।<sup>47</sup> इन्हीं को परमहंस परिव्राजक कहना ठीक है। किन्तु ह्युर्निसाग से बहुत पहिले ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दि में जब सिकन्दर महान ने भारत पर आक्रमण किया था, तब भी नगे हिन्दू साधु यहाँ मौजूद थे।

अरस्तू का भतीजा स्थिडो कल्लिस्थेनस (Pseudo Kallisthenes) सिकन्दर महान के साथ यहाँ आया था और वह बताता है कि "ब्राम्हणों का धर्म ों की तरह कोई सध नहीं।" उनके साधु प्रकृति की अवस्था में (State of nature) - नग्न नदी किनारे रहते हैं और नगे ही घूमते हैं (Go about naked) उनके पास न चौपाहे हैं, न हस्त हैं, न लोहा-लकड़ हैं, न घर है, न आग है, न रोटी है, न सुरा है- गर्ज यह कि उने के पास धर्म और आनन्द का कोई सामान नहीं है। इन साधुओं की स्त्रिया गंगा की दूसरी ओर रहती है, जिनके पास जुलाई और अगस्त में दे जाते हैं। वैसे जगल म रहकर वे बनकल खाते हैं।<sup>48</sup>

सन् 851 में अरब देश से सुलेमान सौदागर भारत आया था। उसने वहाँ एक ऐसे नगे हिन्दू योगी को देखा था जो सोत्तरह वर्ष तक एक आसन से स्थित था।<sup>49</sup>

बादशाह औरगजेब के जमाने में फ्रांस से आये हुये डॉ बर्नियर ने भी हिन्दुओं के परमहंस (नगे) सन्यासियों को देखा था। वह इन्हें "जोगी" कहता है और इनके विषय में लिखता है - 50

"I allude particularly to the people called 'Jaugis', a name which signifies 'united to God' Numbers are seen, day and night, seated or lying on ashes, entirely naked, frequently under the large trees near talabs or tanks of water, or in the galleries round the Douras or idol temples, Some have hair hanging down to the calf of the leg, twisted and entangled into knots, like the coat of our shaggy dogs I have seen several who hold one & some who hold both arms, perpetually lifted up above the head; the nails of their hands being twisted, and longer than half my little finger, with which I measured them Their arms are as small & thin as the arms of persons who die in a decline, because in so forced & unnatural a position they receive not sufficient nourishment, nor can they be lowered so as to supply the mouth with food, the muscles having become contracted and the articulations dry & stiff Novices wait upon these fanatics & pay them the utmost respect, as persons

47 हुमा, पृ 300

48 Al, P 181

49 Elliot, I, P-4

50 Bernier, P 316

endowed with extraordinary sanctity. No Fury in the infernal regions can be conceived more horrible than the Jaugise with their naked and black skin, long hair, spindle arms, long twisted nails and fixed in the posture which I have mentioned."

भाव यही है कि बहुत से ऐसे जोगी थे जो तालाब अथवा मंदिरों में नंगी रात-दिन रहते थे। उनके बाल लम्बे-लम्बे थे। उनमें से कोई अपनी बांहें ऊपर को उठाये रहते थे। नाखून उनके मुड़कर दूर हो गये थे जो नेरी छोटी अंगुली के आधे बराबर थे। सूखकर वे लकड़ी हो गये थे। उन्हें खिलाना भी मुश्किल था, क्योंकि उनकी नसें तन गई थीं। भ्रत जन इन नागों की सेवा करते हैं और इनकी बड़ी विनय करते हैं। वे इन जोगियों से पवित्र किसी दूसरे को समझते नहीं और इनके क्रोध से भी बेहद डरते हैं। इन जोगियों की नंगी और काली धमड़ी है, लम्बे बाल हैं, सूखी बांहें हैं, लम्बे मुड़े हुए नाखून हैं और वे एक जगह पर ही उस आसन में जमे रहते हैं जिसका मैंने उल्लेख किया है। यह हठयोग की पराकाष्ठा है। परमहंस होकर यह न करते तो करते भी क्या ?

सन् 1623 ई में फिटर डेल्ला वॉल्ना नामक एक यात्री आया था। उसने अहमदाबाद में वरमती नदी के किनारे और शिवालों में अनेक नागा साधु देखे थे, जिन की लोग बड़ी विनय करते थे।<sup>51</sup>

आज भी प्रयाग में कुम्भ के मेले के अवसर पर हजारों नागा सन्यासी वहां देखने को मिलते हैं--वे कतार बांध कर शहर-आम नंगे निकलते हैं।

इस प्रकार हिन्दू शास्त्रों और यात्रियों की साक्षियों से हिन्दू धर्म में दिगम्बरत्व का महत्व स्पष्ट हो जाता है। दिगम्बर साधु हिन्दुओं के लिये भी पूज्य-पुरुष हैं। ●

## धनि मुनि निज आतम हित कीना .....

धनि मुनि निज आतम हित कीना

भव असार तन अशुचि विषय विष, जान महाव्रत लीना ॥ १ ॥

एक विहारी परीग्रह छारी, परिसह सहत अरीना ॥

पूरव तन तपसाधन मान न लाज गना परवीना ॥ १ ॥

शून्य सदन गिर गहन गुफा में, पयासन आसीना ॥

परभावन तैं भिन्न आपपद, ध्यावत मोह विहीना ॥ २ ॥

स्व-पर भेद जिनकी बुधि निज में, पागी बाहि लगीना ॥

'दौल' तासपद वारिज रज से, किन अध करे न छीना ॥ ३ ॥

1 पुरातत्व, वर्ष २ अंक ४ ४४०

## इस्लाम और विगम्बरत्व ।

"I am no apostle of new doctrines", said Muhammad, "neither know I what will be done with me or you." ---- Koran XLVI

पैगम्बर हजरत मुहम्मद ने खुद फरमाया है कि "मैं किन्हीं नये सिद्धान्तों का उपदेशक नहीं हूँ और मुझे यह नहीं मालूम कि मेरे या तुम्हारे साथ क्या होगा ? सत्य का उपसर्क और कह ही क्या सकता है ? उसे तो सत्य को गुमराह भाइयों तक पहुँचाना है और उससे जैसे बनता है वैसे इस कार्य को करना पड़ता है। मुहम्मद साहब को अरब के अस्त-व्यस्त लोगों में सत्य का प्रकाश फैलाना था। वह लोग ऐसे पात्र न थे कि, एकदम ऊँचे दर्जे का सिद्धान्त उन को सिखाया जाता। उस पर भी हजरत मुहम्मद ने उनको स्पष्ट शिक्षा दी कि-

"The love of the world is the root of all evil "

"The world is as a prison and as a famine to Muslims, and when they leave it you may say they leave famine and a prison " -  
(Sayings of Mohammad)<sup>52</sup>

अर्थात् -- "संसार का प्रेम ही सारे पाप की जड़ है। संसार मुसलमान के लिए एक कैदखाना और कहत के समान है और जब वे इसको छोड़ देते हैं तब तुम कह सकते हो कि उन्होंने क़हत और कैद खाने को छोड़ दिया।" त्याग और वैराग्य का इससे बढिया उपदेश और हो भी क्या सकता है। हजरत मुहम्मद ने स्वयं उसके अनुसार अपना जीवन बनाने का यथा संभव प्रयत्न किया था। उस पर भी उनके कम से कम वस्त्रों का परिधान और हाथ की अंगूठी उनकी नमज़ में बाधक हुई थी।<sup>53</sup> किन्तु यह उनके लिये इस्लाम के उस जन्म काल में संभव नहीं था कि वह खुद नम होकर त्याग और वैराग्य-तर्क दुनिया-का श्रेष्ठतम उदाहरण उपस्थित करते। यह कार्य उनके बाद हुये इस्लाम के सूफ़ी तत्त्ववेत्ताओं के भाग में आया। उन्होंने "तर्क" अथवा त्यागधर्म का उपदेश स्पष्ट शब्दों में यूँ दिया -

"To abandon the world, its comforts and dress,--all things now and to come, --conformably with the Hadees of the Prophet "<sup>54</sup>

अर्थात् - "दुनियाँ का सम्बन्ध त्याग देना-तर्क कर देना-उसकी आशाइशों और पोशाक-सबही चीज़ों को अब की और आगे की-पैगम्बर सा की हदीस के मुताबिक।"

52 KK , P 738

53 Religious Attitude & Life in Islam, P 298 & K K. 739

54 The dervishes - KK P 738

इस उपदेश के अनुसार इस्लाम में त्याग और वैराग्य को विशेष स्थान मिला। उसमें ऐसे दरवेश कबूजे और दिगम्बरत्व के हिमांशु भी थे और तुर्किस्तान में "अब्दास" (Abdais) नामक दरवेश सादरजात नंगे रहकर अपनी साधना में लीन रहते बताये गये<sup>55</sup>। इस्लाम के महान् सूफी तत्वेता और सुप्रसिद्ध "मस्नवी" नामक ग्रन्थ के रचयिता श्री जलालुद्दीन रूमी दिगम्बरत्व का खुला उपदेश निम्न प्रकार देते हैं :-

- 1- "मुक्त मस्त ऐ महतब बाजुआर रव-अज  
बिरहना के तवां बुरदन गरव।" - (जिल्द 2 सफा 282)
- 2- "जामा पोशां रा नजर परगाज रास्त -  
जामै अरियां रा तजल्ली जेवर अस्त।" - (जिल्द 2 सफा 382)
- 3- "बाज अरियानान बयकसू बाज रव-  
ख चूं ईशं फारिग व तेजामा भव।"
- 4- "वरनमी तानी कि कुल अरियां शवी -  
जामा कम कुन ता रह औसत रवी।।" - (जिल्द 2 सफा 383)<sup>56</sup>

इन का उर्दू में अनुवाद "इल्हामे मन्जूम" नामक पुस्तक में इस प्रकार दिया हुआ है-

- 1- मस्त बोला, महतब, कर काम जा -  
होगा क्या नगे से तू अहदे वर आ।
- 2- हे नजर धोबी पे जामै-पोश की -  
हे तजल्ली जेवर अरिया तनी।।
- 3- या बिरहनों से हो यकसू वाकई -  
या हो उन की तरह बेजामै अखी।
- 4- मुतलकन अरिया जो हो सकता नहीं -  
कपड़े कम यह है कि औसत के करी।।

भाव स्पष्ट है। कई तार्किक मस्त नगे दरवेश से आ उलझा। उसने सीधे से कह दिया कि जा अपना काम कर- तू नगे के सामने टिक नहीं सकता। कस्त्र धारी को हमेशा धोबी की फिकर लगी रहती है, किन्तु नगे तन की शोभा दैवी प्रकाश है। बस, या तो तू नगे दरवेशों से कोई सरोकार न रख अथवा उन की तरह आजाद और नगा होजा। और अगर तू एकदम सारे कपड़े नहीं उतार सकता तो कम से कम कपड़े पहन और मध्यमार्ग को ग्रहण कर। क्या अच्छा उपदेश है। एक दिगम्बर जैन साधु भी तो यही उपदेश देता ह। इससे दिगम्बरत्व का इस्लाम से सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है।

55 "The higher saints of isiam, called 'Abdais' generally went about perfectly naked as described by Miss Luey M Garnet in her excellent account of the lives of Muslim Dervishes, entitled 'Mysticism & Magic in turkey' - N.J. P. 10

56. जिल्द और पृष्ठ के नम्बर "मस्नवी" के उर्दू अनुवाद "इल्हामे मन्जूम" ( ) के हैं।

और इस्लाम के इस उपदेश के अनुकूल सैकड़ों मुसलमान फकीरों ने विधानमन्त्रालय को गतकाल में धारण किया था। उनमें अबुलकासिम गिलानी<sup>57</sup> और सरमद शाहीद उल्लखनीय हैं।

सरमद बादशाह औरंगजेब के समय में दिल्ली में ही मुजरा है और उस के हजारों नंगे शिष्य भारत भर में बिखरे पड़े थे। वह मूल में कजहान (अरमेनिया) का रहने वाला एक ईसाई व्यापारी था। विज्ञान और विद्या का भी वह विद्वान् था। अरबी अच्छी जानता था। व्यापार के निमित्त भारत में आया था। ठट्टा (सिंध) में एक हिन्दू लहकी के इशक में पड़ कर मजनु बन गया।<sup>58</sup> उपरान्त इस्लाम के सूफि दरवेशों की संगति में पढ़ कर मुसलमान हो गया। मस्त नंग वह शहरों और गलियों में फिरता था। अष्ट्यात्मवाद का प्रचारक था। धूमता-धामता वह दिल्ली जा डटा। शाहजहां का वह अन्त समय था। दारा शिकोह, शाहजहां बादशाह का बड़ा लहका, उस का भक्त हो गया। सरमद आनन्द से अपने मत का प्रचार दिल्ली में करता रहा। उस समय फ्रान्स से आये हुए डॉ बरनियर ने खुद अपनी आंखों से उसे नंग दिल्ली की गलियों में धूमते देखा था।<sup>59</sup> किन्तु जब शाहजहा और दारा को मार कर औरंगजेब बादशाह हुआ तो सरमद की आजादी में भी अहंता पड़ गया। एक मुन्ता ने उसकी नमस्ता के अपराध में उसे फासी पर चढ़ाने की सलाह औरंगजेब को दी, किन्तु औरंगजेब ने नमस्ता को इस दण्ड की वस्तु न समझा<sup>60</sup> और सरमद से कपड़े पहनने की दरखास्त की। इस के उत्तर में सरमद ने कहा-

"ऑकस कि तुरा कुजाइ सुलतानी दाद,  
मारा हन ओ अस्बाब परेशानी दाद,  
पोशानीद लबास हरकरा ऐबे दीद,  
बे ऐबा रा लबास अर्बानी दाद।"

यानी "जिस ने तुम को बादशाही ताज दिया, उसी ने हम को परेशानी का सामान दिया। जिस किसी में कोई ऐब पाया, उस को लिबास पहनाया और जिन में ऐब न पाये उन को नोपन का लिबास दिया।"<sup>61</sup>

57 KK, P. 739 and NJ, PP 8-9

58 JG, XX PP 158-159

59 Bernier remarks "I was for a long time disgusted with a celebrated Falcire named Sarmet, who paraded the streets of Delhi as naked as when he came into the world etc" - (Berniers Travels in the Mogul Empire P 317)

60 Emperor told the Ulema that "Mere nudity cannot be a reason of execution" -- JG XX, P 158

61 जैन., पृष्ठ ६

बादशाह इस नबाई को सुनकर बुरा हो गया लेकिन सरफत उसके क्रोध से बच न पाया। उसे के सरफत फिर अपराधी बनाकर रखा गया। अपराधी सिर्फ वह था कि वह "इस्लाम" अपराधी पड़ता है जिस के मने होते हैं कि "कोई खुदा नहीं है।" इस अपराधी का वह उसे फांसी मिली और वह वेदान्त की बातें करता हुआ अहीद हो गया। उसके फांसी दिये जाने में एक कारण यह भी था कि वह दाराका दोस्त था।<sup>62</sup>

सरफत की तरह न जाने कितने नौ मुसलमान दरवेश हो गुजरे हैं। बादशाह ने उसे मात्र नौ रहने के कारण सजा न दी, यह इस बात का द्योतक है कि वह नानत को बुरी चीज नहीं समझता था। और संघर्ष उस समय भारत में हजारों नौ फकीर थे। ये दरवेश अपने नौ तन में भारी-भारी जजीरे लपेट कर बड़े लम्बे लम्बे तीर्थाटन किया करते थे।<sup>63</sup>

सारांशत इस्लाम मजदब में दिगम्बरत्व साधु पद का दिन्द रखा है और उसके उमली शक्ति भी हजारों मुसलमानों ने दी है। और धूँकि हजरत मुहम्मद किसी नये सिद्धान्त के प्रचार का दावा नहीं करते, इसलिए कहना होगा कि ऋषभाघल से प्राप्त हुई दिगम्बरत्व-गाथा की एक धारा को इस्लाम के सूफी दरवेशों ने भी अपना लिया था। ●

62 J G , Vol XX, P 159 "There is no God" said Sarmad omitting "but, Allah and Muhammad is His apostle "

63 "Among the vast number and endless variety of Falcires or Derviches . some carried a club like to Hercules, other had a dry & rough tiger-skin thrown over their shoulders . Serveral of these Fakires take long pilgrimages, not only naked, but laden with heavy iron chains, such as are put about the legs of elephants-" - Bernier P 317

## ईसाई मजहब और दिगम्बर साधु !

"And he stripped his clothes also, and prophesied before Samuel in like manner, and lay down naked all that day and all that night. Wherefore they said, is Saul also among the Prophets"

- ( Samuel XIX, -24 )

"At the same time spake the Lord, by Isaiah the son of Amoz, saying, Go and loose the sack-cloth from off the loins, and put off the shoe from the foot. And he did so, waiking naked and bare foot "

-- ( Isaiah XX, 2 )

ईसाई मजहब में भी दिगम्बरत्व का महत्व भुलाया नहीं गया है, बल्कि बड़े मार्के के शब्दों में उसका वहा प्रतिपादन हुआ मिलता है। इसका एक कारण है जिस महानुभाव द्वारा ईसाई धर्म का प्रतिपादन हुआ था वह जैन श्रमणों के निकट शिक्षा पा चुका था।<sup>64</sup> उसने जैनधर्म की शिक्षा को ही अलकृत भाषा में पाश्चात्य देशों में प्रचलित कर दिया। इस अवस्था में ईसाई मजहब दिगम्बरत्व के सिद्धान्त से खाली नहीं रह सकता। और सचमुच बाइबिल में स्पष्ट कहा गया है कि ---

"और उसने अपने वस्त्र उतार डाले और सैमुयल के समक्ष ऐसी ही घोषणा की ओर उस सारे दिन तथा सारी रात वह नगा रहा। इस पर उन्होंने कहा, क्या साल भी पैगम्बरों में से है ? ( सैमुयल 19/24 )

"उसी समय प्रभू ने अर्माज के पुत्र ईसाइया से कहा, जा और अपने वस्त्र उतार डाल और अपने पैरों से जूते निकाल डाल। और उसने यही किया, नगा और नगे पैरों वह विचरने लगा।- ( ईसाय्या 20/2 )

इन उद्धरणों से यह सिद्ध है कि बाइबिल भी मुमुक्षु को दिगम्बर मुनि हो जाने का उपदेश देती है। और कितने ही ईसाई साधु दिगम्बर वेष्ट में रह भी चुके हैं। ईसाइयों के इन नगे साधुओं में एक सेन्टमेरी ( St Mary of Egypt ) नामक साध्वी भी थी। यह मिश्रदेश की सुन्दर स्त्री थी, किन्तु इसने भी कपड़े छोड़कर नगन-वेष्ट में ही सर्वत्र विहार किया था।<sup>65</sup>

यहूदी ( Jews ) लोगों की प्रसिद्ध पुस्तक "The Ascension of Isaiah" ( p 32 ) में लिखा है -

64 विकी , मा 3 पृष्ठ १२८

65 The History of European Morals, ch 4 & NJ , P 6

"(Those) who believe in the ascension into beaven withdrew and settled on the mountain. ....

They were all prophets (Saints) and they had nothing with them and were naked. "66

अर्थात् - वह जो मुक्ति की प्राप्ति में झुट्टा रखते थे एकान्त में पर्वत पर जा जमे. वे सब सन्त थे और उनके पास कुछ नहीं था और वे नंगे थे।

अर्पोसल पीटर ने नंगे रहने की आवश्यकता और विशेषता को निम्न शब्दों में बड़े अच्छे ढंग पर "Clementine Homilies" में दर्शा दिया है -

"For we who have chosen the futures thing, in so far as we possess more goods than these, whether they be clothings, or . any other thing, possess sins, because we ought not to have anything . To all of us possessions are sins The deprivation of these, in whatever way it may take place is the removal of sins" 67

अर्थात्-क्योंकि हम जिन्होंने भविष्य की चीजों को चुन लिया है, यहां तक कि हम उनसे ज्यादा सामान रखते हैं, चाहे वे फिर कपड़े लतते हों या दूसरी कोई चीज पाप को रकवें हुये हैं, क्योंकि हमें कुछ भी अपने पास नहीं रखना चाहिये। हम सब के लिये परिग्रह पाप है। जैसे भी हो वैसे इन का त्याग करना पापों को हटाना है।

दिगम्बरत्व की आवश्यकता पाप से मुक्ति पाने के लिये आवश्यक ही है। ईसाई ग्रन्थकार ने इसके महत्व को खूब दर्शा दिया है। यही वजह है कि ईसाई मजहब के मानने वाले भी सैकड़ों दिगम्बर साधु हो गुजरे हैं। ●

---

66 NJ , P 6

67 Ante Nicene Christian Library, XVII , 240 & NJ , P 7

## दिगम्बर जैन मुनि !

"अथश्रवणस्वजायं उप्याह्तिद केसवर्णसुगं सुदं ।

रविर्दं द्विचादीदो अप्याहिकन्मे इवदि तिगं ॥ 5 ॥

नृयुध्दरंभक्तिभूतं जुतं उधजोग जोग सुदीहिं ।

तिगं व परावेवर्धं अपुनकवव कारणं जी एहं ॥ 6 ॥

-- प्रवचन सार

दिगम्बर जैन मुनि के लिये जैन शास्त्रों में लिखा गया है कि उनका तिग अवस्था वेश यथाजातस्व नमन है--सिर और दाढ़ी के केश उन्हें नहीं रखने होते--यह उनकी केशश्लुचन क्रिया है। इसके अतिरिक्त दिगम्बर जैन मुनि का वेश शुद्ध, हिंसादि रहित, भृंगार रहित, ममता-आरम्भ रहित, उपयोग और योग की शुद्धि सहित, पर द्रव्य की अपेक्षा रहित, मोक्ष का कारण होता है। सारांश रूप में दिगम्बर जैन मुनि का वेश यह है, किन्तु यह इतना दुर्लभ और गहन है कि संसार-प्रपच में फसे हुए मनुष्य के लिये यह समभव नहीं है कि वह एक दम इस वेश को धारण कर ले। तो फिर क्या यह वेश अश्रव्यकार्य है। जैनशास्त्र कहते हैं "कथापि नहीं" और यह है भी ठीक क्योंकि उनमें दिगम्बरत्व को धारण करने के लिये मनुष्य का पहले से ही एक वैज्ञानिक ढंग पर तैयार करके योग्य बना लिया जाता है और दिगम्बर पद में भी उसे अपने मूल उद्देश्य की सिद्धि के लिये एक वैज्ञानिक ढंग पर ही जीवन व्यतीत करना होता है। जैनशास्त्रों में यद्यपि दिगम्बर वेश का प्रतिपादन हुआ मिलता है, किन्तु उनमें जैनधर्म जैसे वैज्ञानिक नियम-प्रवाह की कमी है। और यही कारण है कि परमहंस वानप्रस्थ भी उनमें सपत्नीक मिल जाते हैं।<sup>68</sup> जैनधर्म के दिगम्बर साधुओं के लिये ऐसी बातें बिल्कुल अस्मभव हैं।

अच्छा तो, दिगम्बर वेश धारण करने के पहले जैनधर्म मुमुक्षु के लिए किन नियमों का पालन करना आवश्यक बतलाता है ? जैन शास्त्रों में सचमुच इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि एक गृहस्थ एक दम छलाग मार कर दिगम्बरत्व के उन्न्त शैल पर नहीं पहुंच सकता। उसको वहां तक पहुंचने के लिए कदम ब कदम आगे बढ़ना होगा। इसी क्रम के अनुरूप जैनशास्त्रों में एक गृहस्थ के लिये ग्यारह दर्जे नियत किये हैं। पहले दर्जे में पहुंचने पर कहीं गृहस्थ एक श्रावक कहलाने के योग्य होता है। यह दर्जे गृहस्थ की आत्मोन्नति के सूचक हैं और इनमें पहले दर्जे से दूसरे में आत्मोन्नति की विशेषता रहती है। इनका विशद वर्णन जैन ग्रंथों में जैसे रत्नकरठडश्रावकाचार में खूब मिलता है। यद्यपि इतना बता देना ही काफी है कि इन दर्जों से गुजर जाने पर ही एक श्रावक दिगम्बर मुनि होने के योग्य होता है। दिगम्बर मुनि होने के लिये यह उसकी ट्रेनिंग है और सचमुच

68 बुनानी लेखकों ने उनका उल्लेख किया है। देखो, Al p 181

प्रोत्साहित करने के लिए उसे भी रहने का अभ्यास करना प्रारंभ कर देना होता है। मात्र पूर्व-अपवृत्ति और अनुसंधान-के दिनों में वह अनारंभी हो- घर बाहर का कचरा-काज छोड़कर - घर-उपवास करता तथा दिग्म्बर होकर ध्यान में लीन होता है।<sup>69</sup> ग्यारहवीं प्रतिमा में पहुंच कर वह मात्र लंगोटी का परिग्रह अपने पास रहने देता है और गृहत्यागी वह इसके पहले हो जाता है। ग्यारहवीं प्रतिमा का धारी वह 'ऐलक वा क्लृप्क' अक्षरपूर्वक विधिस्थित यदि प्रसूक भोजन गृहस्थ के यहां मिलता है तो गृह्य कर लेता है। भोजनपात्र की रचना भी उसकी खुशी पर अवलम्बित है। बस, यह धावकपद की धारण-सीमा है। 'गुह्यकोपनिषद्' के "गुह्यक धावक" इसके समतुल्य होते हैं, किन्तु वहां वह साधु का श्रेष्ठ रूप है।<sup>70</sup> इसके विपरीत जैनधर्म में उसके आगे मुनिपद और है। मुनिपद में पहुंचने के लिये ऐलकधावक को लाजमी तौर पर दिग्म्बर-वेध धारण करना होता है और मुनिधर्म का पालन करने के लिये मूल और उत्तर गुह्यों का पालन करना होता है। मुनियों के मूल गुण जैन शास्त्रों में इस प्रकार बताए गए हैं -

पंच मह्यनाहं समिदीओ पंच जिणवरोदिदद्दा ।

पंचेविदिवरोहा इप्पि व आवासवा लोचो ॥२॥

अच्छेल कमहात्तं खिट्ठिसव्वनदंत धक्खणं वेव ।

ठिट्ठिभोक्खेवभत्तं मूल गुणा अट्ठवीसा दु ॥३॥ मूलाधार ॥

अर्थात् - "पांच महाव्रत ( अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ), जिनवर कर उपदेशी हुई पांच आदाननिक्षेपण समिति, मूत्रविष्ठादिक क्व भुद्र भूमि में क्षेपण ( घक्षु, कान, नाक, जीभ, स्पर्शन-इन पांच इन्द्रियों के विषयों का निरोध करना ), छह आवश्यक ( सामाजिक, धर्मविशतिस्तव, वचना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग ), लोच, आच्छेत्तव्य, अस्नान, पृथिवीशयन, अदतघर्षण, स्थितिभोजन, एक भक्त - ये जैन साधुओं के अट्ठाहस मूल गुण हैं।"

सक्षेप में दिग्म्बर मुनि के इन अट्ठाहस मूलगणों का विवेचनात्मक वर्णन यह है -

- ( 1 ) अहिंसा महाव्रत - पूर्णतः मन-वचन-काय पूर्वक अहिंसा धर्म का पालन करना,
- ( 2 ) सत्य महाव्रत - पूर्णतः सत्य धर्म का पालन करना,
- ( 3 ) अस्तेय महाव्रत - " अस्तेय " "
- ( 4 ) ब्रह्मचर्य महाव्रत - " ब्रह्मचर्य " "
- ( 5 ) अपरिग्रह महाव्रत - " अपरिग्रह " "
- ( 6 ) ईर्या समिति - प्रयोजनवश निर्जीव मार्ग से चार हाथ जमीन देखकर चलना
- ( 7 ) भाषा समिति - पैशून्य, व्यर्थ हास्य, कठोर वचन, परनिंदा, स्वप्रशंसा, स्त्री कथा, भोजन कथा, राज कथा, घोर कथा इत्यादि वार्ता छोड़कर मात्र स्वपरकल्याणक वचन बोलना,

69. भगवत् पृ २०५ तथा बीटों के 'अहुबर निकाय' में भी इसका उल्लेख है।

70. वीर वर्ण ८ पृ. २५१-२५५

- (8) **एषणासमिति** - उद्दमादि ह्यालीस दोषों से रहित, कृतकारित नौ विकल्पों से रहित, भोजन में रागद्वेष रहित - सम्भाव से-बिना निमग्न स्वीकार करे, भिक्षा केल्या पर दातार द्वारा पहगादने पर इत्यादि रूप भोजन करना,
- (9) **आदाननिक्षेपण समिति** - ज्ञानोपकरणादि-पुस्तकादि का - वत्नपूर्वक देख भाल कर उठाना-धरना,
- (10) **प्रतिष्ठापना समिति** - एकान्त, हरित व क्रसकाव रहित, गुप्त, दूर, बिल रहित, छाँडे, लोकनिन्दा व विरोध-रहित स्थान में मल-मूत्र क्षेपण करना,
- (11) **चक्षुर्विरोध व्रत** - सुन्दर व असुन्दर दर्शनीय वस्तुओं में राग-द्वेषादि तथा आसक्ति का त्याग,
- (12) **कर्णेन्द्रिय निरोध व्रत** - सात स्वर रूप जीव शब्द (गान) और वीणा आदि से उत्पन्न अजीवशब्द रागादि के निमित्त कारण है, अत इनका न सुनना,
- (13) **रसनेन्द्रिय निरोध व्रत** - जिह्वालम्पटता के त्याग सहित और आकाक्षा रहित परिणाम पूर्वक दातार के यहाँ मिले भोजन को ग्रहण करना,
- (14) **घ्राणेन्द्रिय निरोध व्रत** - सुगन्धि और दुर्गन्धि में राग-द्वेष नहीं करना,
- (15) **स्पर्शेन्द्रिय निरोध व्रत** - कठोर, नरम आदि आठ प्रकार का दुःख अथवा सुख रूप जो स्पर्श उस में हर्ष विषाद न रखना,
- (16) **सामायिक** - जीवन-मरण, सयोग-वियोग, मित्र-शत्रु सुख-दुःख, भूख-प्यास आदि बाधाओं में राग द्वेष रहित सम्भ्रव रखना,
- (17) **वस्तुविभक्ति-स्तव** - ऋषभादि चौबीस तीर्थकरों की मन-वचन-काय की शुद्धता-पूर्वक स्तुति करना,
- (18) **बन्दना-** -अरहतदेव, निर्गन्ध गुरु और जिन शास्त्र को मन-वचन-काय की शुद्धि सहित ( बिना मस्तक नमाये ) नमस्कार करना,
- (19) **प्रतिक्रमण** - द्रव्य-क्षेत्र-काल भाव रूप किये गये दोष को शोधना और अपने आप प्रगट करना
- (20) **प्रत्याख्यान** - नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव- इन छहों में शुभ मन, वचन, काय से आगामी काल के लिए अयोग्य का त्याग करना
- (21) **कायोत्सर्ग** - निश्चित क्रिया रूप एक नियत काल के लिये जिन गुणों की भावना सहित देह में ममत्त्व को छोड़ कर स्थित होना,
- (22) **केशलौघ** - दो, तीन या चार महीने के बाद प्रतिक्रमण व उपवास सहित दिन में अपने हाथ से मस्तक, बाटी, मूछ के बालों का उखाड़ना,
- (23) **अघेसक** - वस्त्र, चर्म, टाट, तृण आदि से शरीर को नहीं ढकना, और आभूषणों से भूषित न होना,
- (24) **अस्नान-स्नान** - उबटन-अञ्जन-लेपन आदि का त्याग
- (25) **छितिशयन** - जीव बाधा रहित गुप्त प्रदेश में दण्डे अथवा धनुष के समान एक करवट से सोना,

- (26) अन्न-प्राशन - अम्लीय, तब, दाँतों, तृण आदि से अन्न-प्राशन को शुद्ध नहीं करना.
- (27) रिचि-सौजन्य - अपने हाथों को भोजन पात्र ब्रह्म कर भीत आदि के आश्रय रहित चार अंगुल के अन्तर से सम्प्राप्त छोटे रहकर तीन भूमियों की शुद्धता से आहार ग्रहण करना, और
- (28) एक भक्त - सूर्य के उदय और अस्तकाल की तीन घड़ी समय छोड़कर एक बार भोजन करना।

इस प्रकार एक मुमुक्षु दिगम्बर मुनि के श्रेष्ठपद को तब ही प्राप्त कर सकता है जब वह उपरोक्त अष्टाईस मूल गुणों का पालन करने लगे। इनके अतिरिक्त जैन मुनि के लिये और भी उत्तर गुणों का पालन करना आवश्यक है, किन्तु वे अष्टाईस मूल गुण ही ऐसे व्यवस्थित नियम हैं कि मुमुक्षु को निर्विकारी और योगी बना दें। और बड़ी कारण है कि आज तक दिगम्बर जैन मुनि अपने पुरातन केष में देखने को नसीब हो रहे हैं। यदि वह वैज्ञानिक नियम प्रवाह जैनधर्म में न हो तो अन्य मतान्तरों के मन साधुओं के सदृश आज दिगम्बर जैन साधुओं के भी दर्शन होना दुर्लभ हो जाते। दिगम्बर साधु-नो जैन साधु के लिये "दिगम्बर साधु" पद का प्रयोग करना ही हम उचित समझते हैं-के उपरोक्त प्रारम्भिकगुणों को देखते हुये-जिन के बिना वह मुनि ही नहीं हो सकता दिगम्बर मुनि के जीवन के कठिनधर्म, इन्द्रियनिग्रह, सयम, धर्मभाव, परोपकारवृत्ति, निशंकरूप इत्यादि का सहज ही पता लग जाता है। इस दशा में यदि वे जगद्वन्द्या हों तो आश्चर्य क्या ?

दिगम्बर मुनियों के सम्बन्ध में यह जान लेना भी जरूरी है कि उन के (1) आचार्य (2) उपाध्याय और (3) साधुरूप तीन भेदों के अनुसार कर्तव्य में भी भेद हैं। आचार्य साधु के गुणों के अतिरिक्त सर्वकाल सबन्धी आचार को जान कर स्वयं तद्वत् आचरण करे तथा दूसरों से करावे, जैन धर्म का उपदेश देकर मुमुक्षुओं का साहज करे और उनकी सार सभाल रखे। उपाध्याय का कार्य साधुर्कर्म के साथ-साथ जैन शास्त्रों का पठन-पाठन करना है। और जो मात्र उपरोक्त गुणों को पालता हुआ ज्ञान-ध्यान में लीन रहता है, वह साधु है। इस प्रकार दिगम्बर मुनियों को अपने कर्तव्य के अनुसार जीवन-यापन करना पड़ता है। आचार्य महाराज का जीवन सद्य के उद्योग में ही लग्न रहता है, इस कारण कोई कोई आचार्य विशेष ज्ञान-ध्यान करने की नियत से अपने स्थान पर किसी योग्य शिष्य को नियुक्त करके स्वयं साधुपद में आ जाते हैं। मुनि-दशा ही साक्षात् मोक्ष का कारण है।

## दिगम्बर मुनि के पर्यायवाची नाम

दिगम्बर मुनि के लिये जैनशास्त्रों में अनेक शब्द व्यवहृत हुये मिलते हैं। तथापि जैनैतर साहित्य में भी वह एक से अधिक नामों से उल्लिखित हुये हैं। संक्षेप में उन का साधारण सा उल्लेख कर देना उचित है, जिससे किसी प्रकार की शंका की स्थान न रहे। साधारणतः दिगम्बर मुनि के लिये व्यवहृत शब्द निम्नप्रकार देखने को मिलते हैं:-

अकच्छ, अकिन्चन, अघेल्क (अघेलद्वती), अतिथि, अन्गारी, अपरिग्रही, अष्टीक, आर्य, ऋषि, गुणी, गुरु, जिन लिंगी, तपस्वी, दिगम्बर, दिग्वास, नमन्, निश्चेल, निर्ग्रह, निरागार, पाणिपात्र, भिक्षुक, महाद्वती, माहण, मुनि, यति, योगी, वातवस्मन्, विवस्मन्, संयमी (सयत), स्थविर, साधु, सन्यस्य, भ्रमण, क्षपणक, अनगार।

संक्षेप में इनका विवरण इस प्रकार है -

1. अकच्छ<sup>71</sup> - लंगोटी रहित जैन मुनि
2. अकिन्चन<sup>72</sup> - जिसके पास किंचित मात्र (जरा भी) परिग्रह न हो वह जैन मुनि,
3. अघेल्क या अघेलद्वती - चेल अर्थात् वस्त्ररहित साधु। इस शब्द का व्यवहार जैन और जैनैतर साहित्य में हुआ मिलता है। "मूलाचार"<sup>73</sup> में कहा है -

"अघेल्कं लोचो वोसट्टसरीदा य पडिह्लिहण।

एसो हु लिंगकप्पो चदुव्विओ होदिणादव्वो ।। 908 ।।"

अर्थ - आघेल्क्य अर्थात् कपड़े आदि सब परिग्रह का त्याग, केश लोंच, शरीर सस्कार का अभाव, मोर पीछी- यह चार प्रकार लिंगभेद जानना।"

श्वेताम्बर जैन ग्रंथ "आचारांगसूत्र" में भी अघेल्क शब्द प्रयुक्त हुआ मिलता है -

"जे अघेले परि वुसिए वस्सण विववुस्सणो एवभवद।"<sup>74</sup>

"अघेले ततो घाई, तं बोसज्ज वस्सनगारे।"<sup>75</sup>

उनके "ठाणामसूत्र" में है "पद्याहि ठाणेहि सम्णे निगय्थे अघेलेए सघेलेत्याहि निगय्थीहि सदि सेवसथाणे नाइक्कमर्ह।" अर्थात् "और भी पाच कारण से वस्त्र रहित साधु वस्त्र सहित साध्वी साथ रहकर जिज्ञासा का उल्लंघन करते हैं।"<sup>76</sup>

71 बुजैश, पृ ४

72 (Ibid)

73 पृष्ठ ३२६

74 आचा पृ १५१

75 अध्याय ६ उदेम १ सूत्र ४

76 ठाणा पृ ५६१

बौद्ध साहित्य में भी जैनमुनियों का उल्लेख "अवेलेक" रूप में हुआ मिलता है। जैसे "पाटिकपुस्त अवेलेके" अवेलेक पाटिक पुत्र, यह जैन साधु थे।<sup>77</sup> चीनी त्रिपिटक में भी जैनसाधु "अवेलेक" नाम से उल्लिखित हुये हैं।<sup>78</sup> बौद्ध टीकाकार बुद्धजोष "अवेलेक" से भाव नान के लेते हैं।<sup>79</sup>

4. अतिथि - ज्ञानादि सिद्धयर्थ तनुस्यित्पर्यान्नाय य स्वयम्, यत्नेनातति रोहं वा न तिथिर्यस्य सोऽतिथि.

-- साधार धर्मांगुल अ 5 श्लो. 42।

जिनके उपवास, व्रत आदि करने की गृहस्थ श्रावक के समान अष्टमी आदि कोई खास तिथि (तारीख) नियत न हो जब चाहे करें।

5. अन्गार<sup>80</sup> - आगार रहित, गृहत्यागी दिगम्बर मुनि। इस शब्द का प्रयोग - अण्यारमहरिसीण, मूलाचार, अन्गार भावनाधिकार श्लो.2 में, अन्गार म्हाषिणा इसही श्लोक की संस्कृत छाया और "न विद्यतेऽगारं गृहं स्त्रवाकिकं पातेऽन्गारा" इसही श्लोक की संस्कृत टीका में मिलता है।

श्वेताम्बरीय "अन्गारग सूत्र में है. "त वोसज्ज वत्थम्गारे।"<sup>81</sup>

6 अपरिब्रही - तिल्लुपमात्र परिग्रह रहित दिग. मुनि।

7 अघीक - लज्जाहीन, नंगेमुनि। इस शब्द का प्रयोग अजेन ग्रथकारों ने दिगम्बर मुनियों के लिये घृणा प्रकट करते हुये किया है, जैसे बौद्धों के दाठावध में है।<sup>82</sup>

इने अहिरिका सब्बे सद्दादिगुणवज्जिता।

यद्दा सठाव दुप्पत्था सग्गमोक्ख विबन्धका ।। 88 ।।"

बौद्ध नैयार्थिक कमलशील ने भी जैनों का अघनीक नाम से उल्लेख किया है। (अघनीकादयश्चोदयन्ति, स्याद्वाद परीक्षा प्र तत्त्वसग्रह पृ 486)। वाचस्पति अभिधान कोष में भी अघनीक को दिगम्बर मुनि कहा है अघनीक क्षण के तस्य दिगम्बरत्वेन लज्जाहीनत्वात् तथात्वम्।" हेतु बिन्दुनर्क टीका में भी जैन मुनि के धर्म का उल्लेख क्षणक और अघनीक नाम से हुआ है। तथा श्वेताम्बराचार्य श्री वादिदेवसुरि ने भी अपने स्याद्वाद-रत्नाकर ग्रथ में दिगम्बर जैनों का उल्लेख अघनीक नाम से किया है। (स्याद्वादरत्नाकर पृ 230)।<sup>83</sup>

77 भगवतु, पृ २५५

78 "वीर" वर्ष ४ पृ ३५३

79 अवेलेकोऽतिनिघ्येत्तो नगो - IHO III २४५

80 बृजेश पृ ४

81 आचा, पृ २१०

82 दाठा, पृ १४

83 पुरातत्व वर्ष ५ अंक ४ पृ २६६-२६७

8. आर्य - दिगम्बर मुनि। दिगम्बराचार्य शिवाय अपने दिगम्बर गुरुओं का उल्लेख इसी नाम से करते हैं - 84

"अज्ज जिम्मवदिपणि, सत्तमुत्तमणि अज्जमिस्सदीर्य।

अवगमिष पादभूले सन्नं सुत्तं च अत्वं च ।।

पुष्पावरिष निषट्ठा उपजीविता इना ससत्तीर।

आराधयन् सिवउपेण पाणिदलभीजिणा रइदा ।।"

यह सब आर्य (साधु) पाणिपात्र भोजी दिगम्बर थे।

9. ऋषी - दिगम्बर साधुका एक भेद है (यह शब्द विशेषतया ऋद्धिधारी साधु के लिये व्यवहृत होता है)। श्री कुन्दकुन्दाचार्य इसका स्वरूप इस प्रकार निर्दिष्ट करते हैं - 85

नव, राव, दोष, मोहो, कोहो लीहो व जस्स आबत्ता।

पंच महण्वक्थारा आवदणं महरिसो भणिवं ।। 6 ।।

अर्थात् - मद, राग, दोष मोह, क्रोध, लोभ, माया आदि से रहित जो पद्यमहाव्रतधारी है, वह महा ऋषि है।

10. कणी - मुनियों के गण में रहने के कारण दिगम्बर मुनि इस्नाम से प्रसिद्ध होते हैं। मूलधार में इसका उल्लेख निम्न प्रकार हुआ है -

"विस्समिदो तदिदवसं मोभसित्ता णिवेदवदि गणिणो ।" 86

11. गुरु - शिष्यगण - मुनि ध्यायकादि के लिये गुरु होने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से भी अभिहित हैं। उल्लेख यू मिलता है -

"एवं अपुच्छित्ता सगक्खं गुरुणा विसज्जिओ संतो ।" 87

12. जिनलिनी<sup>88</sup> - जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदिष्ट नग्न भेष का पालन करने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

13. तपस्वी - विशेषतः तप में लीन होने के कारण दिगम्बर मुनि तपस्वी कहलाते हैं। रत्नकरण्डकश्रावकाचार्य में इसकी व्याख्या निम्नप्रकार की गई है। -

"विषवाभावजातीतो विरासम्भोपरिग्रह ।

ज्ञान ध्यान तपोरत्नस्तपस्वी स प्रशस्यते ।। १० ।।" 89

84 जैहि, भा १२ पृ ३६०

85 अष्ट, पृ ११४

86 मूला, पृ ६५

87 मूला, पृ ६७

88 कुञ्जेश, पृ ४

89 रत्ना, पृ

14. दिग्म्बर - दिखावे उन के कस्त्र हैं इसलिये जैन मुनि दिग्म्बर हैं। मुनि कनकामर अपने को जैन मुनि हुआ दिग्म्बर शब्द से ही प्रकट करते हैं :-

"कङ्कराकङ्कं हुकङ्कं दिक्कंवरण ।  
सुप्रसिद्धं नाम कङ्कमावरण ॥" 90

हिन्दू पुराणादि ग्रन्थों में भी जैन मुनि इस नाम से उल्लिखित हुए हैं।<sup>91</sup>

15. दिग्वास - वह भी नं 14 के भाव में प्रयुक्त हुआ जैनैतर साहित्य में मिलता है। विष्णु पुराण में (5/10) में है-दिग्वाससामर्थं धर्मः ।

16. नग्न - क्याजातरूप जैन मुनि होते हैं, इसलिये वह नग्न कहे गए हैं। श्री कुन्दकुन्दाचार्य जी ने इस शब्द का उल्लेख यों किया है। -

"भावेण होई जगो, बाहिर लिंगेण किं च जगणेय ॥" 92  
वराहमिहिर कहते हैं - "नग्नान् जिनानां विदुः" 93

17. निश्चेल - कस्त्र रहित होने के कारण यह नाम है। उल्लेख इस प्रकार है -  
"निश्चेल पाणिपस्तं उवङ्कट्ट परम जिणवरियेहि ॥" 94

18. निर्मन्थ - ग्रन्थ अर्थात् अन्तर-बाहर सर्वथा परिग्रह रहित होने के कारण दिग्म्बर मुनि इस नाम से बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। धर्मपरीक्षा में निर्मन्थ साधु को वाह्याभ्यन्तर ग्रन्थ (परिग्रह) रहित नग्न ही लिखा है -

"त्वक्तवाह्वान्तरग्रन्थो निःकषायो जितेन्द्रियः ।  
परीषदसह साधुर्जातरूपधरो मतः ॥ 18 ॥ 76 ॥"

"मूलाचार" में भी अचेलक मूल गुण की व्याख्या करते हुये साधु को निर्मन्थ भी कहा है -

"वत्थाजिणवक्केण व अहवा पत्तादिणा असंवरण ॥ 95  
मिम्भूसण्ण णिग्गथ अट्ठेलक्क जगदि पूज्ज ॥ 30 ॥

"भद्रबाहु चरित्र के निम्न श्लोक भी निर्मन्थ शब्द का भाव दिग्म्बर प्रकट करते हैं - 96

90 वीर, वर्ष 8 पृष्ठ 201

91 विष्णु पुराण में है 'दिग्म्बरो मुण्डी वर्षपत्रधर' [4-2] 'पद्मपुराण (भूमिखण्ड, अध्याय 44), प्रबोधयन्त्रोदकनाटक अंक 3 (दिग्म्बर सिद्धान्त), पद्यतन्त्र "एकाकी गृहसंत्यक्त पाणिपात्रो दिग्म्बर ।" - पद्यतन्त्र !

92 अष्ट, पृ 200

93 वरह मिहिर 14140

94 अष्ट, पृ 43

95 मूला, पृ 13

96 भद्र., पृ 48 व 48

निग्रन्थ चार्त्तुयुञ्ज सङ्गन्धनेन वै ज्ञाहाः ।  
व्याचक्षन्ते शिवं गुणां तद्वदो न छटानदेत् ॥ १९ ॥

अर्थ - "जो मूर्ख लोग निग्रन्थ मार्ग के बिना परिग्रह से सद्भाव में भी मनुष्यों को मोक्ष का प्राप्त होना कहते हैं उनका कहना प्रमाणभूत नहीं हो सकता ।"

"अहो निग्रन्थता शून्यं किमिदं नीतनं मतम् ।

न वैऽत्र बुज्जते गन्तुं पात्रदण्डादिमण्डितम् ॥ १४५ ॥

अर्थ - "अहो ! निग्रन्थता रहित यह दण्ड पात्रादि सहित नवीन मत कौन है ? इन के पास भेरा जाना योग्य नहीं है ।"

भगवन्मदावहादगन्धा गृहीतात्तर पूजितात् ।

निग्रन्थपदवीं पूर्तां हित्वा संगं मुदाऽखिलम् ॥ १४९ ॥

अर्थ - "भगवन् । मेरे आग्रह से आप सब परिग्रह छोड़ कर पहले ग्रहण की हुई देवताओं से पूजनीय तथा पवित्र निग्रन्थ अवस्था ग्रहण कीजिये ।" सग शब्द का अर्थ अगले श्लोक में संग कसनदिकमद्रजसा ।" किया है । अतः यह स्पष्ट है कि निग्रन्थ अवस्था वस्त्रादि रहित दिगम्बर है किन्तु दुर्भाग्य से जैनसमाज में कुदृष्टि से लोग हो गए हैं जिन्होंने शिथिलाधार के पोषण के लिए वस्त्रादि परिग्रहयुक्त अवस्था को भी निग्रन्थ मार्ग घोषित कर दिया है । आज उनका संप्रदाय श्वेताम्बर जैन नाम से प्रसिद्ध है । यद्यपि उनके पुरातन ग्रन्थ दिगम्बर भेषको प्राचीन और श्रेष्ठ मानते हैं किन्तु अपने को प्राचीन संप्रदाय प्रगट करने के लिये वह वस्त्रादि युक्त भी निग्रन्थमार्ग प्रतिपादित करते हैं । यह मान्यता पुष्ट नहीं है । इसलिये संक्षेप में इस पर यथा विचार कर लेना समुचित है ।

श्वेताम्बर ग्रन्थ इस बात को प्रकट करते हैं कि दिगम्बर ( नान ) धर्म को भगवान् ऋषभदेव ने पालन किया था-वह स्वयं दिगम्बर रहे थे<sup>97</sup> और दिगम्बर वेध इतर-वेधो से श्रेष्ठ है ।<sup>98</sup> तथापि भगवान् महावीर ने निग्रन्थ श्रमण के लिए दिगम्बरत्व का प्रतिपादन किया था और आगामी तीर्थंकर भी उस का प्रतिपादन करेंगे, यह भी श्वेताम्बर शास्त्र प्रगट

97 'कल्पसूत्र' - JS pt 1 p 254

98 आचारार्ग सूत्र में कहा है -

"Those are called naked] who in this world] never returning (to a worldly state)] (follow) my religion according to the commandment this highest doctrine has here been declared for men " -- JS 1 p 56

"आउरण बज्जियाणां विमुद्धजिणकप्पियाणन्तु ।"

अर्थ - "वस्त्रादि आवश्यकयुक्त साधु से आवरण रहित जिनकल्पित साधु विशुद्ध है । ( संवता १६३४ में मुदित प्रवचनसारोद्धार भाग ३ पृ १३ )

करते हैं।<sup>99</sup> अतः स्वयं उनके अनुसार भी वस्त्रादियुक्त वेध श्रेष्ठ और मूल निग्रन्ध धर्म नहीं हो सकता।

श्वेताम्बराचार्य श्री आत्माराम जी ने भी अपने "तत्त्वनिर्वाणसाद" में निग्रन्ध शब्द की व्याख्या दिगम्बर भवपौषक रूप में दी है, यथा-

कथा कौपीनोत्तरा समादीनाम् त्यागिनो यथा जात रूपधरा निग्रन्धा निष्परिग्रहा ।

जैनर साहित्य और शिलालेखीय साक्षी भी उक्त व्याख्या की पुष्टि करती है। वैदिक साहित्य में निग्रन्ध शब्द का व्यवहार दिगम्बर साधु के रूप में ही हुआ मिला है। टीकाकार उत्पल कहते हैं -<sup>100</sup>

"निग्रन्धो नमः क्षणिकः ।"

इसी तरह सायणाचार्य भी निग्रन्ध शब्द को दिगम्बर मुनि का द्योतक प्रगट करते हैं -<sup>101</sup>

"कथा कौपीनोत्तरा समादीनाम् त्यागिनो, यथाजातरूपधरा निर्गन्धा-निष्परिग्रहा" । इति संवर्तभृति ।"

हिन्दू पद्यपुराण में दिगम्बर जैन मुनि के मुख से कहलाया गया है -

"अर्हन्तो देवता यत्र, निर्गन्धो गुरुच्यते ।"-

अब यदि निग्रन्ध के भाव वस्त्रधारी साधु के होते तो दिगम्बर मुनि उसे अपने धर्म का गुरु न बताते। इससे स्पष्ट है कि यहाँ भी निर्गन्ध शब्द दिगम्बर मुनि के रूप में व्यवहृत हुआ है।

"ब्रम्हाण्डपुराण" के उपोद्घात 3 अ 14 पृ 104 में है -

"नगनादयो न पश्येषु श्राद्धकर्म व्यवस्थितम् ॥ 34 ॥"

अर्थात् - "जब श्राद्धकर्म में लगे तब नगनादिकों को न देखे।" और आगे इसी पृष्ठ पर 39 वें श्लोक में लिखा है कि नगनादिक कौन हैं।

"सूः श्रावक निग्रन्धा इत्यादि"<sup>102</sup>

99 "सेजहानाम अजजोमए समणाण निगगंथाण नगग्भावे मुण्डभावे अणहाणए अदन्तवणे अट्ठत्तए अणुवाहाणए भूमिसेज्जा फलागसेज्जा कट्टसेज्जा केसलोए बंधदेरवासे ल्हावलह वित्तीओजाव पणणात्ताओ एवांनेव महा पडमेवि अरहा समणाण णिगगथाण नगग्भावे जाव ल्हावलह वित्तीओ जाव पननवेहिंस्ति ।" -अर्थात् भगवान महावीर कहते हैं कि भ्रमण निग्रन्धकों नगग्भावे मुण्डभावे अस्नान, छत्र नहीं करना, परगखी नहीं पहनना, भूमिशैया, केशलीच, ब्रह्मचर्य पालन, अन्य के गृह में भिक्षार्थ जाना, आहार की वृत्ति जैसे मैंने कहीं जैसे महापद्म अरहत्तमी कहेंगे।

ठाम्बा, पृ. ८१३

'नगिणापिडोसगाहमा मुण्डाकणट्ट विणट्टण ॥ ६२ ॥ - सबडांग

'अहांइ भगवं एवं-से दंते दविए दोसट्ठाकाएत्तिवट्ठे- माहणेत्ति व, समणेत्ति वा, भिक्खुत्ति वा, णिगगंतेत्ति वा पणिभाह भेते ।' - सुवडांग २४८

100 IHQ III, २४५

101 तत्त्वनिर्वाणसाद पृष्ठ ५०३--व दि जै १०-१-४८

102 वैजै, पृ १४

बुद्ध श्रावक शब्द कुल्लक-ऐलक का छोटक है तथा निगन्थ शब्द दिगम्बर मुनि का छोटक है अर्थात् जैन धर्म के किसी भी गृहत्यागी साधुको श्राद्धकर्म के समय नहीं देखना चाहिये, क्योंकि संभव है कि यह उपदेश देकर उसकी निस्सारता प्रकट कर दें। अतः वैदिक साहित्य के उल्लेखों से भी निर्गन्थ शब्द नग्न साधु के लिये प्रयुक्त हुआ सिद्ध होता है।

बौद्ध साहित्य भी इसकी बात का पोषण करता है। उसमें निर्गन्थ शब्द साधुरूप में सर्वप्रथम नग्न मुनि के भाव में प्रयुक्त हुआ मिलता है। भगवान् महावीर को बौद्ध साहित्य में उनके कुल अपेक्षा निगन्थ नातपुत्र कहा है,<sup>103</sup> और श्वेताम्बर जैन साहित्य से भी यह प्रकट है कि निगन्थ महावीर दिगम्बर रहे थे। बौद्ध शास्त्र भी उन्हें निगन्थ और अचेत्क<sup>104</sup> प्रकट करते हैं। इससे स्पष्ट है कि बौद्धों ने निगन्थ और अचेत्क शब्दों को एक ही भाव (Sense) में प्रयुक्त किया है अर्थात् नग्न साधु के रूप में। तथापि बौद्ध साहित्य के निम्न उद्धरण भी इस ही बात के छोटक हैं:-

दीघनिकाय ग्रन्थ (1) 78-79 में लिखा है कि -<sup>105</sup>

"Pesendi, King of Kosal saluted Niganthas,"

अर्थात्-- कौराल का राजा पसेनदी (प्रसेनजित) निगन्थों (नाम जैन मुनियों) को नमस्कार करता था।

बौद्धों के "महावग्ग" नामक ग्रन्थ में लिखा है कि "एक बड़ी संख्या में निर्गन्थराज वैशाली में, सड़क सड़क और चौराहे-चौराहे पर शोर मचाते दौड़ रहे थे।" इस उल्लेख से दिगम्बर मुनियों का उस समय निर्वाध रूप में राज मार्गों से चलने का समर्थन होता है। वे अष्टमी और चतुर्विंशती को झकट्टे होकर धर्मोपदेश भी दिया करते थे।<sup>106</sup>

"विशाखावत्थु" में भी निर्गन्थ साधु को नग्न प्रकट किया है।<sup>107</sup> दीघनिकाय के पासादिक सुत्तन्त में है कि "जब निगन्थ नातपुत्र का निर्वाण हो गया तो निगन्थ मुनि आपस में झगड़ने लगे। उनके इस झगड़े को देखकर श्वेतवस्त्र धारी गृहीश्रावक बड़े दुःखी हुये।<sup>108</sup> अब यदि निगन्थ साधु भी श्वेतवस्त्र पहनते होते तो श्रावकों के लिये वह एक विशेषण रूप में न लिखे जाते। अतः इससे भी निर्गन्थसाधु" का नग्न होना प्रकट है।

103 मज्झिमनिकाय ११६२; अंगुत्तरनिकाय ११२२०१

104 जातक भा २ पृ १८२ - भगवतु २४४।

105 Indian Historical Quarterly, vol I p 153

106 महावग्ग २ १ १ और भ महावीर ओर न बुद्ध पृ २८०

107 भगवतु पृ २४२।

108. "तस्स कालकिरियाव भिन्ना निगण्ठ द्वेधिक जाता, भण्डन जाता, कलह जाता वधो एवं खोमजेनिगन्ठेसु नाथपुत्तिवेषु वत्तति ये पि निगन्ठस्स नाथपुत्तस्स सावका गिही ओदातवसना दुरबन्धाते इत्यादि।" (PTS III 117-118) भगवतु पृ २१४

"दाढावंसो" में "अहिरिक" शब्द के साथ साथ निगण्ट शब्द का प्रयोग जैन साधु के लिए हुआ मिलता है।<sup>109</sup> और 'अटनीक' का अहिरिक शब्द नग्न का द्योतक है। इसीलिये बौद्ध साहित्यानुसार भी निग्नन्ध साधु को नग्न मानना ठीक है।

शिलालेखीय साक्षीभी इसी बात को पुष्ट करती है। कदम्बवशी महाराज धीविजय शिवमूषा वर्मण अपने एक दान पत्र में अर्हन्तु भगवान और श्वेताम्बर महाश्रमण संघ तथा निग्नन्ध अर्थात् दिगम्बर महाश्रमण संघ के उपभोग के लिये कलस्यंग नामक ग्राम को भेंट में देने का उल्लेख किया है।<sup>110</sup>

यह ताक्षत्र ई. पाँचवीं शताब्दि का है। इससे स्पष्ट है कि तब के श्वेताम्बर भी अपने को निर्गन्ध न कहकर दिगम्बर संघ को ही निग्नन्ध संघ मानते थे। यदि यह बात न होती तो वह अपने को 'श्वेतपट' और दिगम्बर को 'निग्नन्ध' न लिखाने देते।

कदम्ब ताक्षत्र के अतिरिक्त विक्रम सं 1161 का ग्वालियर से मिला एक शिलालेख भी इसी बात का समर्थन करता है। उसमें दिगम्बर जैन यशोदेव को 'निग्नन्धनाथ' अर्थात् दिगम्बर मुनियों के नाथ श्रीजिनेन्द्र का अनुयायी लिखा है। अतः इससे भी स्पष्ट है कि 'निग्नन्ध' शब्द दिगम्बरमुनि का द्योतक है -।<sup>111</sup>

चीनी यात्री हानसांग के वर्णन से भी यही प्रगत होता है कि निर्गन्ध का भाव नग्न अर्थात् दिगम्बर मुनि है -

"The Li-hi (Nirgranthas) distinguish themselves by leaving their bodies naked and pulling out their hair" (St Julien, Vienna, p 224)

अतः इन सब प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि 'निग्नन्ध' शब्द का ठीक भाव दिगम्बर (नग्न) मुनिका है।

19. निरागार - आगार घर आदि परिग्रह रहित दिगम्बर मुनि। 'परिग्रहरदिओ निरावारो'।<sup>112</sup>

109 'इमे अहिरिका सज्ये सद्दादिगणु वज्जित। यथा संठाद्य दुप्यज्ज समामोक्ख विबन्धक ।।८८।। इति सो चिन्तयितवान गृहसीवो नराधिपो। पट्वाजेसि सकारट्ठा निगण्टे ते असेसके।।८९।।' - दाढावंसो पृ. १४

110 कदम्बाना धीविजयशिवमूषाशवर्मा कालस्यंग ग्राम त्रिधा विभज्य दत्तवान् अत्रपूर्वमर्हच्छाला परमपुष्कलस्थान निवासिभ्य भगवर्दहन्महाजिनेन्द्र देवताभ्य एकोभोग द्वितीयोहत्प्रोत्सद्गन्मकरण परस्य श्वेतपट महाश्रमणसंघोपभोगाय तृतीयो नियथमहाश्रमणासंघोपभोगावैति -----।" -- जैहि भा. १४ पृ २२६

111 The Gwalior inscrips of Vik S 1161(1104 A D )  
"It was composed by a Jaina Yasodeva, who was an adherent of the Digambara or nude sect (Nigranthanatha)" --Catalogue of Archaeological Exhibits in the U P P Museum Lucknow Pt I (1915) P 44

112 अष्ट पृ ६०

20. पाणिपात्र - करपात्र ही जिनका भोजन पात्र है, वह दिगम्बर मुनि।  
'णिवेल पणिपत्त उक्खट्ठं' परम जिणवरि देहिं ।'
21. भिक्षुक - भिक्षावृत्तिकर धारक होने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से प्रसिद्ध होत हैं। इसका उल्लेख 'मूलाचार' में मिलता है -  
'ममवचकाकपउत्ती भिक्षु सावउज्जउजसंजुत्ता।  
खियं निवारयंती तीहिं दु गुत्तो हवदि एस्सो।। 331।।'
22. महाव्रती<sup>113</sup> -- पंच महाव्रतों को पालन करने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से प्रसिद्ध हैं।
23. माहण - ममत्त्व त्यागी होने के कारण माहण नाम से दिगम्बर मुनि अभिहित होता है।
24. मुनि - दिगम्बर साधु श्रीकुन्दकुन्दार्च्य इस का उल्लेख यू करते हैं -<sup>114</sup>  
"पंचमहव्यव जुत्ता पंचिदिव संजमा गिरावेक्खा।  
सज्जामवद्धानं जुता गुणिवर वसहा णिइच्छंति।।"
25. युति - दि मुनि कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं-  
सुदं संजयवरण जइधम्मं णिल्फलं वोच्छे।<sup>115</sup>
26. योगी - योगनिरत होने के कारण दि साधु का यह नाम है। यथा -<sup>116</sup>  
"सुजं जाणिवृण जोई जो अत्थो जोइ उण अणवरयं।  
अव्वावाहनवत्तं अणोवयं लहइ णिव्याणं।।"
27. वातवसन - वायुरूपी वस्त्रधारी अर्थात् दिगम्बर मुनि। "श्रमण दिगम्बरा श्रमण वातवसना" इतिनिघण्टु
28. विवसन - वस्त्र रहित मुनि। वेदान्तसूत्र की टीका में दिगम्बर जैन मुनि 'विवसन' और 'विसिद्ध' कहे गए हैं।<sup>117</sup>
29. संयमी (संयत्) - यमनियमों का पालक सो दिगम्बर मुनि। उल्लेख यू है -  
"पद्यमइव्यय जुत्तो तिहिं गुतिहिं जो स सज्जदो होइ।"<sup>118</sup>
30. स्थविर - दीर्घ तपस्वी रूप दिगम्बर मुनि। 'मूलाचार' में उल्लेख इस प्रकार है -<sup>119</sup>  
"तत्थ न कप्यई वासो जत्थ इने मत्थि पच्च आधारा।  
आइरिक्खउवज्जाका पवत्त वेरा गणधरा व।।"

113 बृजेश, पृ ४

114 अष्ट, पृ १४०

115 अष्ट, पृ. ६६

116 अष्ट, पृ २६०

117 वेदान्तसूत्र २-२-३३ शंकरभाष्य -- वीर वर्ष २ पृ ३१६

118 अष्ट, पृ ६१

119 मूला, पुष्ट ६१

31. साधु - अरुणसाधना में लीन दिगम्बर मुनि इनको भी कुछ परिग्रह न रखने का विधान है:-<sup>120</sup>

"बालग्य कीडिकत्तं परिग्रहं नृपं व होई साधुणां।

भुजैव पाथिपत्ते दिग्गतां इवकं टावन्धि ॥17॥"

32. सम्बन्ध<sup>121</sup> - सन्यास ग्रहण किये हुये होने के कारण दि. मुनि इस नाम से भी प्रख्यात हैं।

33. भ्रमण - अर्थात् समरसीभाव सहित दिगम्बर साधु। उल्लेख वृ है-

'बन्धे तव सावण्णा' (बन्धे तपः भ्रमणान्),<sup>122</sup>

'सन्नोभेति व पठनं विदिभिं सव्यत्वं संजदोभेति।' <sup>123</sup>

34. क्षपणक - नग्न साधु। दिगम्बराचार्य योगीन्द्र देव ने यह शब्द दिगम्बर साधु के लिये प्रयुक्त किया है -<sup>124</sup>

"तस्मात् कूट्टं क्यड्डं सूरुडं पंडिडं दिव्वु।

असवण्णं बंदुडं सेचड्डं कूट्टं वरणइं सव्व ॥ 83 ॥"

श्वेताम्बर जैन ग्रन्थों में भी दिगम्बर मुनियों के लिये यह शब्द व्यवहृत हुआ है -<sup>125</sup>

"खोणानराजकुजोऽपिसमुद्रं सूरि-

गच्छं अशंस किल दमकण प्रमाण (1)।

जित्वा तदां क्षपणकान्पदवर्जं विदेने

मागेददे (1) भुजगनाथनमस्व तीर्थे ॥"

श्री मुनिसुन्दर सूरी ने अपनी गुर्वावली में इस श्लोक के भाव में 'क्षपणकान्' की जगह 'दिगवसनान्' पद का प्रयोग करके इसे दिगम्बर मुनि के लिये प्रयुक्त हुआ स्पष्ट कर दिया है।<sup>126</sup> श्वेताम्बराचार्य हेमचन्द्र ने अपने कोष में 'नग्न' का पर्यायवाची शब्द 'क्षपणक' भी दिया है।<sup>127</sup> यही बात श्रीधरसेन के कोष से भी प्रकट है।<sup>128</sup> अजैन शास्त्रों में भी 'क्षपणक' शब्द दिगम्बर जैन साधुओं के लिए व्यवहृत हुआ मिलता है। 'उत्पल' कहता है -<sup>129</sup>

120 अष्ट, पृ. ६७

121 बुजैश, पृ. ४

122 अष्ट, पृ. ३७

123 मूला, पृ. ४५

124 'परमात्म प्रकाश' - रश्मा पृ. १४०

125 रश्मा, पृ. १३६

126 रश्मा, पृ. १४०

127 "नग्नो विद्याससि मागधे घे क्षपणके"।

128 "नग्नसिषु विवळे स्यातपुंसि क्षपणवन्दिनो ।"

129 IHQ III, 245

"निर्वन्धो जगः क्षपणक।"

"अद्वैतब्रह्मसिद्धि" (पृ 169) से भी वही प्रकट है:-

"क्षपणका जैन धर्म सिद्धान्तप्रवर्त का इतिवृत्ति।"

"प्रबोधचंद्रोदय नाटक" (अंक 3) में भी वही निर्दिष्ट किया गया है:- 130

"क्षपणकवेशी दिगम्बर सिद्धान्तः।"

"पंचतंत्र उपरोक्षितकारकतंत्र" 131 "दशकुमार चरित्र" 132

तथा "मुद्राराक्षस नाटक" 133 में भी "क्षपणक" शब्द दिगम्बर मुनि के लिए व्यवहृत हुआ मिलता है। मोनियर विलियम्स के 'संस्कृतकोष' में भी इसका अर्थ वही लिखा है। 134

इस प्रकार उपरोक्त नामों से दिगम्बर जैन मुनि प्रसिद्ध हुये मिलते हैं। अतएव इनमें से किसी भी शब्द का प्रयोग दिगम्बर मुनि का घोटक ही समझना चाहिये। ●

**जगतगुरु कब निज आतम ध्याऊँ.....**

जगतगुरु कब निज आतम ध्याऊँ ॥टेक॥  
नग्न दिगम्बर मुद्रा धरिके, कब निज आतम ध्याऊँ ।  
ऐसी लब्धि होय कब मोकूँ, जो निजवाँछित पाऊँ ॥१॥  
कब गृहत्याग होऊँ बनवासी, परम पुरुष लौ लाऊँ ।  
रहूँ अडोल जोड़ पयासन, कर्म कलंक खिपाऊँ ॥२॥  
केवलज्ञान प्रगट करि अपनो, लोकालोक लखाऊँ ।  
जन्म-जरा-दुःख देत तिलांजलि, हो कब सिद्ध कहाऊँ ॥३॥  
सुख अनन्त बिलसूँ तिहि ध्यानक, काल अनन्त गमाऊँ ।  
'मानसिंह' महिमा निज प्रगटे, बहरि न भव में आऊँ ॥४॥

130 J G XIV 48

131 (क्षपणक विहार गतवा) -- "एकाकीगृहसंत्यत पाणिपात्रो दिगम्बर ।

132 द्वितीय उच्छ्वास वीर वर्ष २ पृ ३१६

133 मुद्राराक्षस अंक ४ - वीर, वर्ष ४ पृ ४३०

134 "Ksapaaka is a religious mendicant, specially a Jain mendicant who wears no garment" XX Monier william's SanskritDictionary p 326

## इतिहासातीतकाल में दिगम्बर मुनि ।

"आतिथ्यरूपं मासं महावीरस्य नमसुः  
रूपमुपसदा मेतन्तिस्त्रौ शशीः सुरासुवा ।।"

- बज्रवैद अ. 19 मंत्र 14

भारतवर्ष का ठीक ठीक इतिहास ईस्वी पूर्व आठवीं शताब्दि तक जाना जाता है। इसके पहले की कोई भी बात विश्वसनीय नहीं मानी जाती, यद्यपि भारतीय विद्वान अपनी-अपनी धार्मिक वार्ता इस काल से भी बहुत प्राचीन मानते और उसे विश्वसनीय स्वीकार करते हैं। उनकी यह वार्ता 'इतिहासातीत काल' की वार्ता समझनी चाहिये दिगम्बर मुनियों के विषय में भी यही बात है। भगवान् ऋषभदेव द्वारा एक अज्ञात अतीत में दिगम्बर मुद्रा का प्रचार हुआ और तबसे वह ईस्वी पूर्व आठवीं शताब्दि तक ही नहीं बल्कि आजतक निर्बाध प्रचलित है। दिगम्बर मुद्रा के इस इतिहास की एक सामान्य रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत करना अभीष्ट है।

इतिहासातीत काल में प्राचीन जैन शास्त्र अनेक जैन सम्राट और जैन तीर्थंकरों का होना प्रामाण्य करते हैं और उनके द्वारा दिगम्बर मुद्रा का प्रचार भारत में ही नहीं बल्कि दूर दूर देशों तक हो गया था। दिगम्बर जैन आम्नायके प्रथमानुयोग सम्बन्धी शास्त्र इस कथा वार्ता से भरे हुये हैं, उनको हम यहाँ दुहराना नहीं चाहते, प्रत्युत जैनतर शास्त्रों के प्रमाणों को उपस्थित करके हम यह सिद्ध करना चाहते हैं कि दिगम्बर मुनि प्राचीन काल से होते आये हैं और उनका विहार सर्वत्र निर्बाध रूप में होता रहा है।

भारतीय साहित्य में वेद प्राचीन ग्रन्थ माने गये हैं। अतः सबसे पहिले उन्हीं के आधार से उक्त व्याख्या को पुष्ट करना श्रेष्ठ है। किन्तु इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि वेदों के ठीक-ठीक अर्थ आज नहीं मिलते और भारतीय धर्मों के पारस्परिक विरोध के कारण बहुत से ऐसे उल्लेख उनमें से निकाल दिये गये अथवा अर्थ बदलकर रक्खे गए हैं जिनसे वेद-ब्राम्हण सम्प्रदायों का समर्थन होता था। इसी के साथ यह बात भी है कि वेदों के वास्तविक अर्थ आज ही नहीं मुद्दतों पहले लुप्त हो चुके थे<sup>135</sup> और यही कारण है कि एक ही वेद के अनेक विभिन्न भाष्य मिलते हैं। अतः वेदों के मूल वाक्यों के अनुसार उक्त व्याख्या की पुष्टि करना यहाँ अभीष्ट है।

135 इ पूर्व ७ वीं शताब्दिका वैदिकविद्वान् कौत्स्य वेदों को अनर्थक बतलाता है। [अनर्थ का हि मन्त्रा 1, यास्क, निरुक्त १५-१] यास्क इसका समर्थन करता है। [निरुक्त १६/२] देखो 'Asure India' p IV

“यजुर्वेद” अ 19 मंत्र 14 में, जो इस परिच्छेद के आरम्भ में दिया हुआ है, अन्तिम तीर्थंकर महावीर का स्मरण नग्न विशेषण के साथ किया गया है। ‘महावीर’ और ‘नग्न’ शब्द जो उक्त मन्त्र में प्रयुक्त हुये हैं उनके अर्थ कोष ग्रन्थों में अन्तिम जैन तीर्थंकर और दिगम्बर ही मिलते हैं।<sup>136</sup> इसीलिये इस मन्त्र का सम्बन्ध भगवान् महावीर से मानना ठीक है। वैसे बौद्ध साहित्यादि से स्पष्ट है कि महावीर स्वामी नग्न साधु थे। इस अवस्था में उक्त मन्त्र में ‘महावीर’ शब्द ‘नग्न’ विशेषण सहित प्रयुक्त हुआ इस बात का द्योतक है कि उसके रचयिता को तीर्थंकार महावीर का उल्लेख करना इष्ट है। इस मन्त्र में जो शेष विशेषण हैं वह भी जैन तीर्थंकरके सर्वथा योग्य हैं और इस मन्त्र का फल भी जैन शास्त्रानुकूल है। अतः यह मन्त्र भू महावीर को दिगम्बर मुनि प्रगट करता है।

किन्तु भगवान् महावीर तो ऐतिहासिक महापुरुष मान लिये गये हैं, इसलिये उनसे पहले के वैदिक उल्लेख प्रस्तुत करना उचित है। सौभाग्य से हमें ‘ऋक्संहिता’ (10/36-2) में ऐसा उल्लेख निम्न शब्दों में मिल जाता है -

“मुनियो वातवसना ।”

भला यह वातवसन-दिगम्बर मुनि कौन थे। हिन्दू पुराण ग्रन्थ बताते हैं कि वे दिगम्बर जैन मुनि थे जैसे कि हम पहले देख चुके हैं। और भी देखिये, श्रीमद्भागवत् में तीर्थंकर ऋषभदेव ने जिन ऋषियों को दिगम्बरत्व का उपदेश दिया था, वे ‘वातरशनाना ध्रमण’ कहे गये हैं।<sup>137</sup> ओ अल्ब्रेट वेबर भी उक्त वाक्य को दिगम्बर जैन मुनियों के लिये प्रयुक्त हुआ व्यक्त करते हैं।<sup>138</sup>

इसके अतिरिक्त अथर्ववेद (अ 15) में जिन ‘वात्य’ पुरुषों का उल्लेख है, वे दिगम्बर जैन ही हैं क्योंकि वात्य ‘वैदिक संस्कार हीन’ बताये गये हैं।<sup>139</sup> और उनकी क्रियायें दिगम्बर जैनों के समान हैं। वे वेदविरोधी थे। झल्ल, मल्ल, लिच्छवि, जातू, करण खस और द्राक्खि कुए वात्य क्षत्री की सन्तान बताये गये हैं।<sup>140</sup> और ये सब प्रायः जैनधर्म भुक्त थे। जातूवंश में तो स्वयं भगवान् महावीर का जन्म हुआ था। तथापि मध्यकाल में भी जैनी ‘वृत्ति’ (Verteis) नामसे प्रसिद्ध रह चुके हैं, जो ‘वात्य’ से मिलता जुलता शब्द है।<sup>141</sup> अच्छा तो इन जैन धर्मभुक्त वात्यों में दिगम्बर जैन मुनिका होना लाजमी है।<sup>142</sup> ‘अथर्ववेद’

136 वेजे, पृ, ५५-५६

137 वेजे, पृ, ३

138 IA, Vol XXX, p 280

139 अमरकोष २/८ व मनु, १०/२०, सायणाचार्य भी वही कहते हैं - “वात्यों नाम उपनयनादि संस्कारहीन पुरुष । सोऽर्थाद्विहिता क्रिया कर्तुं नाधिकारी । इत्यादि” - अथर्ववेद संहिता पृ २६६

140 मनु, १०/२२

141 सूय पृ ३६६ व ३६६

142 “वात्य” जैनी हैं, इसके लिए “भू पार्श्वनाथ” की प्रस्तावना देखिए।”

भी इस बात को प्रामाण्य करता है। उसमें ब्राह्मण के दो भेद 'हीन ब्राह्मण्य' और 'ज्येष्ठ ब्राह्मण्य' किये हैं। इनमें ज्येष्ठब्राह्मण्य दिगम्बर मुनि का द्योतक है, क्योंकि उसे 'समन्वितमेन्द्र' कहा गया है, जिसका भाव होता है। 'अपेक्षप्रजनना'।<sup>143</sup> यह शब्द 'अधनी' शब्द के अनुरूप है और इससे ज्येष्ठब्राह्मण्य का दिगम्बरत्व स्पष्ट है।

इस प्रकार वेदों से भी दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व सिद्ध है।<sup>144</sup> अब देखिये उपनिषद् भी वेदों का समर्थन करते हैं। 'जाबालोपनिषद्' निग्न्य शब्द का उल्लेख करके दिगम्बर साधु का अस्तित्व उपनिषद् काल में सिद्ध करता है-

"यथाजातरूपधरो निग्न्यो निष्परिग्रहः..

शुक्लध्यानपरायणः ..।" (सूत्र 6)

निग्न्य साधु यथाजात रूप धारी तथा शुक्लध्यान परायण होता है। सिन्धु निग्न्य (जैन) मार्ग के अन्यत्र कहीं भी शुक्ल ध्यान का वर्णन नहीं मिलता, यह पहले भी लिखा जा चुका है। 'त्रैयोपनिषद्' में 'दिगम्बर' शब्द का प्रयोग भी इसी बात का द्योतक है।<sup>145</sup> 'मृण्मकोपनिषद्' की रचना भृगु उगारिस नामक एक भूष्ट दिग जैन मुनि द्वारा हुई थी और उसमें अनेक जैन मान्यतायें तथा पारिभाषिक शब्द मिलते हैं। 'निग्न्य' शब्द, जो खास जैनों का पारिभाषिक शब्द है, इसमें व्यवहृत हुआ है और उसका विशेषण केशलौघ (शिरोकृत विधिवद्यैस्तु चीर्ण) दिया है।<sup>146</sup> तथा 'अरिष्टनेमि' का स्मरण भी किया है, जो जैनियों के बावीसवें तीर्थंकर है।<sup>147</sup> इससे भी उस काल में दिगम्बर मुनियों का होना प्रमाणित है।

अब 'रामायणकाल' में भी दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व को देखिये। 'रामायण' के 'बालकाण्ड' (सर्ग 14 श्लो 22) में राजा दशरथ धर्मणों को आहार देते बताये गये हैं ("तापसा भुञ्जते चापि धमणा भुञ्जते तथा।") और 'धमण' शब्द का अर्थ 'भूषणटीका' में

143 भषा, प्रस्तावना पृ 88-89

144 जैन ग्रन्थ कारप्रात स्मरणीय स्व ष टोहरमन्त्र जी ने आज से लगभग दो-ढाई सौ वर्ष पहले ( ) निम्न वेद मंत्रों का उल्लेख अपने ग्रन्थ मोक्षमार्ग प्रकाश में किया है और वे भी दिगम्बर मुनियों के द्योतक हैं -

१ ऋग्वेद में आया है-"ओ३म् त्रैलोक्य प्रतिष्ठितान् चतुर्विंशति तीर्थकान् ऋषभाद्या वर्द्धमातान्तान् सिद्धान् शरण प्रपद्य। ओ३म् पवित्रं नग्नमुपविप्रसाह्ये एषां नग्ना जातिर्येषां वीरा इत्यादि।"

२ यतुर्जेदं मे है- ओ३म् नमो अर्हतो ऋषभो उं ऋषभपत्रिं पूरुहृतमध्वदं यक्षेपु नग्न परममाह सरतुत वह शत्रु जयंत पशुर्गिद माहृतिरिति म्याहा।"-उं नग्न सुधीर दिग्वाससं त्रद्यगभन्वं सनातन उपैमि वीर पुरुषम है तमादित्य वर्णा तमस. परस्तात स्वाहा।" (पृ २०३)

145 "देशकालविमुक्तोऽस्मि दिगम्बर सुखोऽस्म्यहम्।"--दिमु, पृ १०

146 वीर, वर्ष ८ पृ २५३

147 स्वस्ति मस्रताद्ययौ अरिष्टनेमि । --ईशाद्य, पृ १४

दिगम्बर मुनि किया गया है<sup>148</sup>, जो ठीक है, क्योंकि दिगम्बर मुनि का एक नाम 'धम्म' भी है। तथापि जैन शास्त्र राजा दशरथ और रामचन्द्र जी आदि को जैन भक्त प्रगट करते हैं<sup>149</sup>। 'योगवासिष्ठ' में रामचन्द्र जी 'जिन भगवान' के समान होने की इच्छा प्रगट करके अपनी जैन भक्ति प्रगट करते हैं।<sup>150</sup> अतः रामायण के उक्त उल्लेख से उस काल में दिगम्बर मुनियों का होना स्पष्ट है।

"महाभारत" में भी 'नग्नक्षपणक' के रूप में दिगम्बर मुनियों का उल्लेख मिलता है<sup>151</sup>, जिससे प्रमाणित है कि "महाभारतकाल" में भी दिगम्बर जैन मुनि मौजूद थे। जैनशास्त्रानुसार उस समय स्वयं तीर्थंकर अरिष्टनेमि विद्यमान थे।

हिन्दू पुराण ग्रंथ भी इस विषय में वेदादिग्रंथों का समर्थन करते हैं। प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभदेव जी को श्रीमद्भागवत और विष्णुपुराण दिगम्बर मुनि प्रगट करते हैं, यह हम देख चुके। अब 'विष्णुपुराण' में और भी उल्लेख है। वह देखिये<sup>152</sup>। वहाँ भैरव पाराशरकृषि से पूछते हैं कि 'नम' किसको कहते हैं ?' उत्तर में पाराशर कहते हैं कि "जो वेद को न माने वह नमन है।" अर्थात् वेदविरोधी नगो साधु 'नमन' हैं। इस संबन्ध में देव और असुर सग्राम की कथा कहकर किस प्रकार विष्णु के द्वारा जैन धर्म की उत्पत्ति हुई, यह वह कहते हैं। इसमें भी जैन मुनि का स्वरूप 'दिगंबर' लिखा है -

"ततो दिगम्बरो मुण्डो बर्हिपत्र धरो क्षिज।"

देवासुर युद्ध की घटना इतिहासातीत काल की है। अतः इस उल्लेख से भी उस प्राचीन काल में दिगम्बर मुनि का अस्तित्व प्रमाणित होता है। तथा वह निर्वाध विहार करते थे, यह भी इससे प्रगट है क्योंकि इसमें कहा गया है कि वह दिगम्बर मुनि नर्मदा तट पर स्थित असुरों के पास पहुंचा और उन्हें निजधर्म में दीक्षित कर लिया।<sup>153</sup>

'पद्मपुराण' प्रथम सृष्टि खंड 13 (पृ 33) पर जैन धर्म की उत्पत्ति के सबन्ध में एक ऐसी ही कथा है, जिसमें विष्णु द्वारा मायामोह रूप दिगम्बर मुनि द्वारा जैन धर्म का विकास हुआ बताया गया है. -

बृहस्पति साहाय्यार्थं विष्णुना नाबामोह समुत्पादवम्  
दिगम्बरेण मायामोहेन दैत्यान् प्रति जैनधर्मोपरदेश दानवाना  
नाबामोह मोहितानां गुरुणा। दिगंबर जैनधर्म दीक्षा दानम्।

मायामोह को इसमें "योगी दिगम्बरो मुण्डो बर्हिपत्रधरो हय" लिखा है<sup>154</sup>। इससे भी उक्त दोनों बातों की पुष्टि होती है।

148 "धम्मणा दिगम्बरा धम्मणा वातवसना ।"

149 पद्यपुराण देखिए

150 योगवासिष्ठ अ १५ श्लो ८

151 आदिपर्व, अ ३ श्लो २६-२७

152 विष्णुपुराण तृतीयांश अ १७ च १८ -- के. जै, पृ २५ व पुरातत्व ४/१८०

153 पुरातत्व ४/१७६

154 के. जै, पृ २५

"नमस्कृत्यै-महात्मनः सितमुण्डो महाप्रभः ।  
 भाउर्जनो विविपशार्थं कक्षायां सखिधारवन् ॥  
 मुहूर्त्तया पादपादशय मस्त्रिकेन कथंकरे ।  
 पठनाभौ मन्त्रध्वनिं वेदशास्त्रं विदूषकम् ॥  
 धर्मधर्मो महाराजस्तत्रोपायात्स्वराश्रितः ।  
 सभायां तस्य वेदास्य प्रविवेश सपापयाम् ॥"

इसी 'पद्मपुराण' में (भूमिखंड अ 66)<sup>155</sup> में राजा वेण की कथा है। उसमें लिखा है कि एक दिगंबर मुनि ने उस राजा को जैन धर्म में दीक्षित किया था। मुनि का स्वरूप यूँ लिखा है -

वह नमन साधु महाराज वेण की राजसभा में पहुंच गया और धर्मोपदेश देने लगा<sup>156</sup> इससे प्रसन्न है कि दिगंबर मुनि राजसभा में भी वे रोक टोक पहुंचते थे। वेण ब्रह्मा से छठी पीढ़ी में थे।<sup>157</sup> इसलिए वह एक अतीव प्राचीनकाल में हुए प्रमाणित होते हैं।

'वायुपुराण' में भी निम्न धर्मगणों का उल्लेख है कि श्राद्धमें इनको न देखना चाहिये।<sup>158</sup>

'स्कंधपुराण' (प्रभासखंड के कन्नापथ क्षेत्र महात्म्य अ 16 पृ 221) में जैनतीर्थंकर नेमिनाथ की दिगम्बर शिव के अनुरूप मानकर जाप करने का विधान है -<sup>159</sup>

"यानोपि ततश्चके तत्र तीर्थावगाहनम् ।  
 वाद्यूय शिषोदृष्टः सुर्व बिम्बे दिगम्बर ॥ 94 ॥  
 पद्मासन स्थितः सौम्य स्तयातं तत्र संस्मरन् ।  
 प्रतिष्ठाप्य महाभूर्ति पूजवासासवासरम् ॥ 95 ॥  
 मनोभीशठार्थ सिद्धयर्थं तत सिद्धमवाप्तवान् ।  
 नेमिनाथ शिवेत्वेधं नाम चक्र शवाशन ॥ 96 ॥"

155 R C Dutt, Hindu Shastras, pt VIII pp 213 22 व JG XIV 89

156 उसने बताया कि मेरे मत में--

"अहन्तो देवता यत्र निगन्थो गुम्बुध्यते ।  
 दया वै परमो धर्मस्तत्र मोक्षं प्रदश्यते ।"

यह सुनकर वेण जैनी हो गया। ( एवं वेणस्य वै राज्ञ सुष्टिरेम्ब महात्मनः । धर्माधार परित्यज्य कथं पापे मतिर्भवेत् ॥ ) जैन सम्राट् खारवेल के शिलालेख से भी राजा वेण का जैनी होना प्रमाणित है। (जर्नल औव दी बिहार एण्ड ओडीसा रिसर्च सोसाइटी, भा १३ पृ २२४)

157 JG XIV 162 158 पुरातत्व, पृ ४ पृ १८१ 159 वैज., प ३४।

158 महावाग (१/२२-२३ SBE p 144) में लिखा है कि बुद्ध राजगृह में जब पहले पहले धर्म प्रचार को आप तो लाठी वन में "सुप्पतिथ्य" के मंदिर में ठहरे। इसके बाद इस मन्दिर में ठहरने का उल्लेख नहीं मिलता। इसका यही कारण है कि इस जैन मन्दिर के प्रबन्धकों ने जब यह जान लिया कि य बुद्ध अब जैनमुनि नहीं रहे तो उन्होंने उनका आदर करना रोक दिया। विशेष के लिए देखा भन्वु, पृ ५०-५१

159 उपर्युक्त आजीवक अनन्तजिनको अपना गुरु खताता है। आजीविकोने जैनधर्म से बहुत कुछ लिया था। अतः वह अनन्तजिन तीर्थंकर ही होना चाहिए। आर्य-परिचयण-सुस्त IHO III, 247

इस प्रकार हिन्दूपुराण ग्रन्थ भी इतिहासातीतकाल में दिगम्बर जैन मुनियों का होना प्रमाणित करते हैं।

बौद्ध शास्त्रों में भी ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि जो भगवान् महावीर पहले दिगम्बर मुनियों का होना सिद्ध करते हैं। बौद्ध साहित्य में अन्तिम तीर्थंकर निम्नग्रन्थ महावीर के अतिरिक्त श्री सुपाश्व<sup>160</sup> अनन्तजिन<sup>161</sup> और श्री पुष्पदन्त<sup>162</sup> के भी नामों उल्लेख मिलते हैं यद्यपि उनके सम्बन्ध में यह स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि वे जैन तीर्थंकर और नग्न थे, किन्तु जब जैन साहित्य में उस नाम के दिगम्बर वेपथारी तीर्थंकर महामुनीश मिलते हैं, तब उन्हें जैन और नग्न मानना अनुचित नहीं है। वैसे बौद्ध साहित्य में पार्श्वनाथ के तीर्थंकरों मुनियों को नग्न प्रगत करता है<sup>163</sup>। अतः इस श्रोत से भी प्राचीन काल में दिगम्बर मुनियों का होना सिद्ध है।

इस अवस्था में जैन शास्त्रों का यह कथन विश्वसनीय ठहरता है कि भ. ऋषभनाथ के समय से बराबर दिगम्बर जैन मुनि होते आ रहे हैं और उनके द्वारा जनता का महत् कल्याण हुआ है। जैनतीर्थंकर सब्धी राजपुत्र थे और बड़े-बड़े राज्यों को त्यागकर दिगम्बर मुनि हुये थे। भारत के प्रथम सम्राट भरत जिनके नाम से यह देश भारत वर्ष कहलाता है, दिगम्बर मुनि हुये थे। उनके भाई श्रीबाहुतलिजी अपनी तपस्या के लिए प्रसिद्ध हैं। तपस्वी रूप में उनकी महान् मूर्ति आज भी अखण्डगोल में दर्शनीय वस्तु है। उनकी इस महाकाय नग्नमूर्ति के दर्शन करके स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध भारतीय तथा विदेशी अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं। रामचन्द्रजी, सुग्रीव, युधिष्ठिर आदि अनेक दिगम्बर मुनि इस काल में हुये हैं, जिनके भव्य चरित्रों से जैन शास्त्र भरे हुये हैं। सारांशतः गत काल में भारत में दिगम्बरत्व अपनी अपूर्व छटा दर्शा चुका है।

160 † 'महावग्ग' (१।२१-२३ SBE p 144) में लिखा है कि बुद्ध राजगृहमें जब पहले पहले धर्म प्रचारको आएतो लाठी वनमें "सुत्पत्तित्थ" के मंदिरमें ठहरे। इसके बाद इस मन्दिर में ठहरनेका उल्लेख नहीं मिलता। इसका यही कारण है कि इस जैन मन्दिरके प्रबंधकोंने जब यह जान लिया कि म० बुद्ध जब जैनमुनि नहीं रहे तो उन्होंने इनका आदर करवा रोक दिया। विशेष के लिए देखो ममबु० पृ० ५०-५१

161 उपक आजीवक अनन्तजिनको अपना गुरु बताता है। आजीविकाने जैनधर्म से बहुत कुछ लिया था। अतः यह अनन्तजिन तीर्थंकर ही होना चाहिए। आरिय-परिषेण सुत्त II।40 III, 247

162 महावस्तु में पुष्पदन्तको एक बुद्ध और ३२ लक्षशयुक्त महापुम्प बताया है। ASM p 30

163 महावग्ग [१-७०-३] में है कि बौद्ध भिक्षुओं ने नग्न और भोजन पात्रहीन मनुष्यों को दीक्षितकर लिया, जिस पर लोग कहने लगे कि बौद्ध भी "तित्थियो" की तरह करने लगे। तित्थिये म बुद्ध और भ महावीर से प्राचीन साधु और खासकर टि, जैन साधु थे। इसलिये इन्हें भ पार्श्वनाथ के तीर्थंकर मुनि मानना ठीक है। ममबु., पृ २३६-२३७ व जैसिभा, १/२-३/२४-२६. तथा IA, august 1930

## भ. महावीर और उनके समकालीन दिगम्बर मुनि!

‘निष्कण्ठो, आद्युसो नाथपुत्तो लव्यञ्जु, सव्वदस्सावी अपरिसेस ज्ञाण इस्सन परिजानाति: ।’  
- मज्झिमनिकाय ।

‘निगण्ठो नातपुत्तो सघी थेव गणी च गणाचार्यो च ज्ञातो यसससात्तिव्करो सधु सम्मतो बहुजनस्स रत्तस्सु धिर पव्वजितो अद्दगतो वयो अनुप्पत्ता । - दीघनिकाय।

भगवान् महावीर वर्द्धमान् ज्ञातृवशी क्षत्रियों के प्रमुख सुपुत्र थे। राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणी त्रिशला के सुपुत्र थे। रानी त्रिशला वज्जिन राष्ट्रसघ के प्रमुख लिच्छवि अग्रणी राजा चटक की सुपुत्री थीं। लिच्छवि क्षत्रियों का आवास समृद्धिशाली नगरी वैशाली में था। ज्ञातृक क्षत्रियों की बसती भी उसी के निकट थी। कुण्डग्राम और कोल्लगासन्निवेश उनके प्रसिद्ध नगर थे। भगवान् महावीर वर्द्धमान का जन्म कुण्डग्राम में हुआ था और वह अपन ज्ञातृवश के कारण "ज्ञातृपुत्र" के नाम से भी प्रसिद्ध थे। बौद्ध ग्रन्थों में उनका उल्लेख इसी नाम से हुआ मिलता है और वहां उन्हें भ गौतम बुद्ध का समकालीन बताया गया है। दूसरे शब्दों में कहे तो भ महावीर आज से लगभग दार्द हजार वर्ष पहले इस धरातल को पवित्र करते थे और वह क्षत्री राजपुत्र थे।<sup>164</sup>

भरी जवानी में ही महावीरजी ने राजपाटका मोह त्याग कर दिगम्बर मुनि का वेप धारण किया था और तीस वर्ष तक कठिन तपस्या करके वह सर्वज्ञ और सर्वदर्शी तीर्थंकर हो गये थे। 'मज्झिमनिकाय' नामक बौद्ध ग्रन्थ में उन्हें सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और अशेष ज्ञान तथा दर्शन का ज्ञाता लिखा है<sup>165</sup>। तीर्थंकर महावीर न सर्वज्ञ हाकर देश-विदेश में भ्रमण किया था। और उनके धर्म प्रचार से लोगों का आत्मकल्याण हुआ था। उनका विहार सघ सहित होता था और उनकी विनय हर कोई करता था। बौद्ध ग्रंथ 'दीघनिकाय' में लिखा है कि "निगन्थ ज्ञातृपुत्र (महावीर) सघ के नेता हैं, गणाचार्य हैं, दर्शन विशेष के प्रणेता हैं, विशेष विख्यात हैं तीर्थंकर हैं, बहु मनुष्यों द्वारा पूज्य हैं, अनुभवशील हैं, बहुत काल से साधु अवस्था का पालन करते हैं और अधिक वय प्राप्त हैं।"<sup>166</sup>

जैन शास्त्र 'हरिवंश पुराण' में लिखा है कि "भगवान महावीर ने मध्य के (काशी, कौशल, कौशल्य, कुसुध्य, अश्रवष्ट, त्रिगर्तपञ्चाल, भद्रकार, पाटल्यार, मौक, मत्स्य,

164 विशेष के लिये हमारा "भगवान महावीर और न बुद्ध" नामक ग्रन्थ देखो।

165 मज्झिमनिकाय (P T S) भा १ पृ. ६२-६३

166 दीघनिकाय (P T S) भा १ पृ ४८-४९

कनीय, सुरसेन एवं तृकार्थक), समुद्रतट क (कालिंग, कुरूजागत्, केकेय, आत्रेय, कांबोज, बाल्हीक, यवनश्रुति, सिंधु, गांधार, सौवीर, सूर,भार, दक्षिण, वाडवान, भारद्वाज और काथलोय) और उत्तर दिशा के (तार्ण,कार्ण प्रच्छाल आदि) देशों में विहार कर उन्हें धर्म की ओर ऋजु किया था।<sup>167</sup>

भगवान् महावीर का धर्म अहिंसा प्रधान तो था ही किन्तु उन्होंने साधुओं के स्थिते दिग्म्बरत्व का भी उपदेश दिया था<sup>168</sup>। उन्होंने स्पष्ट घोषित किया था कि जैनधर्म में दिग्म्बर साधु ही निर्वाण प्राप्त कर सकता है। बिना दिग्म्बर वेप धारण किये निर्वाण प्राप्त कर लेना असंभव है। और उनके इस वैज्ञानिक उपदेश का आदर आवाल-वृद्ध-वनिता ने किया था।

विदेह में जिस समय भ महावीर पहुंचे तो उनका वहा लोगों ने विशेष आदर किया। वैशाली में उनके शिष्यों की संख्या अधिक थी। स्वयं राजा छेत्क उनका शिष्य था। अंगदेश में जब भगवान पहुंचे तो वहा के राजा कुणिक अजात शत्रु क साथ सारी प्रजा भगवान की पूजा करने के लिये उमड पडी। राजाकुणिक कौशाम्बी तक महावीर स्वामी को पहुंचाने गये। कौशाम्बी नरेश ऐसे प्रतिबुद्ध हुये कि वह दिग्म्बर मुनि हो गये। मगधदेश में भी भगवान महावीर का खूब विहार हुआ था उनका अधिक समय राजगृह में व्यतीत हुआ था। सम्राट श्रेणिक बिम्बसार भगवान् के अनन्य भक्त थे और उन्होंने धर्मप्रभावना के अनेक कार्य किये थे। श्रेणिक के अभयकुमार, वारिषेण आदि कई पुत्र दिग्म्बर मुनि हो गये थे। दक्षिण भारत में जब भगवान का विहार हुआ तो हेमाग देश के राजा जीवधर दिग्म्बर मुनि हो गये थे। इस प्रकार भगवान् का जहा-जहा विहार हुआ वहां वहां दिग्म्बर धर्म का प्रचार हो गया। शतानीक, उदयन, आदि राजा अभय, नदिपेणा आदि राजकुमार शालिभद्र धन्यकुमार, प्रीतकर आदि धनकुवेर, इन्द्रभूति गौतम आदि ब्राह्मण विद्वान्, विद्युच्छर आदि सदृश पतितात्मायें - अरे न जान कौन कौन भगवान् महावीर की शरण में आकर मुनि हो गये।<sup>169</sup>

सद्यमुव अनेक धर्म पिपासु भगवान के निक्क आकर धर्माभृत पान करते थे। यहा तक कि स्वयं म गौतमबुद्ध और उनके सद्य पर भगवान के उपदेश का प्रभाव पडा था। बौद्ध भिक्षुओं ने भी नमनता धारण करने का आग्रह म बुद्ध से किया था<sup>170</sup>। इस पर यद्यपि म बुद्ध ने नमन वेप को बुरा नहीं बतलाया, किन्तु उससे कुछ ज्यादा शिष्य पाने का

167 हरिवंशपुराण (कलकत्ता) पृ १८

168 भगव ५४-८० व ठाणा, पृ ८१३ करना प्रकृति को कोसना है। उस पर म बुद्ध के जमाने में तो उसका विशेष प्रचार था।

169 भगव पृष्ठ ८५-८६

170 भगव पृ १०२-११०

लाभ न देखकर उसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया<sup>171</sup>। पर तो भी एक समय नेपाल के तार्त्रिक बौद्धों में नग्न साधुओं का अस्तित्व हो गया था<sup>172</sup>। सच बात तो यह है कि नग्नत्व को साधुपद के भूषण रूप में सबही को स्वीकार करना पड़ता है। उसका विरोध अभी न महावीर ने धर्मोपदेश देना प्रारंभ नहीं किया था कि प्राचीन जैन और आजीविक आदि साधु नग्न धूमकर उसका प्रचार कर रहे थे<sup>173</sup>

171. महावग (८-२८-१) में है कि "एक बौद्ध भिक्षु ने न बुद्ध के पास नंगे हो आकर कहा कि भगवन् ने संयमी पुण्य की बहुत प्रशंसा की है, जिसने पापों को धो डाला है और कषायों को जीत लिया है तथा जो दयाजु, विनयी और साहसी है। हे भगवन् ! यह नग्नता कई प्रकार से संयम और संतोष को उत्पन्न करने में कारणभूत है- इससे पाप मिटता, कषाय दबते, दयाभाव बढ़ता तथा विनय और उत्साह आता है। प्रभो ! यह अच्छा हो यदि आप भी नग्न रहने की आज्ञा दें।" बुद्ध ने उत्तर में कहा कि "भिक्षुओं के लिए यह उचित न होगी-एक भ्रमण के लिये यह अयोग्य है। इसलिये इसका पालन नहीं करना चाहिये। हे मूर्ख ! तित्थियों की तरह तू भी नग्न कैसे होगा ? हे मूर्ख, इससे नवे लोग भी दीक्षित न होंगे।"

172. नेपाल में गूढ और तार्त्रिक नामकी एक बौद्धधर्म की शाखा है। मि. हायसन ने लिखा है कि, इस शाखा में नग्न यति रहा करते हैं।"-जैसिभा, १/२-३ पृ २५

173. जेम्स एल्वी, प्रो. जैकोबी तथा डा. बुल्डर इस ही बात का समर्थन करते हैं कि दिगम्बरत्व न बुद्ध के पहले से प्रचलित था और आजीविक आदि तीर्थको पर जैनधर्म का प्रभाव पड़ा था; यथा-

"In James d' Alwis' paper (Ind Anti VIII) on the Six Turthakas the "Digambaras" appear to have been regarded as an old order of ascetics and all of these heretical teachers betray the influence of Jainism in their doctrines"---IA, IX, 161

Prof Jacobi remarks "The preceding four Tirthakas (Makkhali Goshal etc) appear all to have adopted some or other doctrines or practices, which makes part of the Jaina system, probably from the Jains themselves. It appears from the preceding remarks that Jaina ideas and practices must have been current at the time of Mahavira and independently of him. This combined with other arguments, leads us to the opinion that Nirgranthas were really in existence long before Mahavira,"-----IA IX, 162)

Prof T W Rhys Davids notes in the "Vinaya Texts" that "The sect now called Jains are divided into two classes, Digambara & Svetambara: the latter of which eat naked. They are known to be the successors of the school called Niganthas in the Pali Pitakas" -S B E XII, 41

Dr Buhler writes, "From Buddhist accounts in their canonical works as well as in other books, it may be seen that this rival (Mahavira) was a dangerous and influential one and that even in Buddha's time his teaching had spread considerably. Also they say in their description of other rivals of Buddha that these, in order to gain esteem, copied the Nirgranthas and went unclothed, or that they were looked upon by the

people as Nirgrantha holy ones, because they happened to lost their clothes "----AISJ, p 36

देखिये बौद्धग्रन्थों के आधार से इस विषय में डॉ स्टीबेन्सन लिखते हैं - 174

"(एक तीर्थक नग्न हो गया) लोग उसके लिये बहुत से वस्त्र लाये, किन्तु उनको उसने स्वीकार नहीं किया। उसने यही सोचा कि, यदि मैं वस्त्र स्वीकार करता हू तो संसार में मेरी अधिक प्रतिष्ठा नहीं होगी। वह कहने लगा कि लाज रक्षण के लिए ही वस्त्रधारण किया जाता है और लज्जा ही पापका कारण है, हम अर्द्धत है, इसलिए विष्यवासना से अलिप्त होने के कारण हमें लज्जा की कुछ भी परवाह नहीं। इसका यह कथन सुनकर बड़ी प्रसन्नता से वहा इसके पाद्य सौ शिष्य बन गए, बल्कि जम्बूद्वीप में इसी को लोग सच्च्य बुद्ध कहने लगे।

यह उल्लेख समभवत मक्खलि गोशाल अथवा पूर्ण काश्यप के सम्बन्ध में है। ये दोनों साधु भ पार्श्वनाथ की शिष्यपरंपरा के मुनि थे।<sup>175</sup> मक्खलि गोशाल भ पार्श्वनाथ की शिष्यपरंपरा के मुनि थे। मक्खलि गोशाल भ महावीर से रूठ होकर अलग धर्मप्रचार करने लगा था वह "आजीविक" संप्रदाय का नेता बन गया था। इस संप्रदाय का निकाम्य प्राचीन जैन धर्म से हुआ था<sup>176</sup> और इसके साधु भी नग्न रहते थे<sup>177</sup> पूरणकाश्यप गोशालका साथी और वह भी दिगम्बर रहा था। अचमूच दिगम्बर जैनधर्म पहले स ही चलना आ रहा था, जिसका प्रभाव इन लोगों पर पडा था।

उस पर, भगवान महावीर के अवतीर्ण होते ही दिगम्बरत्वका महत्व और भी बढ़ गया। वहातककि दूसरी संप्रदायों के लोग भी नग्न वेप धारण करने को नान्वायित हा गये, जैसे कि ऊपर प्रकट किया गया है।

बौद्धशास्त्रों में निग्रन्थ (दिगम्बर) महामुनि महावारी के विहार का उल्लेख भी मिलता है। मज्झिम निकाय के अभय राजकुमार सुत्त से प्रगत है कि वे राजगृह में एक समय रहे थे।<sup>178</sup> उपात्तीसुत्त से भ महावीर का नानन्द में विहार करना स्पष्ट है। उम् समय उनके साथ एक बड़ी सख्या में निग्रन्थ साधु थे<sup>179</sup>। सामगामसुत्त से यह प्रगत है कि

174 नैसिमा, १/२-३/२४ "The people bought clothes in abundance for him, but he (Kassapa) refused them as he thought that if he put them on, he would not be treated with the same respect Kassapa said, "Clothes are for the covering of shame and the shame is the effect of sin I am an Arahat As I am free from evil desires, I know no shame "----BS pp 74-75

175 भमवु, पृ १७-२१

176 वीर, वर्ष ३ पृ ३१२ व भमवु प्रष्ठ १७-२१

177 आजीविकी ति नग्न-समणको। - पपच्च-सूदनी १/२०६-IHQ, III, 248

178 मज्झिम (P T S) भा १ पृ ३६२-भमवु पृ १६१

179 मज्झिम १/३७१ व "The MN tells us that once nigantha Nathaputta was at Nalanda with a big retinue of the Niganthas "AIT .p 147

भगवान् ने यहाँ से गौतम प्राप्त की थी।<sup>180</sup> दीर्घनिकाय का पञ्चाधिक सूक्त भी इसी बात का समर्थन करता है।<sup>181</sup> संपुस्त निकाय से भगवान् महावीर का संघसहित मच्छिकनखण्ड में विहार स्था स्फुट है।<sup>182</sup> ब्रह्मजालसुत्त में राजगृह के राजा अजातशत्रु को भगवान् महावीर के दर्शन के लिये गवा लिया है।<sup>183</sup> 'विनयपटिक' के 'महायोग' धर्म से महावीर रचना की है।<sup>184</sup> 'जातक' में भ. महावीर को 'अधिकांक नत्तपुत्त' कहा गया है।<sup>185</sup> 'महावस्तु' से प्राप्त है कि अवन्ती के राजपुरोहित का पुत्र कसक बनारस आया था। वहाँ उसने निगन्धनाथ पूत (महावीर को) धर्म प्रचार करते पाया।<sup>186</sup> 'दीर्घनिकाय' से यह स्फुट है कि कौशल के राजा पसेनदीने निगन्ध नत्तपुत्त (महावीर) को नमस्कार किया था।<sup>187</sup> उसकी रानी मल्लिका ने निगन्ध के उपयोग के लिये एक भवन बनवाया था।<sup>188</sup> सारांशतः बौद्ध शास्त्र भी भगवान् महावीर के विगन्तव्यापी और सफल विहार की साक्षी देते हैं।

भगवान् के विहार और धर्म प्रचार से जैनधर्म का विशेष उद्योत हुआ था। जैनशास्त्र कहते हैं कि उनके संघ में चौदह हजार दिगम्बर मुनि थे, जिनमें 9900 साधारण मुनि, 300 अंगपूर्वधारी मुनि, 1300 अवधिज्ञानधारी मुनि, 900 ऋद्धिविक्रिया युक्त, 500 चार ज्ञान के धारी, 700 केवलज्ञानी और 900 अनुत्तरवादी थे। महावीर संघ के ये दिगम्बर मुनि दस गणों में विभक्त थे और गवारह गणधर उनकी देखरेख रखते थे।<sup>189</sup> इन गणधरों का सक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है.-

(1) इन्द्रभूति गौतम, (2) वायुभूति, (3) अग्निभूति, ये तीनों गणधर मगध देश के गौरवर ग्राम निवासी वसुभूति (शाडिल्य) ब्राह्मण की स्त्री पृथ्वी (स्यण्डिला) और केसरी के गर्भ से जन्मे थे। गृहस्थाश्रम त्यागने के बाद ये क्रम से गौतम, गार्व और भार्गव नाम से भी प्रसिद्ध हुये थे। जैन होने के पहले ये तीनों वेदधर्मपरायण ब्रह्मण्य विद्वान् थे। भ. महावीर के निकट इन तीनों ने अपने कई सौ शिष्यों सहित जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण की थी और ये दिगम्बर मुनि होकर मुनियों के नेता हुये थे। देश देशान्तर में विहार करके इन्होंने खूब धर्मप्रभावना की थी।<sup>190</sup>

180 नजिहान १/६३ - भगवतु २०२

181 दीघ, III 117-118, -भगवतु पृ २१४

182. संपुत्त ४ २८७-भगवतु, पृ २१६

183. भगवतु, पृ. २२२

184. महायोग ६ ३१ ११ - भगवतु पृ. २३१-२३६

185 जातक २, १८३

186. ASM, p 159.

187 दीघ. १७८-७९- IHQ। 153

188 LWB, P. 109

189 म., ११६

190 बृजेश, पृ ६०-६१

चौथे गणधर व्यक्त कोल्हास सन्निवेश निवासी धनमित्र ब्राह्मण याज्ञी<sup>191</sup> नामक पत्नी की क्रीडा से जन्मे थे। दिगम्बर मुनि होकर यह भी गणनायक हुये थे।

पाँचवें सुधर्म नामक गणधर भी कोल्हास सन्निवेश के निवासी धम्मिल ब्राह्मण के सुपुत्र थे। इनकी माता का नाम भोदिदला था। भ महावीर के उपसन्त इनके द्वारा जैनधर्म का विशेष प्रचार हुआ था।<sup>192</sup>

छठे मणिक नामक गणधर मौर्याख्यदेश निवासी धनदेव ब्राह्मण की किञ्चयादेवी स्त्री के गर्भ से जन्मे थे। दिगम्बर मुनि होकर यह वीर सद्य में सम्मिलित हो गये थे और देश-विदेश में धर्म प्रचार किया था।

सातवें गणधर मौर्यपुत्र भी मौर्याख्य देश के निवासी 'मौर्यक' ब्राह्मण के पुत्र थे। इन्होंने भी भ महावीर के निकट दिगम्बरीय दीक्षा ग्रहण करके सर्वत्र धर्म प्रचार किया था।

आठवें गणधर अकम्पन् थे, जो मिथिलापुरी निवासी देव नामक ब्राह्मण की जयन्ती नामक स्त्री के उदर से जन्मे थे। इन्होंने भी खूब धर्मप्रचार किया था।

नवें धवल नामक गणधर कोशलापुरी के वसु विप्र के सुपुत्र थे। इनकी मा का नाम नन्दा था। इन्होंने भी दिगम्बर मुनि हो सर्वत्र विहार किया था।

दसवें गणधर मैत्रेय थे। वह सत्सदेशस्थ तुंगिकाख्य नारी के निवासी दत्त ब्राह्मण की स्त्री करुणा के गर्भ से जन्मे थे। इन्होंने भी अपने गण के साधुओं सहित धर्म प्रचार किया था।

ग्यारहवें गणधर प्रभास राजगृह निवासी बल नामक ब्राह्मण की पत्नी भद्रा की कुक्षि से जन्मे थे। और दिगम्बर मुनि तथा गणनायक होकर सर्वत्र धर्म का उद्योत करते हुए विचरे थे।<sup>193</sup>

इन गणधरों की अध्यक्षता में रहे उपरोक्त चौदह हजार दिगम्बर मुनियों ने तत्कालीन भारत का महान् उपकार किया था। विद्या, धर्मज्ञान और सदाचार उनके सद् उद्योग से भारत में खूब फैले थे। जैन और बौद्ध शास्त्र यही प्रकट करते हैं -

"The Buddhist and Jaina texts tell us that the itinerant teachers of the time wandered about in the country, engaging themselves wherever they stopped in serious discussion on matters relating to religion, philosophy, ethics morals and polity"<sup>194</sup>

भावार्थ - बौद्ध और जैन शास्त्रों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन धर्म गुरु देश में सर्वत्र विचरते थे और जहा ठहरते थे वहा धर्म, सिद्धान्त, आचार, नीति और राष्ट्रवादी विषयक गम्भीर चर्चा करते थे। सचमुच उनके द्वारा जनता का महान् हित हुआ था।

191 बृजेश, पृ ८

192 बृजेश, पृ ८

193 बृजेश, पृ ८

194 LWB, P 50

बौद्ध शास्त्रों में भी भ. महावीर के ज्ञान के किन्हीं दिग्गम्बर मुनियों का वर्णन मिलता है, जबकि जैनशास्त्रों में उनका पता लगाने के लिये सुगम नहीं है। जो भी, उनसे यह स्पष्ट है कि भ. महावीर और उनके दिग्गम्बर शिव्य देश में निर्वाह विद्यस्ते और लोक कल्याण करते थे।

सम्बद्ध श्रेणिक विन्वस्तर के पुत्र राजकुमार अश्व दिग्गम्बर मुनि हो गये थे, यह बात बौद्धशास्त्र भी प्रकट करते हैं।<sup>195</sup> उन राजकुमार ने ईरान देश के बाकिरों में भी धर्म प्रचार करविया था। फलतः उस देश का एक राजकुमार अश्वक निग्रन्थ साधु हो गया था।<sup>196</sup>

बौद्ध शास्त्र वैशाली के दिग्गम्बर मुनियों में सुणक्खत, कन्हरमसुक, और पाटिक पुत्र का नामोल्लेख करते हैं। सुणक्खत एक लिच्छवि राजपुत्र था और यह बौद्धधर्म छोड़कर निग्रन्थ मत का अनुयायी हुआ था।<sup>197</sup>

वैशाली के सन्निकट एक कन्हरमसुक नामक दिग्गम्बर मुनि के आवास का भी उल्लेख बौद्धशास्त्रों में मिलता है। उन्होंने यावत् जीवन नमन रहने और नियमित परिधि में विहार करने की प्रतिज्ञा ली थी।<sup>198</sup>

श्रावस्ती के कुल पुत्र (Councillor's son) अर्जुन भी दिग्गम्बर मुनि होकर सर्वत्र विचरे थे।<sup>199</sup>

यह दिग्गम्बर मुनि और इनके साथ जैन साधवीया सर्वत्र धर्मोपदेश देकर मुमुक्षुओं को जैन धर्म में दीक्षित करते थे<sup>200</sup> इसी उद्देश्य को लेकर वे नगरों के चौराहों पर जाकर धर्मोपदेश देते और बाद भेरी बजाते थे। बौद्ध शास्त्र कहते हैं कि "उस समय तीर्थक साधु-प्रत्येक पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णमासी को एकत्र होते थे और धर्मोपदेश करते थे। लोग उसे सुनकर प्रसन्न होते और उनके अनुयायी बन जाते थे।"<sup>201</sup>

इन साधुओं को जहाँ भी अवसर मिलता था वहाँ वे अपने धर्म की श्रेष्ठता को प्रमाणित करके अवशेष धर्मों को गौण प्रकट करते थे।

भ. महावीर और म. गौतम बुद्ध दोनों ने ही अहिंसा धर्म का उपदेश दिया था, किन्तु भ. महावीर की अहिंसा मनवचन, कार्य पूर्वक जीवहत्या से विलम्बा रहने का विधान

195 PB, p 30 भमच, पृ २६६

196 ADJB, p 92

197 भमच, पृ २५५

198 "अवेलो कन्हरमसुको वेसालियम् पटिवसति साभग-प्यतीव एवं पसग्गा, प्यत्तीव वज्जिमागे। तस्स सत्तवत्-पदानि समत्तानि समादिन्नि होन्ति--'यावलीवम् अवेलो अस्सम्, न वत्थम् परिदहेस्सम् यावजीवम् ब्रह्माचारी अस्सम् न मेधनुम् पटिसेवेवम् इत्थादि।" -- दीघनिकाय, (P T S) भा ३ पृ

199 PB p 83 व भमच, पृ २६७

200 बौद्धों के धेर-धेरी गाथाओं से यह प्रकट है। भमच, पृ २५६ - २६८।

201 महावग्ग २/१/१ व भमच, पृ २४०।

था - भोजन या भोज शौक के लिये भी उसने जीवों का प्राणव्यपरोपण नहीं किया जा सकता था। इसके विपरीत म. बुद्ध की अधिस्ता में बौद्ध भिक्षुओं को मांस और मत्स्य भोजन ग्रहण करने की सुत्ती आजा थी। एक बार नहीं अनेक बार स्वयं म. बुद्ध ने मांस भोजन किया था।<sup>202</sup> ऐसे ही अवसरों पर दिगम्बर मुनि बौद्ध भिक्षुओं को आड़े हाथों लेते थे। एक मरतबा जब भगवान महावीरने बुद्ध के इस विरसक कर्म का निषेध किया, तो बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं, यह पदस्तन मौकम नहीं है बलिक नातपुत्त ( महावीर ) इससे पहिले भी कई मरतबा खास मेरे लिये फके हुए मांस को मेरे भक्षण करने पर आक्षेप कर चुके है।"<sup>203</sup> एक दूसरी बार जब वैशाली में म. बुद्ध ने सेनापति सिंह के घर पर मांसाहार किया तो, बौद्ध शास्त्र कहता है कि "निग्रन्थ एक बड़ी संख्या में वैशाली में सहक और वीराहे पर वह शोर मचाते कहते फिरे कि आज सेनापति सिंह ने एक बैल का वध किया है और उसका आहार भ्रमण गौतम के लिये बनाया है। भ्रमण गौतम जानबूझ कर कि वह बैल मेरे अहार के निमित्त मारा गया है, पशु का मांस खाता है, इसलिए वही उस पशु के मारने के लिये बधक है।"<sup>204</sup> इन उल्लेखों से उस समय दिगम्बर मुनियों का निर्वाधरूप में जनता के मध्य विघरने और धर्मोपदेश देने का स्पष्टीकरण होता है।

बौद्ध गृहस्थों ने कई मरतबा दिगम्बर मुनियों को अपने घर के अन्त पुर में बुलाकर परीक्षा की थी।<sup>205</sup> साराशत दि मुनि उस समय हाट-बाजार, घर-महल, रक-राव-सब ठौर सबही को धर्मोपदेश देते हुये विहार करते थे। अब आगे के पृष्ठों में भगवान महावीर के उपरान्त दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व और विहार का विवेचन कर देना उचित है।

202 भगवु, पृ १६०

203. Cowell, Jatakas II, 182 -- भगवु, पृ. २४६।

204 "At that time a great number of the Niganthas (running) through Vaisali, from road to road, cross-way to cross-way] with outstretched arms cried, "Today Siha, the General has killed a great ox and has made a meal for the Samana Gotama, the Samana Gotama knowingly eats this meat of an animal killed for this very purpose, & has thus become virtually the author of the deed " --Vinaya Texts, S B E., Vol XVII, p 116 & HG., p 85

205 HG, pp 88--95 व भगवु, पृष्ठ २४६--२५६।

## नन्द-साम्राज्य में दिगम्बर-मुनि ।

"King Nanda had taken away images' known as 'The Jina of Kalinga'-----Carrying away idols of worship as a mark of trophy and also showing respect to the particular idol is known in later history. The datum ( 1 ) proves that Nanda was a Jaina and ( 2 ) that Jainism was introduced in Orissa very early-----"

- K. P. Jayswal<sup>206</sup>

शिशुनगवंश में कुणिक अजाकसत्रु के उपरान्त कोई परराज्यी राज नहीं हुआ और मगध साम्राज्य की बागडोर नन्दवंश के राजाओं के हाथ में आ गई। इस वंश में "वर्द्धन्" (Incraser) उपाधि-धारी राजा नन्द विशेष प्रख्यात और प्रतापी था। उसने दक्षिण पूर्व और पश्चिमीय समुद्रतटवर्ती देश जीत लिये थे तथा उत्तर में हिमालय प्रदेश और काश्मीर एवं अक्वली और कर्लिग देश को भी उसने अपने आधीन कर लिया था।<sup>207</sup> कलिङ्ग-विजय में वह वहाँ से कर्लिगजिन नामक एक प्राचीन मूर्ति ले आया था और उसे विन्ध्य के साथ उसने अपनी राजधानी पाटलीपुत्र में स्थापित किया था। उसके इस कार्य से नन्दवर्द्धन का जैनधर्मावलम्बी होना स्पष्ट है। मुद्राराक्षस नाटक और जैनसाहित्य से इस वंश के राजाओं का जैनी होना सिद्ध है और उनके मन्त्री भी जैन थे। अन्तिम नन्द का मन्त्री राक्षस नामक नीतिनिपुण पुरुष था। मुद्राराक्षस नाटक में उसे जीवसिद्धि नामक क्षपणक अर्थात् दिगम्बर जैन मुनि के प्रति विन्ध्य प्रगट करते बर्शाया गया है तथा यह जीवसिद्धि सारे देश में-हाटबाजार और अन्त पुर-सब ही ठौर बेरोक टोक विकार करता था, यह बात भी उक्त नाटक से स्पष्ट है।<sup>208</sup> ऐसा होना ही स्वाभाविक, क्योंकि जब नन्दवंश के राजा जैनी थे तो उनके साम्राज्य में दिगम्बर जैन मुनिकी प्रतिष्ठा होना लाजमी थी। जन्धुतिसे यह भी प्रगट है कि अन्तिम नन्दराजा ने पञ्चपहाड़ी नामक पौध स्तूप

206 JBORS, Vol, xlii p.245

207 Ibid, Vol 1 pp 78-79

208 Chanakya says -

"There is a fellow of my studies, deep

The Brahman Judusarman, him I sent,

When just I vowed the death of Nanda, hither.

And here repairing as a Buddha ( क्षपणक ) mendicant."

Having the marks of a Ksapanaka the individual is a Jaina ..Raksasa

repose in him implicit confidence --HDw, p 10

पटना में बनवाये थे। पशुपताही नर्मक पाँच स्तूप पटना में बनवाये थे।<sup>209</sup> पशुपताही (राजगृह) जैनों का प्रसिद्ध तीर्थ है। नन्द ने उसी के अनु रूप पाँच स्तूप पटना में बनवाये प्रतीत होते हैं। यह कार्य भी उनकी मुनि-भक्ति का परिचायक है।

जैन कथाग्रन्थों से विदित है कि एक नन्द राजा स्वयं दिगम्बर जैन मुनि हो गये थे तथा उनके मन्त्री शकटाल भी जैनी थे।<sup>210</sup> शकटाल के पुत्र स्थूलभद्र भी दिगम्बर मुनि हो गये थे।<sup>211</sup> साराश यह कि नन्द-साम्राज्य के प्रसिद्ध पुरखों ने स्वयं दिगम्बर मुनि होकर तत्कालीन भारत का कल्याण किया था और नन्दराजा जैनों के संरक्षक थे।<sup>212</sup>

शिशुनागसभ के अन्त और नन्दराज्य के आरम्भकाल में जम्बूस्वामी अन्तिम के कली सर्वज्ञने नानवेध में सारे भारत का धमण किया था। कहते हैं कि बंगाल के कोटिकपुर नामक स्थान पर उन्होंने सर्वज्ञता प्राप्त की थी।<sup>213</sup> उनका बिहार बंगाल के प्रसिद्ध नगर पुंडवर्द्धन, ताम्रलिप्त आदि में हुआ था। एक दफा वह मथुरा भी पहुंचे थे। अन्त में जब वह राजगृह विपुलाचल से मुक्त हो गये, तो मथुरा में उनकी स्मृति में एक स्तूप बनाया गया था।<sup>214</sup>

मथुरा जैनों का प्राचीन केन्द्र था। वहा भ पार्श्वनाथ जी के समय का एक स्तूप मौजूद था।<sup>215</sup> इसके अतिरिक्त नन्दकाल में वहा पाच सौ एक स्तूप और बनाये गये थे, क्योंकि

209 "Sir G Grierson informs me that the Nandas were reputed to be bitter enemies of the Brahmins the Nandas were Jainas and therefore hateful to the Brahmins The supposition that the last Nanda was either a Jaina or Buddhist is strength-ened by the fact that one form of the local tradition attributed to him the erection of the Panch pahari at patna, a group of aneient stupas, which be either Jaina or Buddhist" --EHI, p 44

उमका जैन होना ठीक है, क्योंकि नन्दवर्द्धन जैन होने में सन्देह नहीं है और "मुद्राराक्षस" नन्दमन्त्री आदि को जैन प्रगट करता है।

210. हरिषेण कथाकोष तथा आराधनाकथाकोष देखो।

211. सातवीं गुजराती साहित्य परिषद् रिपोर्ट, पृ ४१ तथा "भद्रबाहु चरित्र" (पृ. ४१) में स्थूलभद्रादिकों दिगम्बर मुनि लिख है। (रामल्यस्थूल भद्राख्य स्थूलाचार्यादियोगिन )

212 "Nanda were Jains" - CHI Vol I p 164

"The nine kings of the Nanda dynasty of Magadha were patrons of the Order (Sangha of Mahavira)" -- HARI , p. 59

213 "in Kotikapur Jambhu attained emancipation (? Omniscience)"

214 अनेकान्त, वर्ष १ पृ १४१

"मगधादिमहादेश मथुरादिपुरीस्तथा। कुर्वन् धर्मोपदेशं स केवलज्ञानलोचन ॥१८॥ १२

वर्षाष्टादशपर्यन्त स्थितस्तत्र जिनाधिप, ततो जगात् निर्वाण केवलो विपुलाबलात् ॥१९॥ -- जम्बूस्वामी चरित्

215 JGAM , p 13

वहाँ से इतने ही दिगंबर मुनियों ने समाधिग्रहण किया था। वे सब मुनि श्री जम्बूखानी के शिष्य थे। जिस समय जम्बूखानी दिगंबर मुनि हुये तो उस समय विद्युच्छरनामक एक नारी शिष्य थे। जिस समय जम्बूखानी दिगंबर मुनि हुये तो उस समय विद्युच्छरनामक एक नारी हाकू भी अपने पाँच सौ साधियों सहित दिगंबर मुनि हो गयी थी। एक वक़्त वह मुनिसंग देश-विदेश में विहार करता हुआ नाम को मधुरा पहुँचा। वहाँ महाउद्यान में वह ठहर गया। उपरान्त रात को उन मुनियों पर वहाँ महा उपसर्ग हुआ और उसके परिणामस्वरूप मुनियों ने साम्बभाव से प्राण त्याग किये। इस महत्वशाली घटना की स्मृति में ही वहाँ पाँच सौ एक स्तूप बना दिये गये थे।<sup>216</sup>

इस प्रकार न जाने कितने मुनि-पुण्ड्र उस समय भारत में विहार करके लोगों का हितसाधन करते थे। उनका पता लगा लेना कठिन है। नन्द - साम्राज्य में उनको पूरा पूरा संरक्षण प्राप्त था।

**धनि मुनि जिन यह भाव पिछना.....**

धनि मुनि जिन यह भाव पिछना ॥ टेक ॥  
 तन व्यय वाछित प्रापति मानो, पुण्य उदय दुःख जाना ॥ १ ॥  
 एक विहारी सकल ईशता, त्याग महोत्सव माना ।  
 सब सुख परिहार सार सुख, जानि रागमय भाना ॥ २ ॥  
 चित स्वभाव को चिन्त्य प्राण निज, विमल ज्ञान-दुग साना ।  
 दौल' कौन सुख जान लहयो तिन, करो शातिरस पाना ॥ ३ ॥

216 अनिकान्त वर्ष पृ १३६-१४१ --

\* अर्थ विद्युच्छरी नाम्ना पर्वटनिह सन्मुनि ॥

एकादशमिहारायानधीती विदधत्तप ।

अथान्येद्यु. सनि समो मुनि पंचमतिर्वृत ॥

मधुरायां महोद्यान प्रदेशेऽथगमन्नुद ।

तदगाच्छस्स वैल्लक्ष्यं भानुपस्ताघल धित. ॥ इत्यादि ॥

O, भा १४ पृ २१६ ।

## मौर्य-सम्राट् और दिगम्बर मुनि ।

"भद्रबाहुवचः श्रुत्वा चन्द्रगुप्तो नरेश्वरः ।  
अस्वैवयोगिन पाशर्वे दधी जैनश्वरं तपः ॥ 38 ॥  
चन्द्रगुप्तमुनिः शीघ्रं प्रथमो दक्षपूर्विणाम् ।  
सर्वं संघाधिपो जातो विशाखाचार्यं संदाकः ॥ 39 ॥  
अनेनसह संघोपि समस्तो मुरुवाक्यत ।  
दक्षिणा पयदेशस्थ पुन्नाट विषय वयौ ॥ 40 ॥

- हरिषेण कथाकोष

मउधरेसुपरिमो जिणदिकख धरदि चन्द्रगुत्तो व ।

- त्रिलोक प्रजति<sup>217</sup>

नन्द राजाओं के पश्चात् मगध का राजछत्र चन्द्रगुप्त नाम के एक क्षत्रिय राज पुत्र के हाथ लगा था । उसने अपने भुजविक्रम से प्राय सारे भारत पर अधिकाार कर लिया था और मौर्य नामक राजवंश की स्थापना की थी । जैनशास्त्र इस राजा को दिगम्बर मुनि श्रमणपति श्रुतकेवली भद्रबाहु का शिष्य प्रगट करते है ।<sup>218</sup> यूनानी राजदूत मेगास्थनीजभी चन्द्रगुप्त को श्रमण-भक्त प्रगट करता है ।<sup>219</sup> सम्राट् चन्द्रगुप्त ने अपने वृहत् साम्राज्य में दिगम्बर मुनियों के विहार और धर्म प्रचार करने की सुविधा की थी । श्रमणपति भद्रबाहु के सघ की वह राजा बहुत विनय करता था । भद्रबाहुजी बगाल देश के कोटिकपुर नामक नगर

217 जैहि , भा १३ पृ ५३१

218 "चन्द्रावदातसत्कीर्तिश्चन्द्रवन्दनोदकर्तृणाम । चन्द्रगुप्तिनृपस्तत्राऽचक्रचारुगुणोदयः ६२  
ज्ञानविज्ञानपारीणो जिनपूजापुरंदर । चतुर्धा दान दक्षौ य प्रतापजित भास्कर ॥ ६ ॥" - भद्र

219 "The Chandragupta was a member of the Jaina community is taken by their writers as a matter of course, and treated as a known fact, which needed neither argument nor demonstration. The documentary evidence to this effect is of comparatively early date, and apparently absolved from all suspicion. The testimony of Megasthenes would likewise seem to imply that Chandragupta submitted to the devotional teaching of the Sramanas, as opposed to the doctrines of the Brahmanas (Strabo, XV i 60)" -- J.R.A.S., Vol IX pp 175-176

के निरालो थे।<sup>220</sup> एक बड़ा बड़ा भूत केराली सेवार्थन स्वामी अन्य दिगम्बर मुनियों सहित उनकीले भद्रबाहु उनकी के निकट वैशिशि ब्रह्मर विगम्बर मुनि हो गये। सेवार्थन स्वामीने संघसहित गिरनारजी की यात्रा का उद्योग किया था।<sup>221</sup> इस उत्सवे से स्पष्ट है कि उनके समय में दिगम्बर मुनियों को विहार करने की सुविधा प्राप्त थी। भद्रबाहुजी ने भी संघसहित देश-देशान्तर में विहार किया था और वह उज्जैनी पहुँचे थे। वहीं से उन्होंने दक्षिणदेश की ओर संघ सहित विहार किया था क्योंकि उन्हें मसूम हो गया था कि उत्तरापथ से एक द्वादशवर्षीय विक्रान्त दुष्काल घटने को है जिसमें मुनिवर्ग का फलन दुष्कर होगा।<sup>222</sup> सम्राट् चन्द्रगुप्त ने भी इसी समय अपने पुत्र को राज्य देकर भद्रबाहु स्वामी के निकट जिन दीक्षा धारण की थी और वह अन्य दिगम्बर मुनियों के साथ दक्षिण भारत को चले गये थे।<sup>223</sup> श्रवणबेलगोल काकटव्र नामक पर्वत उनकी के कारण "चन्द्रगिरि" नाम से प्रसिद्ध हो गया है, क्योंकि उस पर्वत पर चन्द्रगुप्त ने तपभ्रमण किया था और वहीं उनका समाधिभरण हुआ था।<sup>224</sup>

विन्दुसार ने जैनियों के लिये क्या किया ? वह ज्ञात नहीं है किन्तु जब उसका पिता जैन था, तो उस पर जैन प्रभाव पड़ना अशक्यम्भावी है।<sup>225</sup> उस पर उसका पुत्र अशोक अपने प्रारम्भिक जीवन में जैन धर्म परायण रहा था, बल्कि अन्त समय तक उसने जैन

220 "तमालपत्रयस्तस्य देशोऽभूतपीणदवर्द्धन ।" - "तत्रकोट्टपुर रम्यं द्योतते नाकञ्जाणवत् ।"

"भद्रबाहु रितिक्रियाति प्राप्तवान्मन्धुर्कर्णत ।" इत्यादि -- भद्र पृ १०-२३

221 "चिकीपुनेभितीथेशयात्रा रैवतकाचले ।" - भद्र पृ १३ ।

222 भद्र पृ २७-५१

223 Jaina tradition avers that Chandragupta Maurya was a Jaina, and that, when a great twelve years's famine occurred, he abdicated, accompanied Bhadrabahu, the last of the saints called Srutakevalims, to the South, lived as an ascetic at Sravanabelgola in Mysore and ultimately committed Suicide by Starvation at that place, where his name is still held in remembrance. In the second edition of this book I rejected that tradition and dismissed the tale as 'imaginary history' but on reconsideration of the whole evidence and the objections urged against the credibility of the story, I am now disposed to believe that the tradition probably is true in its main outline and the Chandragupta really abdicated and became a Jaina ascetic. -- Sir Vincent Smith, EHI, p 154

224 Narasimhachar's Sravanabelgola, p.25-40, क्लिप्ता, भाग ६, पृ १५६-१५७ तथा जैसिंस भूमिका पृ ५४-६०

225. "We may conclude that Vindusara followed the faith (Jainism) of his father (Chandragupta) and that, in the same belief, whatever it may prove to have been, his childhood's lessons were first learnt by Asoka." - E. Thomas, J.R.A.S. IX 181

सिद्धान्तों का प्रचार किया, यह अन्यत्र सिद्ध किया जा चुका है<sup>226</sup> इस दशा में बिन्दुसार का जैन धर्म प्रेमी होना उचित है। अशोक ने अपने एक स्तम्भलेख में स्पष्टतः निम्नलिखित साधुओं की रक्षा का आदेश निकाला था।<sup>227</sup>

सम्राट् सम्प्रति पूर्णतः जैन धर्म परायण थे। उन्होंने जैन मुनियों के विहार और धर्मप्रचार की व्यवस्था न केवल भारत में ही की, बल्कि विदेशों में भी उनका विहार कराकर जैन धर्म का प्रचार करा दिया।<sup>228</sup>

उस समय में दशपूर्व के धारक विशाख प्रोप्टिल, क्षत्रिय आदि दिगम्बर जैनाचार्यों के संरक्षण में रहा। जैन सघ खूब फला फूला था। जिस साम्राज्य के अधिष्ठाता ही स्वयं जब दिगम्बर मुनि होकर धर्मप्रचार करने के लिये तुल गये तो भला कहिये जैन धर्म की विशेष उन्नति और दिगम्बर मुनियों की बाहुल्यता उस राज्य में क्यों न होती। मौर्यों का नाम जैनसाहित्य में इसीलिए स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

226 हमारा "सम्राट अशोक और जैनधर्म" नामक द्रैक्ट देखो।

227 स्तम्भलेख नं ६

"The founder of the Maurayan dynasty, Chandragupta, as well as his Brahmin minister, Chanakya, were also inclined towards Mahavira's doctrines and even Asoka is said to have been laid towards Buddhism by a previous study of jain teaching "

-- E B Havell, HARI, p 59

228 कुणालसुनुखिखटभरताधिप परमार्हती अनार्थ्यदेशेज्वीप प्रवर्तित भ्रमणविहार सम्प्रति महाराजाऽसीऽभवत् ।"

-- पाटलीपुत्रकल्पग्रन्थ EHI pp 202-203

## सिकन्दर महान् एवं दिगम्बरमुनि

"Onesikritos says that he himself was sent to converse with these sages, For Alexander heard that these men (Sramans) went about naked, insued themselves to hardships and were held in highest honour. that when invited they did not go to other persons." -Mc Grindle, Ancient India, p 70

जिस समय अन्तिम नन्दराजा भारत में राज्य कर रहे थे और चन्द्रगुप्त मौर्य अपने साम्राज्य की नींव डालने में लगे हुये थे, उस समय भारत के पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त पर यूनान का प्रतापी वीर सिकन्दर अपना सिक्का जमा रहा था। जब वह तक्षशिला पहुँचा तो वहाँ उसने दिगम्बर मुनियों की बहुत प्रशंसा सुनी। उसने चाहा कि वे साधुगण उसके सम्मुख लाये जायें, किन्तु ऐसा होना असंभव था, क्योंकि दिगम्बर मुनि किसी का शासन नहीं मानते और न किसी का निमन्त्रण स्वीकार करते हैं। उस पर सिकन्दर ने अपने एक दूत को, जिसका नाम अशकृतस (Onesikritos) था, उनके पास भेजा। उसने देखा, तक्षशिला के पास उद्यान में बहुत से नगे मुनि तपस्या कर रहे हैं। उनमें से एक कल्याण नामक मुनि से उसकी बातचीत होती रही थी। मुनि कल्याण ने अशकृतस से कहा था कि यदि तुम हमारे तप का रहस्य सघृष्टना चाहते हो तो हमारी तरह दिगम्बर मुनि हो जाओ।<sup>229</sup> अशकृतस के लिये ऐसा करना असंभव था। आखिर उसने सिकन्दर से जाकर इन मुनियों के ज्ञान और चर्या की प्रशंसनीय बातें कहीं। सिकन्दर उनसे बहुत प्रभावित हुआ और उसने चाहा कि इन ज्ञान-ध्यान तपोरत्न का प्रकाश मेरे देश में पहुँचे। उसकी इस शुभ कामना को मुनि कल्याण ने पूरा किया था। जब सिकन्दर ससैन्य यूनान को लौटा तो मुनि कल्याण उसके साथ हो लिये थे। किन्तु ईरान में ही उनका देहावसान हो गया था। अपना अन्त समय जानकर उन्होंने जैन व्रत सल्लेखना का पालन किया था। नगे

229 Al, p 69 -- "(Alexander) despatched Onesikritos to them (gymnosophists), who relates that he found at the distance of 20 stadia from the city (of Taxilla) 15 men standing in different postures, sitting or lying down naked, who did not move from these positions till the evening, when they return to the city the most difficult thing to endure was the heat of the sun etc "

"Calanus bidding him (Ones) to strip himself, if he desired to hear any of his doctrine "

--- Plutarch Al p 71

रहना, भूविशोध कर चलना, इस्ति काव का विराधन न करना, किसी का निमन्त्रण स्वीकार न करना, इत्यादि जिन नियमों का पालन मुनि कल्याण और उन तक साथी मुनिकण करते थे उनसे उनका दिगम्बर जैन मुनि होना सिद्ध है।<sup>230</sup> आधुनिक विद्वान् यही प्रमत्त करते हैं।<sup>231</sup>

मुनि कल्याण ज्योतिषशास्त्र में निष्णान्त थे। उन्होंने बहुत सी भविष्यवाणिया की थीं<sup>232</sup> और शिस्कन्दर की मृत्यु को भी उन्होंने पहिले से ही घोषित कर दिया था। इन भारतीय सन्तों की शिक्षा का प्रभाव यूनानियों पर विशेष पड़ा था। यहाँ तक कि तत्कालीन डायजिनेस (Diogenes) नामक यूनानी तत्ववेत्ताने दिगम्बरध्वज धारण किया था<sup>233</sup> और यूनानियों ने नगी मूर्तियाँ भी बनवाई थीं।<sup>234</sup>

यूनानी लेखकों ने इन दिगम्बर मुनियों के विषय में खूब लिखा है। वे बताते हैं कि वह साधु नगो रहते थे। सर्दी-गर्मी की परीषह सहन करते थे। जनता में इनकी विशेष मान्यता थी। हाट बाजार में जाकर वह धर्मोपदेश देते थे। बड़े-बड़े शिष्ट घरों के अन्तःपुरों में भी वे जाते थे। राजागण इनकी विनय करते और सम्मति लेते थे। ज्योतिष के उम्नुसार ये लोगों को भविष्य का फलाफल भी बताते थे। भोजन का नमन्त्रण ये स्वीकार नहीं करते थे।

230 वीर शर्मा ए.पू. १७६ व ३४१

231 Encyclopaedia Britannica (11th ed) Vol XV p 128 " the term Digambara is referred to in the well-known Greek phrase, Gymnosophists, used already by Megasthenes, which applies very aptly to the Niganthas (Digambara Jainas) "

232 "A calendar fragment discovered at Milet & belonging to the 2nd century B C gives several weather forecasts on the authority of Indian Calanus " --OJMS, XVIII, 297

233 N.J., Intro p 2

234 Pliny, XXXIV 9--JRAS, Vol IX, p 232

विधिपूर्वक नगर में कोई सम्य उन्हे भोजनसेन देता तो उसे वे प्रहज कर लेते थे।<sup>235</sup>  
 कुत्तनी लेखकों के इस वर्णन से उस समय के दिग्गवर जैन मुनियों का महत्व स्पष्ट हो  
 जाता है। उनके द्वारा भारत का नाम विदेशों में प्रकृत था। मन्त्र उन जैसे मुनीश्वरों को  
 प्रकर कौन न अपने को धन्व मानेगा।

---

235 Aristoboulos --says "Their (Gymnosophists) spare time is spent in the  
 market-place in respect their being public councillors, they receive  
 great homage etc"

Cicero (Tusc Disput V 27) --"What foreign land is more vast & wild  
 than India? Yet in that nation first those who are reckoned sages spend  
 the ir lifetime naked & endure the snows of Caucaus & theregae of  
 winter without grieving & when they have committed their body to the  
 flames, not a groan escapes them when they are burning "

Clemens alexandrinus --"those indians, who are called Semnoi (अस्य)  
 go naked all their lives these practise truth, make predictions about  
 futurity and worship a kind of pyramid, beneath which they think the  
 bones of some divinity lie buried (Stupas) " -- AI P 183

"St Jerome --"Indian Gymnosophists' the king on coming to them  
 worships them & the peace of his dominions depends according to his  
 judgement on their prayers." --AI p 184

"Every wealthy house is open to them to the apartments of the women  
 On entering they share the repat." --AI p.71

"When they repair to the city they disperse themselves to the market  
 place if they happen to meet any who carries figs or bunches of  
 graphes they take what he bestows without giving anything in return

## सुग और आन्ध्र राज्यों में दिगम्बर मुनि ।

"The Andhra or Satvahana rule is characterised by almost the same social features as the farther south, but in point of religion they seem to have been great patrons of the Jainas & Budhists "

S K Aiyangar's Ancient India, p 34

अन्तिम मौर्य सम्राट् बृहद्रथ का उनके सेनापति पुष्पमित्र सुग ने बंध कर दिया था । इस प्रकार मौर्य साम्राज्य का अन्त करके पुष्पमित्र ने सुग राजवंश की स्थापना की थी । नन्द और मौर्य साम्राज्य में जहाँ जैन और बौद्धधर्म उन्नति को प्राप्त हुये थे, वहाँ सुगवंश के राजत्वकाल में ब्राह्मण धर्म उन्नत अवस्था को प्राप्त हुआ था । किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि ब्राह्मणेतर जैन आदि धर्मों पर इस समय कोई सकट आया हो । हम देखते हैं कि स्वयं पुष्पमित्र के राजप्रासाद के गनिकट नन्दराज द्वारा लाई गई कलिंग जिन की मूर्ति युगक्षित रही थी । इस अवस्था में यह नहीं कहा जा सकता कि इस समय दिगम्बर जैनधर्म का विकट बाधा सहनी पड़ी थी ।

उस पर सुग राजागण अधिक समय तक शासनाधिकारी भी न रहे । भारत के पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और पजाब की ओर तो यवन राजाओं ने अधिकार जमाना प्रारम्भ कर दिया और मगध तथा मध्यभारत पर जैन सम्राट् खारवेल तथा आन्ध्रराजाओं के आक्रमण होने लगे । खारवेल की मगध विजय में आन्ध्रवंशी राजाओं ने उनका साथ दिया था ।<sup>236</sup> मगध पर आन्ध्र राजाओं का अधिकार हो गया । इन राजाओं के उद्योग से जैन धर्म फिर एक बार चमक उठा ।

आन्ध्रवंशी राजाओं में हाल, पुन्नुमायि आदि जैन धर्म प्रेमी कहे गये हैं ।<sup>237</sup> इन्होंने दिगम्बर जैन मुनियों को बिहार और धर्म प्रचार करने की सुविधा प्रदान की प्रतीत हाती है । उज्जैनी के प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य भी इसी वंश से सम्बन्धित बताये जाते हैं । वह शैव थे, परन्तु उपरान्त एक दिगम्बर जैनाचार्य के उपदेश से जैन हो गये थे ।<sup>238</sup>

236 "In the decadance that followed the death of Asoka, the Andhras seem to have had their own share and they may possibly have helped Khaivela of Kalinga, when he invaded Magadha in the middle of the 2nd century B C. When the Kanvar were over thrown the Andhras extend their power northwards & occupy Magadha " --- SAI, pp, 15-16

237 JBORS 1, 76--118 & CHE, 1 p 532

238 Allahabad university Studies, pt II pp 113-147

ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दिमें एक भारतीय राजा का सम्बन्ध रोम के बादशाह ऑगस्टस से था। उन्होंने उस बादशाह के लिये भेंट भेजी थी। जो लोग उस भेंट को ले गये थे, उनके साथ भृगुकच्छ (भड़ोथ) से एक श्रमणाचार्य (दिगम्बर जैनाचार्य) भी साथ हो लिये थे। वह दूतान पुरुषि थे और वहाँ उनका सम्मान हुआ था। अखिर सन्तुष्ट हो वेत को धारण करके उन्होंने अथेन्स (Athens) में प्राणविसर्जन किये थे। वहाँ उनकी एक निषाधिका बना दी गई थी।<sup>239</sup> अब भला कहीये, जब उस समय दिगम्बर मुनि विदेशों तक में जाकर धर्मप्रचार करने में समर्थ थे, तो वे भारत में क्यों न विहार और धर्मप्रचार करने में सफल होते। जैन साहित्य बताता है कि गणदेव, सुधर्म, नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन आदि दिगम्बर जैनाचार्यों के नेतृत्व में तत्कालीन जैनधर्म सजीव हो रहा था।

ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दि में भारत में अपोलो और दमस नामक दो दूतानी तत्त्ववेत्ता आये थे। उनका तत्कालीन दिगम्बर मुनियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ था। सारांशतः उस समय भी दिगम्बर मुनि इतने महत्वशाली थे कि वे विदेशियों का भी ध्यान आकृष्ट करने को समर्थ थे।

---

239 "In the same year (25 B C ) went an Indian embassy with gifts to Augustus, from a King called Purus by some and Pandian by others They were accompanied by the man who burnt himself at Atthens. He with a smile leapt upon the pyre naked On his tomb was this inscription, 'Zermanochegas, to the custom of his country, lies here ' Zermanochegas seems to be the Greek rendering of Sramanacharya or jaina Guru and the self-immolation, a variety of Sallekhna " - IHq. vol II p 293

## यवन-छत्रप आदि राजामण तथा दिगम्बर मुनि ।

"About the second century B C when the Greeks had occupied a fair portion of western India, Jainism appears to have made its way amongst them and the founder of the sect appears also to have been held in high esteem by the Indo-Greeks, as is apparent from an account given in the Milinda Panho " HG , p 78

मौर्यों के उपरान्त भारत के पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, पंजाब, मालवा आदि प्रदेशों पर यूनानी आदि विदेशियों का अधिकार हो गया था। इन विदेशी लोगों में भी जैन मुनियों ने अपने धर्म का प्रचार कर दिया था और उनमें से कई बादशाह जैन धर्म में दीक्षित हो गये थे।

भारतीय यवनों (Greek) में मनेन्द्र (Menandre) नामक राजा प्रसिद्ध था। उसकी राजधानी पंजाब प्रान्त का प्रसिद्ध नगर साकल (स्यालकोट) था। बौद्धग्रन्थ मिलिन्द पण्ह से विदित है कि उस नगर में प्रत्येक धर्म के गुरु पहुँच कर धर्मोपदेश देते थे।<sup>241</sup> मालूम होता है कि दिगम्बर जैन मुनियों को वहाँ विशेष आदर प्राप्त था, क्योंकि मिलिन्दपण्ह में कहा गया है कि पाँचरसौ यूनानियों ने राजा मनेन्द्र से भगवान महावीर के निग्रन्थ धर्म द्वाग मन्स्तुष्टि करने का आग्रह किया था और मनेन्द्र ने उनका यह आग्रह स्वीकार किया था। अन्त में वह जैन धर्म में दीक्षित हो गया था और उसके राज्य में अहिंसा धर्म की प्रधानता हा गई थी।<sup>243</sup>

यवनों (Indo Greek) को हराकर शकों ने फिर उत्तर पश्चिम भारत पर अधिकार जमाया था। उन्होंने 'छत्रप'-प्रान्तीय शासक नियुक्त करके शासन किया था। इनमें राज अजेस (Azes) के समय में तक्षशिला में जैन धर्म उन्नति पर था। उस समय के बने हुये जैन ऋषियों के स्मारक-रूप स्तूप आज भी तक्षशिला में भगनावशेष हैं।<sup>244</sup>

241 "They resound with cries of welcome to the teachers of every creed and the city is the resort of the leading men of each of the differing seats"  
-- OXM P 3

242 OXM, p 8

243 बीर, वर्ष २ पृ ४४६-४४६

244 AGT, pp 76-80

अक राजा कनिष्क, मुक्ति और वासुदेव के राजकाल में भी जैनधर्म उन्नत दशा में रहा था। मथुरा उस समय प्रधान जैन केन्द्र था। अनेक निर्गुण साधु वहाँ विद्यरते थे। उन नग्न सन्तुओं की पूजा राजपुत्र और राजकन्यायें तथा साधारण जनसमुदाय किया करते थे।<sup>245</sup>

छत्रप नक्षत्रान भी जैन धर्म प्रेमी प्रतीत होता है। उसका राज्य गुजरात से मालवा तक विस्तृत था। जैन साहित्य में उनका उल्लेख नरवाहन और नक्षत्राण रूप में हुआ मिलता है। नक्षत्रान ही संभवतः भूतबलि नामक दिगम्बर जैनचार्य हुये थे, जिन्होंने "षट्खण्डागम शास्त्र" की रचना की थी।<sup>246</sup>

छत्रप नक्षत्रान के अतिरिक्त छत्रप रुद्रदमन का पुत्र रुद्र सिंह का भी जैन धर्म भक्त होना संभव है। जूनागढ़ की "अपरकोट" की गुफाओं में इसका एक लेख है, जिसका सम्बन्ध जैन धर्म से होना अनुमान किया जाता है। ये गुफायें जैन मुनियों के उपयोग में आती थीं।<sup>247</sup>

इन उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि उपरोक्त विदेशी लोगों में धर्मप्रचार करने के लिये दिगम्बर मुनि प्रभु थे और उन्होंने उन लोगों के निकट सम्मान पाया था।

## धनि मुनि जिनकी लगी लौ शिवओरनै .....

धनि मुनि जिनकी लगी लौ शिवओरनै	॥टेक॥
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन निधि, धरत हरत भ्रमचोरनै	॥१॥
यथाजात मुद्राजुत सुन्दर, सदन विजन गिरिकोरनै	।
तुन कञ्चन अरि स्वजन गिनत सम, निदन और निहोरनै	॥२॥
भवसुख चाह सकल तनि बल सजि, करत द्विविध तप घोरनै	।
परम विराग भाव पवितैं नित, चूरत करम कठोरनै	॥३॥
छीन शरीर न हीन चिदानन, मोहत मोह झकोरनै	।
जग-तप-हर भवि कुमुद निशाकर मोदन 'दौल' चकोरनै	॥४॥

245 "Another locality in which the Jainas seem to have been formerly established from the middle of the 2nd Century B C onwards was Mathura in the old kingdom of Curasena "

-- CHI, I, p 167 & see JOAM

246 सरस्वती, भा २६, खण्ड २ पृ ६४८-६४९

247 IA, XX, 163 ff

## सम्राट् ऐलखारवेल आदि कलिंग नृप और दिगम्बर मुनियों का उत्कर्ष ।

"नन्दराज-नीतानि कलिङ्ग-जिन्-संनिवेशं... महारतमान पडिहारेहि अन्वाम्प  
वसवु नेयाति ।" (12 वीं पंक्ति)

"सुकृति-समग-सुविडितानुं च सतद्विज्ञानं ज्ञानितम् तपसि-इत्सिन् संधियन् अरहत  
निस्सीदिया सनीये एभरे वरकारु-सुमुथपतिहि अनेक्योजना हितानि प सि ओ सिन्नाहि सिह  
पथ रानि सिधुडाय निसयानि... घटा (अ) क (तो) चतरे च वेडूरियमभे क्भे  
पतिठापयति ।" (15-16 वीं पंक्ति) - हाथीगुफा जिलालेख ।

कलिंगदेश में पहले तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के एक पुत्र ने पहले पहले राज्य किया था। जब सर्वज्ञ होकर तीर्थंकर ऋषभ ने आर्यखण्ड में विहार किया तो वह कलिंग भी पहुँचे थे। उनके धर्मोपदेश से प्रभावित होकर तत्कालीन कलिंग राजा अपने पुत्र को राज्य देकर दिगम्बर मुनि हो गये थे।<sup>248</sup> बस, कलिंग में दिगम्बर-मुनियों का सद्भाव उस प्राचीन काल से है।

राजा दशरथ अथवा यशधर के पुत्र पाचसौ साधियों सहित दिगम्बर मुनि होकर कलिंगदेश से ही मुक्त हुये थे। तथा वह पवित्र कोटिशिला भी उसी कलिंग देश में है, जिसको श्रीराम-लक्ष्मण ने उठाकर अपना बाहुबल प्रगट किया था और जिस पर से एक करोड़ दिगम्बर-मुनि निर्वाण को प्राप्त हुये थे।<sup>249</sup> साराशतः एक अतीव प्राचीन काल से कलिंग देश दिगम्बर-मुनियों के पवित्र-चरण कमलों से अलंकृत हो चुका है।

इक्ष्वाकवश के कौशलदेशीय क्षत्रिय राजाओं के उपरान्त कलिंग में हरिवंशी क्षत्रियों ने राज्य किया था। भगवान महावीर ने सर्वज्ञ होकर जब कलिंग में आकर धर्मोपदेश दिया तो उस समय कलिंग के जितशत्रु नामक राजा दिगम्बर मुनि हो गये उनके साथ और भी अनेक दिगम्बर मुनि हुये थे।<sup>250</sup>

उपरान्त दक्षिण कौशलवर्ती घेदिराज के वश के एक महापुरुष ने कलिंग पर अधिकार जमा लिया था।<sup>251</sup> ईस्वी पूर्व द्वितीय शताब्दि में इस वश का ऐल खारवेल नामक राजा

248 हरिवंशपुराण अ ३ श्लो ३-६ अ ११ श्लो १४-६१

249 "जसधर गइत्स सुवा । पवसयाभूत् कलिग तेसम्मि ।।

कोटिसिल कोडि मुणि णिववाण गया णमो तेसम्मि ।।१८।।" -- णिव्वाण-कुड गाहा ।

250 हरिवंशपुराण (कलकत्ता संस्करण) पृ ६२३

251 JBORS Vol III pp 434 484

अपने भूजविष्णु, प्रजाप और धर्म कार्यों के लिये प्रसिद्ध था। यह जैन धर्म का बृह उपरसक था। उसने सारे भारत की विधवाओं की थी। वह मध्य के सुमंगरी राजा को हराकर वह कलिमा जिन महाक अर्द्ध-मूर्ति को वापस कलिमा ले आया था। दिगम्बर मुनियों की वह भक्ति और किन्तु करतल था। उन्होंने उन के लिये बहुत से कार्य किये थे। कुमारी पर्वत पर अर्द्धतमस्यान की निवृत्त के निकट उन्होंने एक उन्नत जिन प्रसन्नद बनवाया था। तथा पञ्चरत्नर लम्बा बुद्धों को व्यव करके उस पर वैदूर्यरत्न जडित स्तम्भ खड़े करवाये थे। उनकी रानी ने भी जैन मन्दिर तथा मुनियों के लिये गुफाये बनवाई थीं, जो अब तक मौजूद है।<sup>252</sup> और भी न जाने उन्होंने दिगम्बर मुनियों के लिये क्या-क्या नहीं किया था।

उस समय मथुरा, उज्जैनी और गिरिनगर जैन ऋषियों के केन्द्रस्थान थे<sup>253</sup> खारवेलने जैन ऋषियों का एक महासम्मेलन एकत्र किया था। मथुरा, उज्जैनी, गिरिनगर काशीपुर आदि स्थानों से दिगम्बर मुनि उस सम्मेलन में भाग लेने के लिये कुमारी पर्वत पहुँचे थे। बड़ा भारी धर्म महोत्सव किया गया था।<sup>254</sup> बुद्धिमा, देव, धर्म सेन, नक्षत्र आदि दिगम्बर जेनाचार्य उस महासम्मेलन में सम्मिलित हुये थे।<sup>255</sup> इन ऋषिपुङ्गवों ने मिलकर जिनवाणी का उद्धार किया था तथा सभाट खारवेल के सहयोग से वे जैन धर्म प्रचार करने में सफलमनोरथ हुये थे। यही कारण है कि उस समय प्राय सारे भारत में जैन धर्म फैला हुआ था। यहा तक कि विदेशियों में भी उसका प्रचार हो गया था, जैसे कि पूर्व परिच्छेद में लिखा जा चुका है। अतएव यह स्पष्ट है कि ऐल खारवेल के राजकाल में दिगम्बर मुनियों का महती उत्कर्ष हुआ था।

ऐल खारवेल के बाद उनके पुत्र कुदेपश्री खर महामेघवाहन कलिमा के राजा हुए थे। वह भी जैनधर्मानुयायी थे<sup>256</sup> उनके बाद भी एक दीर्घ समय तक कलिमा में जैनधर्म राष्ट्रधर्म रहा था। बोद्धाग्रन्थ 'दाठाक्सो' से ज्ञात है कि कलिमा के राजाओं में बुद्ध के समय से जैनधर्म का प्रचार था। गौतमबुद्ध के स्वर्गवारी होने के बाद बौद्ध भिक्षु खेम ने कलिमा के राजा ब्रम्हदत्त को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था। ब्रम्हदत्त का पुत्र काशीराज और पौत्र सुनन्दभी बौद्ध रहे थे।<sup>257</sup> किन्तु उपरान्त फिर जैनधर्म का प्रचार कलिमा में हो गया। यह

252 बंघि ओ जैस्मा पृ ६१

253 IHQ, Vol p 522

254 "सतदिसानु भनितम् तपसि-इसिन संधियन अरहत निसीदिया सनीपे ----- चोयधि अंगसतिक तुरिय उपादबति।" -- JBORS, XIII 236-237

255 अनेकान्त, वर्ष १ पृष्ठ २२८

256 JBORS, III p 505

257 दन्त धातु ततो खेमो अत्तना गहित अदा।

दन्तपुरे कलिहस्स ब्रहादत्तस्स राजिनो १७७। 12

दिसवित्त्वान सो धम्मं भेत्वा सब्ब कुदिदिट्ठयो।

राजानं तं पसादेसि अग्गम्हहिरतनत्तये। 1७८। 1।

अनुजातो ततो तस्स कासिराज क्खयो सुदो।

रज्जं लकां अग्गज्जान सोकम्मललमपानुदि। 1६६।

सुनन्दो नाम राजिन्दो आनन्दजननो संत।

तस्स ब्रह्मो ततो आसि बुद्धसासननामको ।।६६। -- दाढा. पृ. ११-१२  
समय सम्भवतः स्मारकेन आदि का होगा। कालान्तर में कलिग का गृहशिव नाम प्रतापी राजा निग्रन्थ साधुओं का भक्त कहा गया है। उसके बौद्ध मंत्री ने उसे जैनधर्म विमुख बना लिया था। निग्रन्थ साधु उसकी राजधानी छोड़कर पाटलिपुत्र चले गये थे। सम्राट् पण्डु वहा पर शासनाधिकारी था। निग्रन्थ साधुओं ने उससे गृहशिव की घृष्टता की बात कही थी ।<sup>258</sup> यह घटना लगभग ईसवी तीसरी या चौथी शताब्दि की कही जा सकती है। और इससे प्राट है कि उस समय तक दिगम्बर मुनियों की प्रधानता कलिग अग-बंग और माघ में विद्यमान थी। दिगम्बर मुनियों को राजाश्रय मिला हुआ था।

कुमारी पर्वत पर के शिलालेखों से यह भी प्राट है कि कलिग में जैन धर्म दसवीं शताब्दि तक उन्नतावस्था पर था। उस समय वहा पर दिगम्बर जैन मुनियों के विविध सघ विद्यमान थे, जिनमें अश्वघोष यशनन्दि, आचार्य कुलवन्द तथा आचार्य शुभचन्द मुख्य साधु थे ।<sup>259</sup>

इस प्रकार कलिग में दिगम्बर जैन धर्म का बाहुल्य एक अतीव प्राचीन काल से रहा है और वहा पर आज भी सराक लोग एक बड़ी सख्या में हैं, जो प्राचीन श्रावक है<sup>260</sup> उनका अस्तित्व इस बात का प्रमाण है कि कलिग में जैनत्व की प्रधानता आधुनिक समय तक विद्यमान रही थी।

258 गृहसीव खेयागजा दुरितिककमसासनो ।  
ततो रज्जसिर्णि पत्वा अनुगणिह महाजन ।।६२।।२।।  
सवरत्थानभिञ्जो लाभसककारलोलुपे ।  
मायाविनो अविज्जनधे निगन्थे समुपट्ठहि ।।६३।।

x x x x

तस्सा मच्चस्स सोराजा सुत्वाधम्मसुभासितं ।  
दुल्लद्धिमलमुञ्जित्वा पसीदिरतनत्तये ।।६६।।

x x x x

इति सो धिन्धित्वान गृहसीवो नराधिपो ।  
पवाजेसि सकारट्ट निगण्ठे ते असेसके ।।६६।।  
ततो निगण्ठा सव्वेपि धतसित्तानला यथा ।  
कोधग्गिजलिता गच्छ पुंरं पाटलिपुत्तक ।। ६०।।

x x x x

तथ्य राजा महातेजो जम्बुदीपस्स हस्सरो ।  
पण्डु नामोतदा आसि अनन्त बलवाहनो ।।६१।।  
कोधन्धोऽथ निगण्ठा ते सव्वे पेसुअकारका ।  
उपसकम्मराजाने इद बघवनमत्रवुं ।।६२।। इत्यादि' -- दाढा पृ १३-१४

259 बंधिओ जैस्मा पृ ६४-६६

260 बंधिओ जैस्मा , १०१-१०४

## गुप्त-साम्राज्य में दिगम्बर-मुनि ।

"The Capital of the Gupta emperors became the centre of Brahmanical culture but the masses followed the religious traditions of their forefathers, and Buddhist & Jain monasteries continued to be public schools and universities for the greater part of India "

- E. B. Havell., HARI, p 156

यद्यपि गुप्तवंश के राज्यकाल में ब्राह्मण धर्म की उन्नति हुई थी, किन्तु जन-साधारण में अब भी जैन और बौद्ध धर्मों का ही प्रचार था। दिगम्बर जैन मुनिगण ग्राम-ग्राम विचर कर जनता का कल्याण कर रहे थे और दिगम्बर उपाध्याय जैन विद्यापीठों के द्वारा ज्ञान-दान करते थे। गुप्त काल में मथुरा, उज्जैन, श्रावस्ती, राजगृह आदि स्थान जैन धर्म के केन्द्र थे। इन स्थानों पर दिगम्बर जैन साधुओं के सघ विद्यमान थे। गुप्त-सम्राट अब्राह्मण साधुओं से द्वेष नहीं रखते थे,<sup>261</sup> तथापि उनका वाद ब्राह्मण विद्वानों के साथ कराकर सुनना उन्हें पसन्द था।

श्री सिद्धसेनदिवाकर के उद्गारों से पता चलता है कि "उस समय सरलवाद पद्धति और आकर्षक शान्तिवृत्ति का लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था। निग्रन्थ अकेले हुकेले ही ऐसे स्थलों पर जा पहुँचते थे और ब्राह्मणदि प्रतिवादी विस्तृत शिष्य समूह और जनसमुदाय सहित राजसी ठाठ-बाठ के साथ पेश आते थे, तो भी जो यश निग्रन्थों को मिलता था वह उन प्रतिवादियों को अप्राप्य था।"<sup>262</sup>

बगाल में पहाडपुर नामक स्थान दिगम्बर जैन सघ का केन्द्र था। वहाँ के दिगम्बर मुनि प्रसिद्ध थे।<sup>263</sup>

गुप्तवंश में चन्द्रगुप्त द्वितीय प्रतापी राजा था। उसने 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की थी। विद्वानों का कथन है कि उसी की राज-सभा में निम्नलिखित विद्वान थे।<sup>264</sup>

धन्वन्तरि, क्षणकोऽमरसिंहशकुर्वेतालभट्टघटखर्परकालिदासा । ख्यातो बराहमिहिनो नृपतेः सभाया रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥"

261 भाइ, पृ ६१

262 जैहि भा १४ पृ १५६

263 IHQ VII 441

264 रथा, १३३ ।

इन विद्वानों में 'क्षपणक' नाम का विद्वान एक दिगम्बर मुनि था। आधुनिक विद्वान् उन्हें सिद्धसेन नामक दिगम्बर जैनाचार्य प्रकट करते हैं।<sup>265</sup> जैनशास्त्र भी उनका समर्थन करते हैं। उनसे प्रकट है कि श्री सिद्धसेन ने महाकाली के मन्दिर में चम्पकार दिखाकर चन्द्रगुप्त को जैनधर्म में दौखित कर लिखा था।<sup>266</sup>

उपरोक्त विद्वानों में से अमरसिंह<sup>267</sup> वराहमिहिर<sup>268</sup> आदि ने अपनी रचनाओं में जैनों का उल्लेख किया है उससे भी प्रकट है कि उस समय जैनधर्म काफी उन्नतरूप में था। वराहमिहिर ने जैनों के उपास्य देवता की मूर्ति नग्न बन्ती लिखी है, इससे यह स्पष्ट है कि उस समय उज्जैन के निकट भद्रदलपुर (वीसनगर) में उस समय दिगम्बर मुनियों का संघ मौजूद था, जिसके आचार्यों की कालानुसार नामावली निम्नप्रकार है:-

1	श्री मुनि वज्रनन्दी .	सन् 307 में आचार्य हुये
2	श्री मुनि कुमार नन्दी	329 " "
3	श्री मुनि लोकचन्द्र प्रथम .	360 " ""
4.	श्री मुनि प्रभाचन्द्र " .	396 " "
5.	श्री मुनि नेमिचन्द्र "	421 " "
6.	श्री मुनि भानुनन्दि .	430 " "
7.	श्री मुनि जयनन्दि .	451 " "
8	श्री मुनि वसुनन्दि	468 " "
9	श्री मुनि वीरनन्दि	474 " "
10	श्री मुनि रत्ननन्दी	504 " "
11	श्री मुनि भाणिक्यनन्दी	528 " "
12.	श्री मुनि मेघचन्द्र	544 " "
13.	श्री मुनि शानिकीर्ति प्रथम	560 " "
14	मेरुकीर्ति	585 " "269

इन्के बाद जो दिगम्बर जैनाचार्य हुये, उन्होंने भद्रदलपुर (मालवा) से हटाकर जैनसंघ का केन्द्र उज्जैन में बना दिया।<sup>270</sup> इससे भी स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के निकट जैनधर्म को आश्रय मिला था। उसी समय चीनी-यात्री फाहहान भारत में आया था। उमने मथुरा के उपरान्त मध्यदेश में 96 पाखण्डों का प्रचार लिखा है। वह कहता है कि "वे सब लोक और परलोक मानते हैं। उनके साधु सघ हैं। वे भिक्षा करते हैं, केवल भिक्षापात्र नहीं रखते। सब नानारूप से धर्मानुष्ठान करते हैं।"<sup>271</sup> दिगम्बर-मुनियों के

265 रथा चरित्र पृ 133-134

266 कीर, खं १ पृ 801

267 अमरकोष देखो

268 'मगनान् जिनानां विदु ।' --वराहमिहिर संहिता

269 यदुत्पायली जैहि , भाग ६ अंक ६-७ पृ २६-३० व ।A., XX 351-352

270. ।A., XX 352

271 फाहहान पृ ४६।

पास निष्कापत्र नहीं होता—वे परिवर्धित भोजी और उनके संघ होते हैं। तब वे अहिंसा धर्म का उपदेश मुद्रकाल से देते हैं। फाह्यान कहता है कि "सारे देश में सिखाव छायाडाल के कोई अधिपत्यारी न जीवन्मिता करता है, न मद्य पीता है और न लहसुन खाता है। न कहीं सुनकार और मद्य की दुकानें हैं।"<sup>272</sup> उसके इस कथन से भी जैन मान्यता का समर्थन होता है कि भद्रवल्पुर, उज्जैनी आदि मध्यदेशवर्ती नगरों में दिगम्बर जैन मुनियों के सघ नैज्जुह में और उनके द्वारा अहिंसा धर्म की उन्नति होती थी।

फाह्यान संवत्प्रथ, श्रावस्ती, राजगृह आदि नगरों में भी निम्न साधुओं का अस्तित्व प्रगट करता है। संवत्प्रथ उस समय जैन-तीर्थ माना जाता था। संभवतः यह भगवान विमलम्भय तीर्थंकर का केवलस्थान स्थान है। दो-तीन वर्ष हुए वहाँ निकट से एक नग्न जैनमूर्ति निष्कापत्री थी और यह गुप्तकाल की अनुमान की गई है।<sup>273</sup> इस तीर्थ के सम्बन्ध में निम्नो और बौद्धभिक्षुओं ने वाद हुआ वह लिखता है।<sup>274</sup> श्रावस्ती में भी बौद्धों ने निम्नो से विवाद किया वह बताता है।<sup>275</sup> श्रावस्ती में उस समय सुदुग्धज वश के जैनराजा राज्य करते थे।<sup>276</sup> कुशाऊ (श्रीसखपुर) से जो स्कन्दगुप्त के राजकाल का जैनलेख मिला है<sup>277</sup> उससे स्पष्ट है कि इस ओर अवश्य ही दिगम्बर जैनधर्म उन्नाताकस्या पर था।

साँची से एक जैन लेख विक्रम सं. 468 आद्यपद चतुर्थी का मिला है। उसमें लिखा है कि उन्दान के पुत्र आमरकार देवने ईश्वरवासक गव्य और 25 दीनारों का दान किया। यह दान कन्नकावोट के जैन विहार में पाँच जैनभिक्षुओं के भोजन के लिये और रत्नगृह में दीपक जलाने के लिये दिया गया था। उक्त आमरकारदेव छन्द्रगुप्त के यहा किसी सैनिकपद पर नियुक्त था।<sup>278</sup> यह भी जैनोत्कर्ष का द्योतक है।

राजगृह पर भी फाह्यान निम्नोले का उल्लेख करता है।<sup>279</sup> वहाँ की सुभद्रगुफा में तीसरी या चौथी शताब्दि का एक लेख मिला है जिससे प्रगट है कि मुनिसंघ ने मुनि वैरदेव को आचार्य पद पर नियुक्त किया था।<sup>280</sup> राजगृह में गुप्तकाल की अनेक दिगम्बर मूर्तिया भी हैं।<sup>281</sup>

साराशतः गुप्तकाल में दिगम्बर मुनियों का वाहुन्व्य था और वे सारे देश में धूम-धूम कर धर्मोद्योत कर रहे थे।

272 फाह्यान, पृ ३१

273 IHQ, Vol. V p 142

276. संग्रहजैमि. पृ ६४

274. फाह्यान, पृ ३४-३६

277 भाष्यार., भा. ६४

275 फाह्यान, पृ. ४०-४४

278. भाष्य., भा २ पृ ३६३

279 "Here also the Nigantha made a pit with fire in it and poisoned the food of which he invited Buddha to partake (The Niganthas were ascetics who went naked). --- Fa-Hian, Beal, pp 110-113 यह उल्लेख साम्प्रदायिक द्वेष का द्योतक है।

280 बंदिओ जैन्मा, पृ १६

281. "Report on the Ancient Jain Remains on the hills of Rajgir" submitted to the Patna Court by R.B. Ramprasad chanda B A ch IV p 30 (Jain Images of the Gupta & Pala period at Rajgir)

## हर्षवर्द्धन तथा हुएनसांग के समय में दिगम्बर-मुनि ।

"बौद्धों और जैनियों की भी सख्या बहुत अधिक थी। बहुत से प्रान्तीय राजा भी इनके अनुयायी थे। इनके धार्मिक-सिद्धान्त और रीति-रिवाज भी तत्कालीन समाज पर पर्याप्त प्रभाव डाले हुये थे। इसके अतिरिक्त तत्कालीन समाज में साधुओं, तपस्वियों, भिक्षुओं और यतियों का एक बड़ा भारी समुदाय था, जो उस समय के समाज में विशेष महत्व रखता था। (हिन्दुओं में) बहुत से साधु अपने निश्चित स्थानों पर बैठे हुये ध्यान-समाधि करते थे, जिनके पास भक्त लोग उपदेश आदि सुनने आया करते थे। बहुत से साधु शहरों व गावों में घूम घूम कर लोगों को उपदेश एवं शिक्षा दिया करते थे। यही हाल बौद्ध भिक्षुओं और जैन साधुओं का भी था।

साधारणतः लोगों के जीवन को नैतिक एवं धार्मिक बनाने में इन साधुओं, यतियों और भिक्षुओं का बड़ा भारी भाग था।"

- कृष्णचन्द्र विद्यालंकार ।<sup>282</sup>

गुप्त-साम्राज्य के नष्ट होने पर उत्तर भारत का शासन योग्य हाथों में न रहा। परिणाम यह हुआ की शीघ्र ही हूण जाति के लोगों ने भारत पर आक्रमण करके उस पर अधिकार जमा लिया। उनका राज्य सभी धर्मों के लिये थोड़ा बहुत हानिकार हुआ, किन्तु यशोधर्मन् राजा ने संगठन करके उन्हें परास्त कर दिया। इसके बाद हर्षवर्द्धन नामक सम्राट एक ऐसे राजा मिलते हैं जिन्होंने सारे उत्तर-भारत में प्रायः अपना अधिकार जमा लिया था और दक्षिण-भारत को हथियाने की भी जिन्होंने कोशिश की थी। इनके राजकाल में प्रजा ने सतोष की सास ली थी और वह धर्म-कर्म की बातों की ओर ध्यान देने लगी थी।

गुप्तकाल से ही ब्राह्मण-धर्म का पुनरुत्थान होने लगा था और इस समय भी उसकी बाहुल्यता थी, किन्तु जैन और बौद्धधर्म भी प्रतिभाशाली थे। धार्मिक जागृति का वह उन्नत काल था। गुप्त काल से जैन, बौद्ध और ब्राह्मण विद्वानों में वाद और शास्त्रार्थ होना प्रारम्भ हो गये थे। हर्षकाल में उनको वह उन्नत रूप मिला कि समाज में विद्वान् ही सर्व श्रेष्ठपुरुष गिना जाने लगा।<sup>283</sup> इन विद्वानों में दिगम्बर-मुनियों का भी सद्भा था। सम्राट हर्ष के राजकवि बाण ने अपने ग्रन्थों में उनका उल्लेख किया है। वह लिखता है कि "राजा

282. हर्षकालीन भारत - "त्यागभूमि" वर्ष २ खण्ड १ पृ ३०१

283 भाइ, पृ १०३-१०४

जब गहन जमल में आ पहुँचा तो वहाँ उसने अनेक तरह के लपट्टी देखे। उनमें मन (दिगम्बर) अर्द्धत (जैन) साधु भी थे।<sup>284</sup> "हर्ष ने अपने महासम्मेलन में उन्हें शास्त्रार्थ के लिये बुलाया था और वह एक बड़ी संख्या में उपस्थित हुये थे।"<sup>285</sup> इससे प्रकट है कि उस समय हर्ष की राजधानी के आस-पास भी जैन धर्म का प्राकृत्य था, वैसे तो वह सारे भारत में फैला हुआ था। उज्जैन का दिगम्बर जैन सघ अब भी प्रसिद्ध था और उसमें तत्कालीन निम्न दिगम्बर जैनाचार्य मौजूद थे -<sup>286</sup>

1	श्री दिग जैनचार्य महाकीर्ति,	सन् 629 को आचार्य हुये:
2	"" विष्णुनन्दि,	" 647 ""
3	"" श्रीभूषण,	" 669 ""
4	" " श्रीचन्द्र	" 678 ""
5.	" " श्रीनन्दि,	" 692 ""
6	" " देशभूषण	" 708 " "

इत्यादि।

सम्राट हर्ष के समय में (7वीं श ) चीन देश से हुएन्सांग नामक यात्री भारत आया था। उसने भारत और भारत के बाहर दिगम्बर जैन मुनियों का अस्तित्व बतलाया है।<sup>287</sup> वह उन्हें निग्रथ और नगोसाधु लिखता है तथा उनकी केशलुच्यनत्रिया का भी उल्लेख करता है।<sup>288</sup> वह पेशावर की ओर से भारत में घुसा था। और वहीं सिंहपुर में उसने नूंग जैन मुनियों को पाया था।<sup>289</sup> इसके उपरान्त पंजाब के और मथुरा, स्थानेश्वर, ब्रह्मपुर, अहिक्षेत्र, कपिथ, कन्नौज, अयोध्या, प्रयाग, कौशाम्बी, बनारस, श्रावस्ती, इत्यादि मध्यदेश वर्ती नगरों में यद्यपि उसने दिगम्बर मुनियों का प्रथक उल्लेख नहीं किया है, परन्तु एक साथ सब प्रकार के साधुओं का उल्लेख करके उसने उनके अस्तित्व को इन नगरों में प्रकट कर दिया है। मथुरा के सम्बन्ध में वह लिखता है कि "पाच देवमन्दिर भी हैं, जिनमें सब प्रकार के साधु उपासना करते हैं"<sup>290</sup> स्थानेश्वर के विषय में उसने लिखा है कि "कई सौ

284 दिगु, पृ २१

285 HARI, p 270

286 जैहि, भा ६ अंक ६-८ पृ ३० व 1A, XX 352

287 "Hieun Tsang found them (Jains) spread through the whole of India and even beyond its boundaries" -- AISJ, p 45 विशेष के लिये वॉनसाँग का भारत भ्रमण (इण्डियन प्रेस लि) देखो।

288 "The Li-Hi (Nirgranthas) distinguish them selves by leaving their bodies naked & pulling out their hair Their skin is all cracked, their feet are hard & chapped like coting trees" -- (St Julien, Vienna, p224)

289 हुआ, पृ १४३

290 हुआ, पृ १८१

देवमन्दिर बने हैं, जिनमें नाना जाति के अग्रणीत भिन्न धर्मावलम्बी उपासना करते हैं।<sup>291</sup> ऐसे ही उल्लेख अन्य नगरों के सन्ध में उसने किये हैं। राजगृह के वर्णन में हुएमन्त्रांग ने लिखा है कि "विष्णु पहाड़ी की छोटी पर एक स्तूप उस स्थान में है, जहां प्राचीनकाल में तबगत भगवान् ने धर्म की पुनरावृत्ति की थी। आजकल बहुत से निग्रन्थ लोग (जो नसे रहते हैं) उस स्थान पर आते हैं और रात दिन अविराम तपस्या किया करते हैं तथा स्त्रोत्रों से सांख तक इस (स्तूप) की प्रदक्षिणा करके बड़ी भक्ति से पूजा करते हैं।"<sup>292</sup>

पुण्ड्रवर्द्धन (बगाल) में वह लिखता है कि "कई सौ देवमन्दिर भी हैं, जिनमें अनेक सम्प्रदाय के विरुद्ध धर्मावलम्बी उपासना करते हैं। अधिक सख्या निग्रन्थ लोगों (दिगम्बर मुनियों) की है।"<sup>293</sup>

समरट (पूर्वी बगाल) में भी उसने अनेक दिगम्बर साधु पाये थे। वह लिखता है, "दिगम्बर साधु, जिनको निग्रन्थ कहते हैं, बहुत बड़ी सख्या में पाये जाते हैं।"<sup>294</sup>

ताम्रलिपि में वह विरोधी और बौद्ध दोनों का निवास बतलाता है। कर्णसुवर्ण के सम्बन्ध में भी यही बात कहता है।<sup>295</sup>

कलिंग में इस समय दिगम्बर जैन धर्म प्रधान पद ग्रहण किये हुये था। हुएनसांग कहता है कि वहां 'सबसे अधिक सख्या निग्रन्थ लोगों की है।'<sup>296</sup> इस समय कलिंग में सेनवंश के राजा राज्य कर रहे थे, जिनका जैन धर्म से सम्बन्ध होना बहुत कुछ सम्भव है।<sup>297</sup>

दक्षिण कौशल में वह विधर्मी और बौद्ध दोनों को बताता है। आन्ध्र में भी विरोधियों का अस्तित्व वह प्रगट करता है।<sup>298</sup>

घोल देश में वह बहुत से निग्रन्थ लोग बताता है।<sup>299</sup> द्रविड के सम्बन्ध में वह कहता है कि "कोई अस्सी देव मन्दिर और असख्य विरोधी हैं, जिनको निग्रन्थ कहते हैं।"<sup>300</sup>

मालकूट (मल्ल देश) में वह बताता है कि "कई सौ देव मन्दिर और असख्य विरोधी हैं, जिनमें अधिकतर निग्रन्थ लोग हैं।"<sup>301</sup>

इस प्रकार हुएनसांग के भ्रमण वृतान्त से उस समय प्रायः सारे भारतवर्ष में दिगम्बर जैनमुनि निर्वाह विहार और धर्मप्रचार करते हुये मिलते हैं।

291 हुआ, पृ १६६

292 हुआ, पृ ४७४-४७५

293 हुआ, पृ ५२६

294 हुआ, पृ ५३३

295 हुआ, पृ ५३५-५३७

296 हुआ, पृ ५४५

297. बीर वर्ष ४ पृ. ३२८-३३२

298 हुआ, पृ. ५४६-५५७

299. हुआ, पृ. ५७७

300 हुआ, पृ ५७२

301 हुआ, पृ ५७४

## मध्यकालीन हिन्दू राज्य में दिगम्बर मुनि ।

“श्री धाराधिप भोजराज बुकुट प्रोताशम्बरत्रिपुङ्गवा-  
 छत्राया कुकान-एक-लिप्य-वर्णाम्भोजात-सम्नीघय” ।  
 स्वावास्त्यकरमण्ड ने दिनमणिप्रज्ज्वालय रोदोमणि-  
 स्वैवात्पण्डित-पुण्डरीक तरणि श्री वाग्प्रभाषद्वयाः ॥”

- चन्द्रगिरि शिखरसेख ।

### राजपूत और दिगम्बर मुनि

वर्ष के उपरान्त उत्तर भारत में कोई एक सम्राट न रहा, बल्कि अनेक छोटे छोटे राज्यों में यह देश विभक्त हो गया । इन राज्यों में अधिकांश राजपूतों के अधिकार में थे और इनमें दिगम्बर मुनि निर्बाध विद्यर कर जनकल्याण करते थे । राजपूतों में अधिकांश जैसे चौहान, पडिहार आदि एक समय जैन धर्म भुक्त थे और उनके कुलदेवता चक्रेश्वरी, अम्बा आदि शासन देवियों थी ।<sup>302</sup>

उत्तर भारत में कन्नौज को राजपूत-काल में भी प्रधानता प्राप्त हो रही है । वहां का राजाभोज परिहार ( 840-90 ई ) सारे उत्तर-भारत का शासनाधिकारी था । जैनधर्म बप्ससुरि ने उसके दरबार में आदर प्राप्त किया था ।<sup>303</sup>

ध्रावस्ती, मथुरा, असाईखिडा, देवगढ, वारानगर, उज्जैन आदि स्थान उस समय भी जैन केन्द्र बने हुये थे । ग्यारहवीं शताब्दी तक ध्रावस्ती में जैनधर्म राष्ट्रधर्म रहा था । वहा का अन्तिम राजा सुहृद्द्वज था ।<sup>304</sup> उसके सरक्षण में दिगम्बर मुनियों का लोक कल्याण में निरत रहना स्वाभाविक है ।

बनारस के राजा भीमसेन जैन धर्मानुयायी थे और वह अन्त में पहितारख नामक जैन मुनि हुये थे ।<sup>305</sup>

मथुरा में रणकेतु नामक राजा जैनधर्म का भक्त था । वह अपने भाई गुणवर्मा सहित नित्य जिनपूजा किया करता था । आखिर गुणवर्मा को राज्य देकर वह जैन मुनि हो गया था ।<sup>306</sup>

302 "वीर", वर्ष ३ पृ ४७२ एक प्राचीन जैन गुटका में यह बात लिखी हुई है ।

303 भाइ पृ १०८ व टिजे, वर्ष २३ पृ ८४

304. संप्राप्तिमा, पृ ६५

305 जैप पृ. २४२

306 पूर्व

सूरीपुर (जिला अगरा) का राजा जितपुत्र भी जैनी था वह बड़े-बड़े विद्वानों का आदर करता था। अन्त में वह जैनमुनि हो गया था और शान्ति कीर्ति के नाम से प्रसिद्ध हुआ था।<sup>307</sup>

**मासवा के परमार राजा और दिगम्बर मुनि**

मासवा के परमार वंशी राजाओं में मुज्ज और भोज अपनी विद्यारसिकता के लिये प्रसिद्ध हैं। उनकी राजधानी धारानगरी विद्या की केन्द्र थी। मुख के दरबार में धनपाल, पद्मगुप्त, धनञ्जय, हलायुद्ध आदि अनेक विद्वान थे।<sup>308</sup> मुज्ज नरेश से दिगम्बर जैनाचार्य महासेन ने विशेष सम्मान पाया था।<sup>309</sup> मुज्ज के उत्तराधिकारी सिंधुराज के एक सामन्त के अनुरोध से उन्होंने प्रद्युम्नचरित काव्य की रचना की थी। कवि धनपाल का छोटा भाई जैनाचार्य के उपदेश से जैन हो गया था, किन्तु धनपाल को जैनों से घिड़ थी। आखिर उनके दिलपर भी सत्य जैन्धर्म का सिक्का जम गया और वे भी जैनी हो गये थे।<sup>310</sup>

दिगम्बर जैनाचार्य श्री शुभचन्द्र भी राजा मुज्ज के समकालीन थे। उन्होंने राज का मोह त्यागकर दिगंबरी दीक्षा ग्रहण की थी।<sup>311</sup>

राजा मुज्ज के समय में ही प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य श्री अमितातिजी हुये थे। वह भाधुर संघ के आचार्यमाधवन के शिष्य थे। 'आचार्यवर अमिताति बड़े भारी विद्वान् और कवि थे। इनकी असाधारण विद्वत्ता का परिचय पाने को इनके ग्रन्थों का मनन करना चाहिये। रचना सरल और सुखसाध्य होने पर भी बड़ी गभीर और मधुर है। संस्कृत भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था।'<sup>312</sup>

'नीतियाक्याकृत' आदि ग्रन्थों के रचयिता दिगम्बराचार्य श्री म्मेमदेव सूरी श्री अमितागि आचार्य के समकालीन थे। उस समय इन दिगम्बराचार्यों द्वारा दिगम्बर धर्म की खूब प्रभावना हो रही थी।<sup>313</sup>

**राजाभोज और दिगम्बर मुनि**

मुज्ज के समान राजा भोज के दरबारी में भी जैनों को विशेष सम्मान प्राप्त था। भोज स्वयं शैव था, परन्तु 'वह जैन और हिन्दुओं के शास्त्रार्थ का बड़ा अनुरागी था।' श्री प्रभाधन्द्राचार्य का उसने बड़ा आदर किया था। दिगम्बर जैनाचार्य श्री शान्तिसेन ने भोज की सभा में सैकड़ों विद्वानों से वाद करके उन्हें परास्त किया था।<sup>314</sup>

307 पूर्व पृ २४१

308 भाप्रारा, भा १ पृ १००

309 मप्राजैस्मा, भूमिका, पृ २०

310 भाप्रारा भा १ पृ १०३-१०४

311 मजैह, पृ ५४-५५

312 विकी, भा २ पृ ६४

313 विर, ११५

314. भाप्रारा, भाग १ पृ. ११८-१२१

एक कवि कविरिदास राजा भोज के दरबार में भी थे कहते हैं कि उनकी स्पर्धा दिगम्बराचार्य श्रीमान्कण्ड जी से थी उन्होंने के उक्ताने पर राजा भोज ने मन्तुडाचार्य को अङ्गुलीय कोटों के भीतर बन्द कर दिया था, किन्तु श्री 'भक्तमर सोत्र' की रचना करते हुये वह आचार्य अपने खोगबल से बन्धनमुक्त हो गये थे। इस घटना से प्रभावित होकर कहते हैं, राजा भोज जैनधर्म में दीक्षित हो गये थे,<sup>315</sup> किन्तु इस घटनाक्रम का समर्थन किसी अन्य श्रोत से नहीं होता।

श्रीब्रह्मदेव के अनुसार 'द्रव्यसंग्रह' के कर्ता श्री नेमिचन्द्राचार्य भी राजा भोजदेव के दरबार में थे।<sup>316</sup> श्री नयनन्दि नामक दिगम्बर जैन्याचार्य ने अपना "सुदर्शन चरित" राजा भोज के राजकाल में समाप्त किया था।<sup>317</sup>

### उज्जैनी का दिगम्बर संघ

भोज ने अपनी राजधानी उज्जैनी में स्थापित की थी। उस समय भी उज्जैनी अपने "दि जैन संघ" के लिए प्रसिद्ध थी। उस समय तक उस संघ में निम्न आचार्य हुये थे -<sup>318</sup>

अनन्तकीर्ति	सन् 708ई
धर्मनन्दि	" 728 "
विद्यानन्दि	" 751 "
रामचन्द्र	" 783 "
रामकीर्ति	"790 "
अभयचन्द्र	"821 "
नरचन्द्र	" 840 "
नागचन्द्र	" 859 "319
हरिनन्दि	" 882 "
हरिचन्द्र	" 891 "
महीचन्द्र	" 917 "
माघचन्द्र	" 933 "
लक्ष्मीचन्द्र	" 966 "
गुणकीर्ति	" 970 "
गुणचन्द्र	" 991 "
लोकचन्द्र	" 1009 "

315 भक्तमरकथा - जैप्र, पृ 234

316 दसं, पृ. 1 वृत्ति.

317 मग्राजैस्मा, भूमिका पृ 20

318 जैहि, भा 4 अंक 7-8 पृ 30-31

319 इंडर से प्राप्त पट्टावली में लिखा है कि "इन्होंने दश वर्ष विहार किया था और वह स्थिर बनी थे।" --दिजै वर्ष 18 अंक 10 पृ 17-28

श्रुतकीर्ति

"1022"

भावचन्द्र

"1037"

महीचन्द्र

"1058"

आपके संघ में दिग मुनियों की संख्या अधिक थी और आपके धर्मोपदेश के द्वारा धर्म प्रभावना विशेष हुई थी।<sup>320</sup>

इनकी उपाधिय 'त्रिविधविद्येश्वर रक्षयाकरणभासकर महाभद्रलाघार्यतर्कवागीश्वर' थी। इनके विहारद्वारा खूब प्रभावना हुई।<sup>321</sup>

उपरान्त परमार राजाओं के समये में दिगम्बरमुनि

मालवा के परमार राजाओं में विन्ध्यवर्मा का नाम भी उल्लेखनीय है। इस राजा के राजकाल में प्रसिद्ध जैन कवि आशारधर ने ग्रन्थरचना की थी और उस समय कई दिगम्बर मुनि भी राजसम्मान पाये हुये थे। इनमें मुनि उदयसेन और मुनि मदनकीर्ति उल्लेखनीय हैं। मुनि मदनकीर्ति ही विन्ध्यवर्मा के पुत्र अर्जुनदेव के राजगुरु मदनोपाध्याय अनुमान किये गये हैं। इन्हें और मुनि विशालकीर्ति, मुनि विन्ध्यचन्द्र आदि को कविकर आशारधर ने जैन सिद्धान्त और साहित्य ज्ञान में निपुण बनाया था। नालंदा उस समय जैन धर्म का केन्द्र था।<sup>322</sup>

श्वेताम्बर ग्रन्थ "द्युतुविंशति प्रबन्ध" में लिखा है कि उज्जैनी में विशालकीर्ति नामक दिगम्बराचार्य के शिष्य मदनकीर्ति नाम के दिगम्बर साधु थे। उन्होंने वादियों को पराजित करके 'महाप्रमाणिक' पदवी पाई थी और कर्णाटक देश में जाकर विजयपुर नरेश कुन्तिभोज के दरबार में आदर पाया था और अनेक विद्वानों को पराजित किया था, किन्तु अन्त में वह मुनिपद से भ्रष्ट हो गए थे।<sup>323</sup>

गुजरात के शासक और दिगम्बर मुनि

मालवा के अनुरूप गुजरात भी दिगम्बर जैन मुनियों का केन्द्र था। अकलेश्वर में भूतबलि और पुष्पदन्ताचार्य ने दिगम्बर आगम ग्रन्थों की रचना की थी। गिरि नगर के निकट की गुफाओं में दिगम्बर मुनियों का सघ प्राचीन काल में रहता था। भृगुकच्छ भी दिगम्बर जैनों का केन्द्र था।

गुजरात में चालुक्य, राष्ट्रकूट आदि राजाओं के समय में दिगम्बर जैनधर्म उन्नतशील था। सोलंकीयों की राजधानी अणहिलपुरपट्टन में अनेक दिगम्बर मुनि थे। श्रीचन्द्र मुनि ने वहीं गन्थ रचना की थी।<sup>324</sup> योगचन्द्र मुनि<sup>325</sup> और मुनि कनकामर भी शायद गुजरात में हुए थे। ईडर के दिगम्बर साधु प्रसिद्ध थे।

320 दिजै, वर्ष १४ अंक १० पृ १६-२४

321 पूर्व

322 भांगारा, भाग १ पृ १५७ व सागर भूमिका पृ ६

323 जैहि, भा ११ पृ ४८५

324 वीर वर्ष १ पृ ६३७

325 वीर, वर्ष १ पृ ६३८

सौमिकी सिद्ध राजा ने एक वाद समझ कराई थी, जिस में भाग लेने के लिये कर्णाटक देश से कुमुदचन्द्र नामक एक दिगम्बर जैनाचार्य आये थे। दिगम्बरचार्य नग्न ही यात्रा में आये थे। सिद्धराज ने उनका बड़ा अपमान किया था। देवसुरि नामक भवेताम्बराचार्य से उनका वाद हुआ था।<sup>326</sup> इस उल्लेख से स्पष्ट है कि उस समय भी दिगम्बर जैनों का गुजरात में बलवत् महत्त्व था कि शासक राजकुल का भी ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ था।

### दिगम्बराचार्य ज्ञानभूषण

गुर्जर, सौराष्ट्र आदि देशों में जिनधर्म का प्रचार श्री दिगम्बर भट्टारक के ज्ञानभूषण जी द्वारा हुआ था। अहीरदेश में उन्होंने पेलकपथ धारण किया था और कावखदेश में महाव्रतों को उन्होंने अंगीकार किया था। विहार करते हुये वह कर्णाटक, तौलव, तिल्ला, द्राविड, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, रायदेश, भेवपाट, मालव भेवात कुरुजांमल, तुरुव, विराटदेश, नमियाहदेश, टग, राट, नाग, चोल आदि देशों में विचरे थे। तौलखदेश के महावादीश्वर विद्रज्जनों और चक्रवर्तियों के मध्य उन्होंने प्रतिष्ठा पाई थी। तुरखदेश में षट्दर्शन के साताओं का गर्व उन्होंने नष्ट किया था। नमियाह देशों में जिनधर्म प्रचार के लिए नौ हजार उपदेश को उन्होंने निर्युक्त किया था। दिल्ली पट्ट के वह सिंहासनाधीश थे। धीदेवराय राज, मुदिपालराय, रामनाथराय, बोरमरसराय, कलपराय, पाण्डुराय आदि राजाओं ने उनके घरणों की बन्दना की थी।<sup>327</sup>

### दिगम्बर जैनाचार्य श्री शुभचन्द्र

श्री ज्ञानभूषण जी के प्रशिष्य श्री शुभचन्द्राचार्य भी दिगम्बर मुनि थे। उनका पट्ट भी दिल्ली में रखा था। उन्होंने भी विहार करते हुये गुजरात के वादियों का मद नष्ट किया था। वह एक अद्वितीय विद्वान और वादी थे। अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। पट्टावली में उनके लिये लिखा है कि "वह ह्रन्द अलकारादिशास्त्र-समुद्र के पारगामी, शुद्धात्मा के स्वरूप चिन्तन करने ही से निद्रा को विनिष्ट करने वाले, सब देशों में विहार करने से अनेक कल्याणों को पाने वाले, विवेक, विचार, द्युस्तता, गम्भीरता, धीरता, वीरता और गुणगण के समुद्र, उत्कृष्ट पात्र वाले, अनेक छात्रों का पालन करने वाले, सभी विद्वत्समण्डली में सुशोभित शरीर वाले, गीड़वादियों के अन्धकार के लिये सूर्य के से, कल्पावादियों स्त्री मेघों के लिए वायु के से, कर्णाटवादियों के प्रथम वचन खण्डन करने में पुरम समर्थ, पूर्ववादी स्त्री माता के लिए सिंह के से, तौलवादियों की विहम्बना के लिए वीर, गुर्जर वादिरूपी समुद्र के लिए अगस्त्य के से, मालववादियों के लिये मस्तकशूल, अनेक अभिमानियों के गर्व का नाश करने वाले, स्वसमय तथा परसमय के शास्त्रार्थ को जानने वाले और महाव्रत अंगीकार

326 विकी, भा ४ पृ १०५

327 जैसिमा, भाग २ किरण ४ पृ ४८-४९

करने वाले थे।" 328

वाराणस नर विगम्बर संघ

उज्जैन के उपरान्त दिगम्बर मुनियों का केन्द्र विन्ध्याधन पर्वत के निकट स्थित वाराणस नामक स्थान हो गया था। 329 वारा एक प्राचीन काल से ही जैनधर्म का गूढ था। आठवीं या नवीं शताब्दि में वहां श्री पद्मनन्दि मुनि ने 'जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति' की रचना की थी। इस ग्रन्थ की प्रशस्ति में लिखा है कि "वाराणस में शान्ति नामक राजा का राज्य था। वह नगर धनधान्य से परिपूर्ण था। सम्यग्दृष्टि जनों से, मुनियों के समूह से और जैन मन्दिरों से विभूषित था। राजा शान्ति जिनशासनवत्सल, वीर और नरपति सम्पूजित था। श्री पद्मनन्दि जी ने अपने गुरु व अन्यरूप इन दिगम्बर मुनियों का उल्लेख किया है वीरनन्दी 330, बलनन्दि, ऋषिद्विजयगुरु, माघनन्दि, सकलघनन्दि और श्रीनन्दि। इन्हीं ऋषियों की शिष्य परम्परा के उपरान्त वाराणस में निम्नलिखित दिगम्बराचार्यों का अस्तित्व रहा था - 331

328 जैसिभा, भा. १ कि पृ ४६-५० -

"हन्दोलकारादि शास्त्रसम्पत्तिपार प्राप्ताना, शुद्धधिदुपचिन्तन विनाशिनिद्राणा, सर्वदेशविहारावाप्तानेकभद्राणा, विवेकविद्यार चतुर्थ्य गाम्भीर्यैर्धैर्यवीर्यगुणागणसमुद्राणा, उत्कृष्टपात्राणां, पालितानेकशब्दात्राणां, विहितानेकोत्तमपात्राणम् सकलविद्विज्जनसभाशोभितात्राणां, गौड्यादितम सूर्य, कलिडवादिजलदसदागति, कर्णाटवादिप्रथमवचन खण्डनसमर्थ, पूर्ववादि मत्तमातहमुगेन्द्र, नीलवादिविडम्बनवीर, गुर्जर वादिसिन्धुकुम्भोद्व, मालवादिमस्तकशूल, जितानेका खर्वगर्वत्राटन व्रजाधराणा, ज्ञानसकल स्वसमयपरसमय शात्रार्थानां, अर्काकृतबहावताताम।"

329 IA, XX 353-354

330 "सिरिनिलओ गुणसहिओ रिसिविजय गुरुत्ति विक्खाओ।"

"तव संजमसंपण्णो विक्खाओ माघनन्दिगुरु।"

"णवणियमसीलकलियो गुणवत्तो सयलघन्द गुरु।"

"तस्सेव व वरसिम्सो णिमलवरणणवरण संजुत्तो।

सम्मदसणसुद्धो सिरिणदिगुरुत्ति विक्खाओ। १५६।।

"पंचाचार समगो हज्जौवदयावरो विगट मोहो।"

हरिस-विसाव-विहण णणेण य वीरणदित्ति। १५६।।

"सम्मत्त अभिगटमणो णणेण तह दंसणे वरित्ते य।

परततिणियत्रमणे बलणदि गुरुत्ति विक्खाओ। १६१।।

तवणियमजोगजुत्तो उज्जुत्तो णणदसण वरित्ते।

आरम्भकरण रहियो णणेण य पठ मणदीत्ति। १६०।।

"सिरि गुरुविजय सयासे सोऊण आगम सुणिरिसुद्ध।"

"जिणसासणवट्ठको वीरो-णरवह संपूजिओ - वाराणाथस्स पहु णरोत्तोखत्ति भूपालो सम्मादिट्ठजोणे मुणिगणणिवहेहि महियं रम्मे"। इत्यादि। - जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, जैसा सं, भाग १ अंक ४ पृ १५०

331 जैहि, भा ६ अंक ७-८ पृ ३१ व।A XX 354

नारायणन्द	सन् 1083
ब्रह्मनन्द	" 1087
शिवनन्द	" 1091
विश्वचन्द्र	" 1098
हरिनन्द ( सिद्धनन्द )	" 1099
भावनन्द	सन् 1103
देवनन्द	" 1110
विद्याचन्द्र	" 1113
सूरचन्द्र	" 1119
माधनन्द	" 1127
ज्ञानन्द	" 1131
गणकीर्ति	" 1142

इन दिगम्बराचार्यों द्वारा उस समय मध्यप्रदेश में जैनधर्म का खूब प्रचार हुआ था।

वि स 1025 में अल्लू नामक राजा की सभा में दिगम्बराचार्य का वाद एक श्वेताम्बर आचार्य से हुआ था।<sup>332</sup>

### छन्देल राज्य में दिगम्बर मुनि

छन्देल राजा मदनवर्मदेव के समय ( 1130-1165 ई ) में दिगम्बर धर्म उन्नतरूप रहा था।<sup>333</sup> खजुराहों में घटाई के मन्दिर वाले शिलालेख से उस समय दिगम्बराचार्य नैमिचन्द्र का पता चलता है।<sup>334</sup>

तेरहवीं शताब्दी में अनन्त वीर्य नामक दिगम्बराचार्य प्रसिद्ध नैयायिक थे। उन्होंने वादियों को गतमद किया था।<sup>335</sup> इसी समय के लगभग एक गुणकीर्ति नामक महामुनि विशद धर्म प्रचारक थे। उन्हीं के उपदेश से प्रदमनाभ नामक काव्यरथ कवि ने 'यशोधर चरित्र' की रचना की थी।<sup>336</sup>

राजपूताना, मध्यप्रान्त बंगाल आदि देशों के शासक और दिगम्बर मुनि।

अजमेर के चौहान राजाओं में भी दिगम्बर जैनधर्म का आदर था। विजोलिया के श्री पार्श्वनाथ जी के मन्दिर को दिगम्बर मुनि पद्मनन्द और शुभचन्द्र के उपदेश से पृथ्वीराज ने माराकुरी गाव और सोमेश्वर राजा ने रेवाणनामक गाव भेंट किये थे।<sup>337</sup>

चित्तौर का जैन कीर्ति स्तम्भ वहा पर दिगम्बर जैन धर्म की प्रधानता का द्योतक है।

332 ADJB, p. 45

333 विको भा ६ पृ १६२।

334 विको भा पृ ६८०

335 ADJB, p 86

336 उपदेशेन ग्रन्थोऽयं गुणकीर्ति महामुने ।

काव्यरथ पद्मनाभेन रचित पूर्व सूत्रत ॥ - यशोधरा चरित्र ।

337 राइ, भा, १ पृ ३६३

सप्ताट कुमारपाल के समय यहा छाडी पर बहुत से दिगम्बर जैन ( मुनि ) थे ।<sup>338</sup>

दिगम्बर जैनाचार्य श्री धर्मचन्द्र जी का सम्मान और दिनव महाराणा कम्पौर किया करते थे ।<sup>339</sup>

झासी जिले का देवगढ नामक स्थान भी मध्यकाल में दिगम्बर मुनियों का केन्द्र था । वहां पांचवी शताब्दि से तेरहवीं शताब्दी तक का शिल्पकार्य दिगम्बर धर्म की प्रधानता का द्योतक है ।

ग्वालियर में कच्छपघाट ( कच्छवाहे ) और पडिहार राजाओं के समय में दिगम्बर जैनधर्म उन्नत रहा था । ग्वालियर किले की नानजैन मूर्तिया इस व्याख्या की साक्षी हैं । वारानगर के बाद दिगम्बर मुनियों का केन्द्रस्थान ग्वालियर हुआ था और वहां के दिगम्बर मुनियों में स 1296 के आचार्य रत्नकीर्ति प्रसिद्ध थे । वह स्याद्वादविद्या के समुद्र, बाल ब्रह्मचारी, तपसी और दयालु थे । उनके शिष्य नाना देशों में फैले हुये थे ।<sup>340</sup>

मध्यप्रान्त के प्रसिद्ध हिन्दू शासक कलचूरी भी दिगम्बर जैनधर्म के आश्रयदाता थे ।

बंगाल में भी दिगम्बर धर्म इस समय मौजूद था, यह बात जैन कथाओं से स्पष्ट है । 'भक्तानर कथा' में चम्पापुर का राजाकार्य जैनी लिखा है । भ महावीर की जन्मनगरी वंगाली का राजा लोकपाल जैनी था । पटना का राजा धात्रीवाहन श्रीशिवभूषण नामक मुनि क उपदेश से जैनी हुआ था । गौड देश का राजा प्रजापति बौद्धधर्मी था, परन्तु जैन साधु मतिसागर की वादशक्ति पर मुग्ध होकर प्रजासहित जैनी हुआ था ।<sup>341</sup> इस समय का जो जैन भिक्षु बंगाल आदि प्रांतों में मिलता है, उससे उक्त जैन कथाओं का समर्थन होता है । आजकल बंगाल में प्राचीन ध्राक्क 'सराक' लोगों का बड़ी सख्या में मिलना वहा पर एक समय दिगम्बर जैन धर्म की प्रधानता का द्योतक है ।

इस प्रकार मध्यकाल के हिन्दू राज्यों में प्राय समग्र उत्तर भारत में दि मुनियों का विहार और धर्म प्रचार होता था । अठवीं शताब्दी के उपरान्त जब दक्षिण भारत में दिगम्बरजैनों के साथ अत्याचार होने लग्ग, तो उन्होंने अपना केन्द्र स्थान उत्तरभारत की ओर बढ़ाना शुरू कर दिया था । उज्जैन, वारानगर, ग्वालियर आदि स्थानों का जैन केन्द्र होना, इस ही बात का द्योतक है । ईस्वी 9-10 शताब्दियों में जब अरब का सुलेमान नामक ब्रात्री भारत में अग्या तो उसने भी यहा नंगे साधुओं को एक बड़ी सख्या में देखा था<sup>342</sup> साराशत. मध्यकालीन हिन्दूकाल में दिगम्बर मुनियों का भारत में बाहुल्य था । ●

338 "It ( जैन कीर्तिस्तम्भ ) belongs to the Digambar Jains, many of whom seem to have been upon the Hill in Kumarpal's time" --- मराजैन्मा , पृ १३५

339 "श्रीधर्मचन्द्रोऽजनितास्यपट्टे हवीर भूपाल समवनीयः ।" जैहि - भा , ६ अंक ७-८ पृ २६ ।

340 जैहि , भा ६ अंक ७-८ पृ २६

341 जैप्रा , पृ २४०-२४३

342 "In India there are persons, who, in accordance with their profession, wander in the woods and mountains and rarely communicate with the rest of mankind some of them go about naked "

----- Sulaiman of Arab, Elliot , I p 6

## भारतीय संस्कृत-साहित्य में दिगम्बर मुनि ।

"पाणिः पात्रं पवित्रं भक्षणपरिष्कृतं भिक्षावधारणद्वयम्  
विस्तीर्णा वस्त्रमाशा सुदृश कमलं तल्पपद्मलपुर्वी ॥  
देवां निः संग तांभी करणपरिष्कृतिः स्वात्मसन्तोषितास्ते ।  
धन्याः सन्धस्त दैव्यव्यतिकरविकाराः कर्मनिर्मूलयन्ति ॥"

- वैराग्यशतक ।

भारतीय संस्कृत साहित्य में भी दिगम्बर मुनियों के उल्लेख मिलते हैं। इस साहित्य से हमारा मतलब उस सर्वसाधारणोपयोगी संस्कृत साहित्य से है, जो किसी खास सम्प्रदाय का नहीं कथा जा सकता। उदाहरणतः कविवर भर्तृहरि के शतकत्रय को लीजिये। उनके 'वैराग्यशतक' में उपरोक्त श्लोक द्वारा दिगम्बर मुनि की प्रशंसा इन शब्दों में की गई है कि "जिनका हाथ ही पवित्र बर्तन है, माग कर लाई हुई भिक्षा ही जिनका भोजन है, दशों दिशाओं ही जिनके वस्त्र हैं, सम्पूर्ण पृथ्वी ही जिनकी शय्या है, एकान्त में निःसंग रहना ही पसंद करते हैं, दीनता को जिन्होंने छोड़ दिया है तथा कर्मों को जिन्होंने निर्मूल कर दिया है और जो अपने में ही सतुष्ट रहते हैं, उन पुरुषों को धन्य है।" 343 आगे इसी 'शतक' में कविवर दिगम्बर मुनिवत् धर्या करने की भावना करते हैं:-

अशीमदिव्य भिक्षामाशा वासोवसीमहि ।  
श्री मदि नही पृष्ठे कुर्वामहि किनीधरेः ॥ 90 ॥

अर्थात् - "अब हम भिक्षा ही करके भोजन करेंगे, दिशा ही के वस्त्र धारण करेंगे अर्थात् नग्न रहेंगे और भूमि पर ही शयन करेंगे। फिर भला हमें धनवानों से क्या मतलब?" 344

इस प्रकार के दिगम्बर मुनि को कवि क्षमादि गुणलौन अभय प्रकट करते हैं:-

धैर्यं वस्व पिता क्षमा च जननी शान्तिरचिरगे द्विबी ।  
सत्त्वं मित्रमिदं दया च भगिनी धातानन सवमः ॥  
शटया भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनम् ।  
हयेते वस्वकुटंविनो यद सखे कस्माद्भवं योगिनः ॥ 98 ॥

अर्थात् - "धैर्य जिसका पिता है, क्षमा जिसकी माता है, शान्ति जिसकी स्त्री है, सत्य जिसका मित्र है, दया जिसकी बहिन है, संकम किया हुआ मन जिसका भाई है, भूमि

343 वैज, पृ ४६

344 वैज, पृ ४७

जिसकी शय्या है, दसों दिशाये ही जिसके कसत्र हैं और खानाभूत ही जिसका भोजन है- यह सब जिसके कुटुंबी हों भला उस योगी पुरुष को किसका भय हो सकता है ?<sup>345</sup>

'वैराग्यशतक' के उपरोक्त श्लोक स्पष्टतया दिगम्बर मुनियों का लक्ष्य करके लिखे गये हैं। इन्में वर्णित सबही लक्षण जैन मुनियों में मिलते हैं।

'मुद्राराक्षस' नाटक में क्षणक, जीवसिद्धिक पाट दिगम्बर मुनि का द्योतक है।<sup>346</sup> वहा जीवसिद्धि के मुख से कहलाया गया है कि-

"सासणमसिद्धंतामं पडियज्जदि मोहवादि वेज्जणां।

जेमुत्तमात्तकहुअं पच्छापत्वं मुपदिसन्ति ॥ 18 ॥ 4 ॥"

अर्थात् - "मोहरूपी रोम के झुलाज करने वाले अर्हंतों के ज्ञासन को स्वीकार करो, जो मुकुट मात्र के लिये कहते हैं, किन्तु पीछे से पथ्य का उपदेश देते हैं।"

इस नाटक के पांचवे अंक में जीवसिद्धि कहता है कि-

"असहताण पण्णामि जेहेमंभीलदाप बुद्धीप।

लोउत लेहिं लोप सिद्धि मग्गेहि पच्छन्दि ॥ 2 ॥"

भावार्थ - "ससार में जो बुद्धि की गभीरता से लोकातीत (अलौकिक) मार्ग से मुक्ति को प्राप्त होते हैं, उन अर्हन्तों को मैं प्रणाम करता हूँ।"<sup>347</sup>

'मुद्राराक्षस' के इस उल्लेख से नन्दकाल में क्षणकत्र दिगम्बर मुनियों के निर्वाध विहार और धर्मप्रचारका समर्थन होता है, जैसे कि पहले लिखा जा चुका है।

'वराहमिहिर सहिता' में भी दिगम्बर मुनियों का उल्लेख है। उन्हें वहा जिन भगवान का उपासक बतलाया है।<sup>348</sup> बराहमिहिर के इस उल्लेख से उनके समय में दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व प्रमाणित होता है। अर्हत् भगवान की मूर्ति को भी वह नम्र ही बताते हैं।<sup>349</sup>

कवि दण्डिन् (आठवीं श) अपने "दशकुमार चरित में (दिगम्बर मुनि का उल्लेख 'क्षणक' नाम से करते हैं, जिससे उनके समय में नग्नमुनियों का होना प्रमाणित है।<sup>350</sup>

'पद्यतन्त्र' (तन्त्र 4) का निम्न श्लोक उस काल में दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व का द्योतक है -<sup>351</sup>

345 केजै, पृ ४७

346 HDW, p.10

347 केजै, पृ ४०-४१

348 "शाक्यान् सर्वहितस्य शान्ति मनसो नग्नान् जिनाना विदु "

349 "अजानु लम्बयाहु, श्रीवत्साग प्रशान्तमूर्तिश्च।

दिग्वासास्तस्णो स्पवांश्च कार्योऽर्हंतो देव ॥१४५॥१५८॥

-- वराहमिहिर सहिता।

350 वीर, वर्ष २ पृ ३१७

351 पत. निर्णयसागर प्रेस स १९०२ पृ १६४ - JG XIV 124

"हरीशुभ्रं शम्भुपुत्रं जज्ञीषुः सर्वान् सम्पन्नं करोति ।  
 ये मुखाः प्रक्षिप्य प्राणिं हृदिषुः किञ्च कदाचिदपि ॥  
 ते तमेव निहत्य निर्दोषतरं नान्मोक्षतां मुचिषताः ॥  
 केचिद्वक्तृपदीकृतान्ध जटिलः का पालिकाश्चापरे ॥"

"पद्यतन्त्र" के अपरौचित्यकारक पद्यतन्त्र की कथा दिगम्बर मुनियों से सम्बन्ध रखती है। उससे पाटलिपुत्र (पटना) में दिगम्बर धर्म के अस्तित्व का बोध होता है। कथा में एक नाई को क्षपणक विहार में जाकर जिनेन्द्रभगवान् की कन्दना और प्रदक्षिणा देते लिखा है। उसने दिगम्बर मुनियों को अपने यहाँ निमन्त्रित किया, इस पर उन्होंने आपत्ति की कि ध्रावक होकर यह क्या कहते हो ब्राह्मणों की तरह यहाँ आमन्त्रण कैसा ? दि. मुनि तो आहा वेला पर घूमते हुये भक्त ध्रावक के यहा भुद्ध भोजन मिलने पर विधिपूर्वक ग्रहण कर लेते है।<sup>352</sup> इस उल्लेख से दिगम्बर मुनियों के निमन्त्रण स्वीकार न करने और आहार के लिये भ्रमण करने के नियम का समर्थन होता है। इस तन्त्र में भी दिगम्बर मुनि को एकाकी, गृहत्यागी, पाणिपात्र भोजी और दिगम्बर कहा है।<sup>353</sup>

"प्रबोधचन्द्रोदयनाटक" अंक 3 में निम्नलिखित वाक्य दिगम्बर जैन मुनि को तत्कालीन बाहुल्यता के बोधक हैं -

"सहि पेक्ख पेक्ख एसो गलणतकल पक पिच्छिलवीहच्छदेहच्छयी उल्लुघि अचिउरो मुक्कवसवेसदुद्धरणो सिहिसिहटपिच्छआहत्थो इयोज्जेव पडिवहदि ।"

भावार्थ - "हे सखि देख देख, वह इस ओर आ रहा है। उसका शरीर भयकर और मलाच्छन्न है। शिर के बाल लुत्जित किये हुए हैं और वह नगा है। उमक हाथ में मोरपिच्छिका है और वह देखने में अमनोज्ञ है।"

इस पर उस सखी ने कहा कि-

"आ ज्ञात मयाख् महामोहप्रवर्तितोडय दिगम्बर सिद्धात ।"

भावार्थ - "मैं जान गई। यह महामोह द्वारा प्रवर्तित दिगम्बर (जैन) सिद्धान्त है।" (क्षपणकक्षेप में दिगम्बर मुनि ने वहा प्रवेश किया।)<sup>354</sup>

नाटक के उक्त उल्लेख से इस बात का भी समर्थन होता है कि दिगम्बर मुनि रित्रयों के सम्मुख घरों में धर्मोपदेश के लिये पहुँच जाते थे।

352 "क्षपणकविहार गत्वा जिनेन्द्रस्य प्रदक्षिणग्रवं विधाय ।

"भो ध्रावक, धर्मज्ञोऽपि किमेवं वदसि। किं यत् ब्राह्मणसमाना यत्र आमन्त्रणं करोति। क्व सदैव तत्काल परिचयया धमन्तो भक्तिभाजं ध्रावकमवलोक्य तस्य गृहे गच्छाम ।"

पंत पृ २-६ व JG XIV 126 - 130

353 "एकाकीगृहसंत्यक्त पाणिपात्रो दिगम्बर ।"

354 प्रबोध चन्द्रोदय नाटक अंक ३ -- JG., XIV pp. 46-50

“गोलाध्याय” नामक ज्योतिष ग्रन्थ में दिगम्बर मुनियों की दो सूर्य और दो चन्द्रादि विषयक भ्रान्तता का उल्लेख करके उसका निरसन किया गया है। इस उल्लेख से ‘गोलाध्याय’ के कर्ता के समय में दिगम्बर मुनियों का बाहुल्य प्रमाणित होता है। ‘गोलाध्याय’ के टीकाकार लक्ष्मीदास दिगम्बर सम्प्रदाय से भाव “जैनों” का प्रकट करते हैं और कहते हैं कि “जैनों में दिगम्बर प्रधान थे।”<sup>355</sup>

संस्कृत साहित्य के उपरोक्त उल्लेखों से दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व और उनके निर्बाध विहार और धर्म प्रचारकरने का समर्थन होता है।

---

355 (Goladhyaaya 3, Verses 8-10) -- The naked sectarians and the rest affirm that two sunns, two moons and two sets of stars appear alternately, against them I allege this reasoning How absurd is the notion which you have formed of duplicate suns, moons, and stars, when you see the revolution of the polar fish (Ursa Minor) ' The commentator Lak shamidas agree that the Jainas are here meant & remarks that they are described as 'naked sectarians' etc because the class of Digambaras is a principal one among these people " -- AR, Vol IX p 317

## दक्षिण भारत में दिगम्बर जैन मुनि ।

"सरसा पयसा विवतेनाति सुधकज्जिण व ।  
जिनजन्मादिकस्वणक्षिने तीर्थव्याप्तिने ॥ 40 ॥  
नाजमेष्वति सद्दमो वारवीर मदच्छिदः ।  
स्वास्वतीह वचचित्तप्रान्ते विजये दक्षिणादिक्के ॥ 41 ॥

- श्री भद्रबाहुबलिः ।

दिगम्बर जैन धर्म दक्षिण भारत में रहना निश्चित है ।

दिगम्बर जैनधर्माचार्य, राजा चन्द्रगुप्त ने जो स्वप्न देखा उसका फल बताते हुये कह मयै है कि "जल्परहित तथा कहीं खोटे जल भरे हुये सरोवर के देखने से यह तथ जानों कि जहां तीर्थकर भगवान के कल्याणादि हुये हैं तो ऐसे तीर्थस्थानों में काम देव के मद का हस्तन करने वाला उत्तर जिन धर्म नाश को प्राप्त होगा तथा कहीं दक्षिणादि देश में कुछ रहेगा भी" 356 और दिगम्बराचार्य की यह भविष्यवाणी करीब करीब ठीक ही उतरी है । जबकि उत्तर भारत में कभी-कभी दिगम्बर मुनियों का अभाव भी हुआ, तब दक्षिण भारत में आजतक बराबर दिगम्बर मुनि होते आये हैं । और दिगम्बर जैनों के श्री कुन्दकुन्दादि बड़े-बड़े आचार्य दक्षिण भारत में ही हुये हैं । अतः दक्षिण भारत को दिगम्बर मुनियों का गढ़ कहना बेजा नहीं है ।

### ऋषभदेव और दक्षिण भारत

अच्छा तो यह देखिये कि दक्षिण भारत में दिगम्बर मुनियों का सद्भाव जैनशास्त्र बनलाते हैं कि इस कल्पकाल में कर्मभूमि के आदि में श्री ऋषभदेव जी ने सर्व प्रथम धर्म का निरूपण किया था और उनके पुत्र बाहुबलि दक्षिण भारत के शासनाधिकारी थे । पौदनपुर उनकी राजधानी थी । भगवान् ऋषभदेव ही सर्वप्रथम वहा धर्मोपदेश देते हुये पहुँचे थे । 357 वह दिगम्बर मुनि थे, यह पहले ही लिखा जा चुका है । उनके समय में ही बाहुबलि भी राजपाठ छोड़कर दिगम्बर मुनि हो गये थे इन दिगम्बर मुनि की विशालकाय नग्न मूर्तिया दक्षिण भारत में अनेक स्थानों पर आज भी मौजूद हैं । श्रवणवेला मील में स्थित मूर्ति 57 फीट ऊँची अति मनोह्र है, जिसके दर्शन करने देश-विदेश के यात्री आते हैं । कारकेल-वेनूर आदि स्थानों में भी ऐसी ही मूर्तिया हैं । दक्षिण भारत में बाहुबलि मुनिराज की विशेष मान्यता है । 358

356. भद्र, पृ ३३

357 आदिपुराण

358. जैशिस, भूमिका पृ १७-३०

### अन्य तीर्थंकरों का दक्षिण भारत से सम्बन्ध

ज्ञानभेद के उपरान्त अन्य तीर्थंकरों के समय में भी दिगम्बर धर्म का प्रचार दक्षिण भारत में रहा था। लेखमें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ जी के तीर्थ में द्रुपे राज करकण्डुने आकर दक्षिण भारत के जैन तीर्थों की सन्धना की थी। मलय पर्वत पर राक्षसों के वंशजों द्वारा स्थापित तीर्थंकरों की विशाल मूर्तियों की भी उन्होंने सन्धना की थी।<sup>359</sup> वहाँ बाबुवलि की और श्री पार्श्वनाथजी की मूर्तियाँ थीं जिनकी रामचन्द्रजी ने स्तंभ से लाकर वहाँ स्थापित किया था। अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर ने भी अपने पुनीत चरणों से दक्षिण भारत को पवित्र किया था।<sup>360</sup> मलयपर्वतपर्वतों हेमगदेश में जब वीर प्रभु घुसुचे थे तो वहाँ का जीवन्धर नामक राजा उनके निकट दिगम्बर मुनि हो गया था।<sup>361</sup> इस प्रकार एक अत्यन्त प्राचीनकाल से दिगम्बर मुनियों का सन्दर्भ दक्षिण भारत में है।

### दक्षिण भारत के इतिहास के काल

किन्तु आधुनिक इतिहास केवल दक्षिण भारत का इतिहास ईसवी पूर्व छठी या चौथी शताब्दि से आरम्भ करते हैं और उसे निम्न प्रकार छ भागों में विभक्त करते हैं -<sup>362</sup>

- (1) प्रारम्भिक काल-ईसवी 5 वीं शताब्दि तक,
- (2) पल्लवकाल-ई 5 वीं से 9 वीं शताब्दि तक,
- (3) चोल अभ्युदय काल - ई. 9 वीं से 14 वीं शताब्दि तक,
- (4) विजयनगर साम्राज्य उत्कर्ष - 14 वीं से 16 वीं शताब्दि
- (5) मुसलमान और मरहट्टा काल - 16 वीं से 18 वीं शताब्दि
- (6) ब्रिटिश काल - 18 वीं से 19 वीं शताब्दि ई

दक्षिण भारत के उत्तर सीमावर्ती प्रदेश के इतिहास के छ भाग इस प्रकार हैं-

- (1) आन्ध्र काल-ई 5 वीं शताब्दि तक
- (2) प्रारम्भिक चालुक्य काल-ई 5 वीं से 7 वीं शताब्दी और राष्ट्रकूट 7 वीं शताब्दि
- (3) अन्तिम चालुक्य काल-ई 10 वीं से 14 वीं शताब्दि
- (4) विजयनगर साम्राज्य
- (5) मुसलमान-मरहट्टा
- (6) ब्रिटिश काल।

359 करकण्डु चरित् संधि ५

360. जैशिस, भूमिका पृ. 2६

361 भगवु., पृ. ६६

362 SAI, p 31

प्राग्भिः काले में विकसित हुए।

अब यह तो उपरोक्त ऐतिहासिक कालों में दिगम्बर जैन मुनियों के अस्तित्व को दक्षिण भारत में देख लेना चाहिये। दक्षिण भारत के "प्रारम्भिक काल" में चेर, चोल, पाण्ड्य-यह तीन राजवंश प्रधान थे।<sup>363</sup> सम्राट् अशोक के शिलालेख में भी दक्षिण भारत के इन राजवंशों का उल्लेख मिलता है।<sup>364</sup> चेर, चोल और पाण्ड्य यह तीनों ही राजवंश प्रारम्भ से जैन धर्मानुयायी थे।<sup>365</sup> जिस समय करकण्ठ राज सिंहल द्वीप से लौटकर दक्षिण भारत - द्राविड देश में पहुँचे तो इन राजाओं से उनकी मुठभेड़ हुई थी। किन्तु रणक्षेत्र में जब उन्होंने इन राजाओं के मुकुटों में जिनेन्द्र भगवान् की मूर्तियाँ देखीं तो इनसे सन्धि करली।<sup>366</sup> कर्लिङ्गधकवर्ती ऐलम्बारयेल जैन थे। उनकी सेवा में इन राजाओं में से पाण्ड्यराजने स्वतः राज-भेंट भेजी थी।<sup>367</sup> इससे भी इन राजाओं का जैन होना प्रमाणित है, क्योंकि एक ध्राक्क का ध्राक्क के प्रति अनुराग होना स्वाभाविक है। और जब वे राजा जैन थे तब इनका दिगम्बर जैन मुनियों को आश्रय देना प्राकृत आवश्यक है।

पाण्ड्यराज उपपेस्कलूटी (128-140 ई.) के राजदरबार में दिगम्बर जैनाचार्य श्री कुन्दकुन्द विरचित तामिलग्रन्थ "कुरल" प्रगट किया गया था।<sup>368</sup> जैन कथाग्रन्थों से उस समय दक्षिण भारत में अनेक दिगम्बर मुनियों का होना प्रगट है। "करकण्ठ चरित्" में कर्लिग, तेर, द्रविड आदि दक्षिणवर्ती देशों में दिगम्बर मुनियों का वर्णन मिलता है। महावीर ने सघसहित इन देशों में विहार किया था, यह उपर लिखा जा चुका है। तथा मौर्यचन्द्रगुप्त के समय भुतकेवली भद्रवाहु का संग सहित दक्षिण भारत को जाना इस बात का प्रमाण है कि दक्षिण भारत में उनसे पहले दिगम्बर जैन धर्म विद्यमान था। जैनग्रन्थ "राजावली कथा" में वहा दिगम्बर जैन मन्दिरों और दिगम्बर मुनियों के होने का वर्णन मिलता है। बौद्धग्रन्थ गणिमेखलै में भी दक्षिण भारत में ईस्वी की प्रारम्भिक शताब्दियों में दिगम्बर धर्म और मुनियों के होने का उल्लेख मिलता है।<sup>369</sup>

363 SAI, p 33

364 त्रयोदश शिलालेख

365 "Pandya Kingdom can boast of respectable antiquity The prevailing religion in early times in their Kingdom was Jain creed "

---- मजैस्मा, पृ १०५

366 "तहि अत्थि विकितिय दिणसरुउ-संघल्लिउ ताकरकण्ठु राउ।

ता दिविददेसुमहि अल्लु भमन्तु --संपत्ताउ तहि म्हास्सवहन्तु।।

तहि छोटे घोर पण्डिय पिवाई -- केणा विस्सण्ट्ते मिलीयाहि।"

"करकण्ठप धरिवाते सिरसो सिरमउड मत्तिस्स वरणेहि तहो।

मउडु महि देखिहि जिणपणिव करकण्ठवोजायउ वहुलु दुहु।।१०।।

--- करकण्ठुवरित सन्धि ८

367 J.BORS., III p 446

368 मजैस्मा, पृ १०५

369 SSIJ, pp 32-33

"श्रुतावतार कथा" से स्पष्ट है कि ईस्वी की पहली शताब्दि में पश्चिम और दक्षिण भारत दिगम्बर जैन धर्म के केन्द्र थे। श्री धरसेनाचार्य जी का संघ गिरनार पर्वत पर उस समय विद्यमान था। उनके पास आगमग्रन्थों को अन्वेषण करने के लिये दो तीक्ष्ण-बुद्धि शिष्य दक्षिण मथुरा से उनके पास आए थे और उपरान्त उन्होंने दक्षिण मथुरा में चातुर्मास व्यतीत किया था। इस उल्लेख से उस समय दक्षिण मथुरा का दिगम्बर मुनियों का केन्द्र होना सिद्ध है।<sup>370</sup>

"नालदियार" और दिगम्बर मुनि

तामिल जैनकाव्य "नालदियार", जो ईस्वी पांचवीं शताब्दि की रचना है, इस बात का प्रमाण है कि पाण्ड्यराज का देश प्राचीन काल में दिगम्बर मुनियों का आश्रय-स्थान था। स्वयं पाण्ड्यराज दिगम्बर मुनियों के भक्त थे। "नालदियार" की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि एक दफा उत्तर भारत में दुर्भिक्ष पड़ा। उससे बचने के लिये आठ हजार दिगम्बर मुनियों का सघ पाण्ड्यदेश में जा रहा। पाण्ड्यराज उन मुनियों की विद्वत्ता और तपस्या को देखकर उनका भक्त बन गया। जब अच्छे दिन आये तो इस संघ ने उत्तर भारत की ओर लौट जाना चाहा, किन्तु पाण्ड्यराज उनकी सत्सगति छोड़ने के लिये तैयार न थे। आखिर उस मुनिसघ का प्रत्येक साधु एक-एक श्लोक अपने-अपने आसन पर लिखा छोड़कर विहार कर गये। जब ये श्लोक एकत्र किये गये तो वह संग्रह एक अच्छा खासा काव्यग्रन्थ बन गया। यही "नालदियार" था।<sup>371</sup> इससे स्पष्ट है कि पाण्ड्यदेश उस समय दिगम्बर जैन धर्म का केन्द्र था और पाण्ड्यराज कल्मषवश के सम्राट् थे। यह कल्मषवश उत्तर भारत से दक्षिण में पहुंचा था और इस वंश के राजा दिगम्बर मुनियों के भक्त और रक्षक थे।<sup>372</sup>

गगवंश के राजा और दिगम्बर मुनिगण

ईस्वी दूसरी शताब्दि में मैसूर में गगवशी क्षत्रीराजा साधव कोंगुणिवर्मा राज्य कर रहे थे।<sup>373</sup> उनके गुरु दिगम्बर जैनाचार्य सिंहनन्दि थे। गगवशी की स्थापना में उक्त आचार्य का गहरा हाथ था। शिलालेखों से प्रकट है कि इक्ष्वाकु (सूर्यवंश) के राज धनज्जय की सन्तति में एक गगदत्त नाम का राजा प्रसिद्ध हुआ और उसी के नाम से इस वंश का नाम गग वंश पड़ा था। इस गगवंश में एक पद्मनाभ नामक राजा हुआ, जिसका झगडा उज्जैन के राजा महीपाल से होने के कारण वह दक्षिण भारत की ओर चला गया था।

370 श्रुता., पृ १६-२०

371 SSIJ, p 91

372 गजैस्मा, भूमिका पृ ८-९

373 रश्मा, परिचय, पृ १६५

उसके दो पुत्र ददिग और माधव भी उसके साथ गये थे। दक्षिण में पेश्वर नामक स्थान पर उन दोनों भाइयों की भेंट कण्ठगण के आचार्य सिद्धनन्दि से हुई जिन्होंने उन्हें निम्न प्रकार उपदेश दिया था:-

"यदि तुम अपनी प्रतिष्ठा भंग करोगे, यदि तुम जिनिशासन से हटोगे, यदि तुम पर-स्त्रीका ग्रहण करोगे, यदि तुम माद्य व मांस खाओगे, यदि तुम अश्रमों का संस्पर्श करोगे, यदि तुम आवश्यकता रखने वालों को दान न दोगे और यदि तुम युद्ध में भाग जाओगे तो तुम्हारा बंध नष्ट हो जायगा।"<sup>374</sup>

दिगम्बरशास्त्रियों के इस सलाहस बढाने वाले उपदेश को ददिग और माधव ने शिरोधार्य किया और उन आचार्यों के सङ्घयोग से वह दक्षिण भारत में अपनी राज्य स्थापित करने में सफल हुये थे। उपरान्त इस वंश के सभी राजाओं ने जैन धर्म का प्रभाव बढाने का उद्योग किया था। दिगम्बर जैनाचार्य की कृपा से राज्य पा लेने की बादवशत में इन्होंने अपनी ध्वजा में "नोरपिट्टिकका" का चिन्ह रक्खा था, जो दिगम्बर मुनियों के उपकरणों में से एक है।

गगवशी अविनीत कोणुणी (सन् 425-478) ने पुन्नाट 10000 में जैनमुनियों को भूमिदान दिया था। गगवशी दुर्वनीतिके गुरु "शब्दावतार के कर्ता दिगम्बरचार्य श्री पूज्यपाद थे।<sup>375</sup>

कादम्बर राजागण दिगम्बर मुनियों के रक्षक थे

महाराष्ट्र और कोन्कन देशों की ओर उस समय कादम्बरवंश के राजा लोग उन्नत हो रहे थे। यह वंश (1) गोआ और (2) बनवासी, ऐसे दो शाखाओं में बँटा हुआ था और इसमें जैनधर्म की मान्यता विशेष थी। दिगम्बर गुरुओं की विनय कादम्बरराजा खूब करते थे। एक विद्वान् लिखते हैं कि -

"Kadamba kings of the middle period Mrigesa to Harivarma were unable to resist the onset of Jainism, as they had to bow to the "Supreme Arhats" and endow lavishly the Jain ascetic groups. Numerous sects of Jaina priests, such as the Yapiniyas, the Nirgranthas and the Kurchakas are found living at Palasika. (IA VII 36-37), Again Svetpatas and Aharashti are also mentioned (Ibid VI 31) Banavase and Palasika were thus crowded centres of powerful Jain monks. Four Jaina Mss named Jayadhavala, Vijaya Dhavala, Atidhavala and Mahadhavala written by Jaina Gurus Virasena and Jinasena living at Banavase during the rule of the

374. मज्जेस्य, पृ १४६-१४७

375. मज्जेस्य, पृ १४६

early Kadambas were recently discovered."

- Q.J.M.S. XXII. 61-62

अर्थत् - "मध्यकाल के मृगेश से हरिवर्मा तक कदम्ब वंशी राजागण जैन धर्म से अपने को बचा न सके। "महान् अर्हतदेव" को नमस्कार करते और जैन साधु संघों को खूब दान देते थे। जैन साधुओं के अनेक संघ जैसे वापनीव<sup>376</sup> निगन्ध<sup>377</sup> और कूर्चक<sup>378</sup> ब्रह्मन्वों की राजधानी पालाशिक में रह रहे थे। श्वेतपट<sup>379</sup> और अहराष्टि<sup>380</sup> संघों के बहा होने का उल्लेख भी मिलता है। इस तरह पालाशिक और बनवासी सबल जैन साधुओं से वेष्टित मुख्य जैनकेन्द्र थे। दिगम्बर जैन गुरु वीरसन और जिन्सेन ने जिन् जक्यधवल, विजक्यधवल, अतिक्यधवल और महाधवल नामक ग्रंथों की रचना बनवासी में रहकर प्रारंभिक कदम्ब राजाओं के समय में की थी, उन चारों ग्रंथों की प्रतिया हाल की में उपलब्ध हुई है।"

प्रो श्लेगिरि राउ उन प्रारंभिक कदम्बों को भी जैन धर्म का भक्त प्रगट करते हैं। उनके राज्य में दिगम्बर जैन मुनियों को धर्मप्रचार करने की सुविधाये प्राप्त थी।<sup>381</sup> इस प्रकार कदम्बवंशी राजाओं द्वारा दिगम्बर मुनियों का समुचित सम्मान किया गया था।

पल्लवकाल में दिगम्बर मुनि।

एक समय पल्लववंश के राजा भी जैन धर्म के रक्षक थे। सातवीं शताब्दि में जब हेन्साग इस देश में पहुँचा तो उसने देखा कि बहा दिगम्बर जैन साधुओं (निग्रन्थों) की संख्या अधिक है। पल्लववंश के शिक्कंदवर्मा नामक राज्य के गुरु<sup>382</sup> दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द थे। उपरान्त इस वंश का प्रसिद्ध राजा महेन्द्रवर्मन् पहले जैन था और दिगम्बरसाधुओं की विनय करता था।<sup>383</sup>

घोलदेश में दिगम्बर मुनि।

घोल देश में भी उस घीनी यात्री ने दिगम्बरधर्म को प्रचलित पाया था।<sup>384</sup> मलकूट (पाण्ड्यदेश) में भी उसने नगे जैनियों को बहुसंख्या में पाया था।<sup>385</sup> सातवीं शताब्दि के

376 वापनीव संघ के मुनिगण दिगम्बर भेष में रहते थे, यद्यपि वे स्त्री-मुक्ति आदि मानते थे। देखो दर्शनसार

377 निगन्ध = दिगम्बर मुनि

378 'कूर्चक' किन् जैनसाधुओं का द्योतक है यह प्रगट नहीं है।

379 श्वेतपट = श्वेताम्बर

380. अहराष्टि संभवत दिगम्बर मुनियों का द्योतक है। शायद अहीक शब्द से इसका निकास हो।

381 SSIJ., pt II p 69-72

382 P S. Hist, Intro, p XV

383 EHI p 495

384 हुआ, पृ ५६०

385 हुआ, पृ ५७४ - "The nude Jainas were present in multitudes" -- EHI p 473

मध्यम में पाण्ड्यदेश का राजा कुण्ड का सुन्दर पाण्ड्य दिगम्बर मुनियों का भक्त था। उसके पुत्र दिगम्बराचार्य श्री अमलकीर्ति के<sup>386</sup> और उसका विवाह एक छोले राजकुमारी के साथ हुआ था, जो जैव थी। उसी के संसर्ग से सुन्दर पाण्ड्य भी जैव हो गया था।<sup>387</sup>

दशवीं शताब्दी तक प्रायः सब राजा दिगम्बर जैन धर्म के आश्रयदाता थे

सच बात तो यह है कि दक्षिण भारत में दिगम्बर जैनधर्म की मान्यता ईस्वी दशवीं शताब्दि तक खूब रही थी। दिगम्बर मुनिगण सर्वत्र विहार करके धर्म का उद्योत करते थे। उसी का परिणाम है कि दक्षिण भारत में आज भी दिगम्बर मुनियों का सद्भाव है। मि राइस इस विषय में लिखते हैं कि -

"For more than a thousand years after the beginning of the Christian era, Jainism was the religion professed by most of the rulers of the Kanarese People The Ganga king of Talkad, the Rashtra Kuta and Kalachurya Kings of Manyakhet and the early Hoysalas were all Jains The Brahmanical Kadamba and early Chalukya Kings were tolerant of Jainism The Pandya Kings of Madura were Jainas and Jainism was dominant in Gujerat and Kathiawar"<sup>388</sup>

भावार्थ - "ईस्वी सन् के प्रारंभ होने से एक हजार से ज्यादा वर्षों तक कन्नड देश के अधिकांश राजाओं का मत जैन धर्म था। तलकांड के गंग राजागण, मान्यखेट के राष्ट्रकूट और कलाचूर्य शासक और प्रारंभिक होयसल नृप सब ही जैनी थे। ब्राह्मणमत को मानने वाले जो कादम्बराजा थे उन्होंने और प्रारंभ के चालुक्यों ने जैन धर्म के प्रति उदारता का परिचय दिया था। मदुरा के पाण्ड्यराजा जैन ही थे और गुजरात तथा काठियावाड में भी जैनधर्म प्रधान था।

आन्ध्र और चालुक्य काल में दिगम्बर मुनि।

आन्ध्रवशी राजाओं ने जैन धर्म को आश्रय दिया था, यह पहले लिखा जा चुका है। चोल और चालुक्य अभ्युदयकाल में दिगम्बर धर्म प्रचलित रहा था। चालुक्य राजाओं में पुलकेशी द्वितीय, विनयादित्य, विक्रमादित्य आदि ने दिगम्बर विद्वानों का सम्मान किया था। विक्रमादित्य के समय में विजय पंडित नामक दिगम्बर जैन विद्वान एक प्रतिभाशाली वादी थे। इस राजा ने एक जैन मंदिर का जीर्णोद्धार कराया था।<sup>389</sup> चालुक्यराज गोविन्द तृतीय

386 ADJB , p 46

387 EHI , p 475

388. HKL , p 16

389 SSIJ., pt I p 111

ने दिगम्बर मुनि अर्द्धव्रिती का सम्मान किया और दान दिया था। वह मुनि ज्योतिष विद्या में निपुण थे।<sup>390</sup> वेगिराज चौलुक्य विजयादित्य के गुरु दिगम्बराचार्य अर्द्धन्दि थे। इन आचार्य की शिष्या व्यामिकाब्ब के कहने पर राजा ने दान दिया था।<sup>391</sup> सारांश यह कि चालुक्यराज्य में दिगम्बर मुनियों और विद्वानों ने निरापद हो धर्मोद्योत किया था।

### राष्ट्रकूटकाल में दिगम्बर मुनि

राष्ट्रकूट अथवा राठौर राजवंश जैनधर्म का महान् आश्रय दाता था। इस वंश के कई राजाओं ने अणुव्रतों और महाव्रतों को धारण किया था, जिसके कारण जैनधर्म की विशेष प्रभावना हुई थी। राष्ट्रकूट राज्य में अनेकानेक दिगगज विद्वान् दिगम्बर मुनि विद्वार और धर्म प्रचार करते थे। उनके रचे हुए अनूठे ग्रन्थ आज उपलब्ध हैं। श्री जिनसेनाचार्य का "हरिवंशपुराण", श्री गुणभद्राचार्य का "उत्तर पुराण", श्रीमहावीराचार्य का "गणितसार संग्रह" आदि ग्रंथ राष्ट्रकूट राजाओं के समय की रचनाएँ हैं।<sup>392</sup> इन राजाओं में अमोघवर्ष प्रथम एक प्रसिद्ध राजा था। उसकी प्रशंसा अरब के लेखकों ने की है और उसे सरार के श्रेष्ठ राजाओं में गिना है।<sup>393</sup> वह दिगम्बर जैनाचार्यों का परमभक्त था।

### सम्राट अमोघवर्ष दिगम्बर मुनि थे

उसने स्वयं राज-पाठ त्यागकर दिगम्बर मुनि का व्रत स्वीकार किया था।<sup>394</sup> उसका रचा हुआ "रत्नमालिका" एक प्रसिद्ध सुभाषित ग्रन्थ है। उनके गुरु दिगम्बराचार्य श्री जिनसेन थे, जैसे कि "उत्तर पुराण" के निम्न श्लोक में कहा गया है कि वे श्री जिनसेन के घरणों में नतमसतक होते थे -

"यस्य प्रांशुं खाशुजाल बिसरद्वाराग्नरादिर्भव-  
त्यादाभोजरसज्ज- पिशगंडंभुकुण्ड प्रत्यग्रत्नद्यति ।  
संस्मर्ता स्वममोघवर्षपति पूतोऽहमद्येत्यल  
स श्रीमाजिनसेनपुज्यभगवत्पादौ जगन्मगलम् ॥"

अर्थात् - "जिन श्री जिनसे के देदीप्यमान नखों के किरण समूह से फैलती हुई धारा बहती थी और उसके भीतर जो उनके घरणकमल की शोभा को धारण करते थे उनकी रज

390 ADJB, p 97 विका., भा ४ पृ ७६

391 ADJB, p 68

392 SSIJ pt 1 pp 111-112

393. Elliot, Vol. 1 pp 3-24 -- "The greatest king of India is the Balahara, whose name imports 'King of Kings'" -- Bu Khurdabn व माप्ररा, भाग ३ पृ १३-११५

394 'रत्नमालिका' में अमोघवर्ष ने इस बात को इन शब्दों में स्वीकार किया है-

"विवेकात्पत्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका  
रचिताऽमोघवर्षेण सुधिया सदलङ्कृति ॥"

से जब राजा अमोघवर्ष के मुकुट के ऊपर नये हुए रत्नों की कांति पौली पड़ जाती थी तब वह राजा अमोघवर्ष आषंको पवित्र मानता था और अपनी उसी अवस्था का सदा स्मरण किया करता था, ऐसे श्रीमान् पूज्यपाद भगवान् श्री जिनसेनाचार्य मदा मगार का मंगल करें।”

अमोघवर्ष के राज्य काल में एकाक्षक का नाश होकर स्याद्राद मतकी विशेष उन्नति हुई थी। इसीसिन्धे दिगम्बरचार्य श्री महावीर “मणितसारसंग्रह” में उनके राज्य की वृद्धि की भावना करते हैं।<sup>395</sup> किन्तु इन राज के बाद राष्ट्रकूट राज्य की शक्ति छिन्न भिन्न होने लगी थी। यह बात गंगवाडी के जैन धर्मानुयायी गंगाराजा नरसिंह को सहन नहीं हुई। उन्होंने तत्कालीन राठौर राजा की सहायता की थी और राठौर राजा इन्द्र घत्तुघो को पुनः राज्य सिंहासन पर बैठाया था। राजा इन्द्र दिगम्बर जैनधर्म का अनुयायी था और उसने सल्लेखना व्रत धारण किया था।<sup>396</sup>

**गंगराजा और सेनापति घामुण्डराय**

इस समय गंगवाडी के गंगाराजाओं ने जैनोत्कर्ष के नित्य खाद्य प्रयत्न किया था। रायमल्ल सत्यवाक्य और उनके पूर्वज भारमिह के मन्त्री और सेनापति दिगम्बर जैन धर्मानुयायी वीरमार्तण्ड राजा घामुण्डराय थे। इस राजवंश की राजकुमारी पतिवत्येने आर्थिका के व्रत धारण किये थे।<sup>397</sup> श्री अजितसेनाचार्य और नेमिचन्द्राचार्य इन राजाओं के गुरु थे। घामुण्डरायजी के कारण इन राजाओं द्वारा जैनधर्म की विशेष उन्नति हुई थी। दिगम्बर मुनियों का सर्वत्र आनन्दमई विहार होता था।<sup>398</sup>

**कलचूर वंश के राजा दिगम्बर मुनियों के बड़े सरक्षक थे।**

किन्तु गणों का साम्राज्य पाकर भी राष्ट्रकूट वंश अधिक टिक न सका और पश्चिमीय चालुक्य प्रधानता पा गये। किन्तु वह भी अधिक समय तक राज्य न कर सके— उनके कलचूरियों ने हरा दिया। कलचूरी वंश के राजा जैनधर्म के परम भक्त थे। इनमें विज्जलराजा प्रसिद्ध और जैनधर्मानुयायी था। इसी राजा के समय में वासव ने “लिगायत” मत स्थापित किया था।

किन्तु विज्जल राजा की दिगम्बर जैनधर्म के प्रति अटूट भक्ति के कारण वासव अपने मत का बहुप्रचार करने में सफल न हो सका था। आखिर—जब विज्जलराज कोलहपुर के शिलाहार राजा के विरुद्ध युद्ध करने गये थे, तब इस बालव ने धोखे से उन्हें विष देकर

395 "विध्वस्तेकान्तपक्षस्य स्याद्वादन्यायवादिन  
देवस्य नृपतुडस्य वर्द्धता तस्य शासनं ।। ६ ।।"

396 SSIJ pt I p 112

397 मज्झिमा, पृ १५०

398 वीर, वर्ष ६ अंक १-२ देखो

मार डाला था।<sup>399</sup> और तब कहीं सिंगायत मत्त का प्रचार हो सका था। इस घटना से स्पष्ट है कि विजयन राज दिगम्बर मुनियों के लिये कैसा आश्रय था।

होयसालबंशी राजा और दिगम्बर मुनि

मैसूर के होयसाल वंश के राजागण भी दिगम्बर मुनियों के आश्रयदाता थे। इस वंश की स्थापना के विषय में कहा जाता है कि साल नाम का एक व्यक्ति एक मंदिर में एक जैनयति के पास विद्याध्ययन कर रहा था, उस समय एक शेर ने उन साधु पर आक्रमण किया। साल ने शेर को मारकर उनकी रक्षा की और वह होयसाल नाम से प्रसिद्ध हुआ था।<sup>400</sup> उपरान्त उन्होंने जैन साधु का आशीर्वाद पाकर उसने अपने राज्य की नींव जमाई थी, जो खूब फला फूला था। इस वंश के सब ही राजाओं ने दिगम्बर मुनियों का आदर किया था, क्योंकि वे सब जैन थे।<sup>401</sup> होयसाल राजा विनयदित्य के गुरु दिगम्बर साधु श्री शान्तिदेव मुनि थे।<sup>402</sup> इन राजाओं में विहिदेव अथवा विष्णुवर्द्धन राजा प्रसिद्ध था। वह भी जैन धर्म का दृढ़ श्रद्धालु था। उस की रानी शान्तलदेवी प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य श्री प्रभाचन्द्र की शिष्या थी।<sup>403</sup> किन्तु उसकी एक दूसरी रानी वैशण्वधर्म की अनुयायी थी। एक राजा राजा इस रानी के साथ गजमहल के झरोखे में बैठा हुआ था कि सहक पर एक दिगम्बर मुनि दिखाई दिये। रानी ने राजा को बहकाने के लिये यह अवसर अच्छा समझा। उसने राजा से कहा कि "यदि दिगम्बर साधु तुम्हारे गुरु हैं तो भला उन्हें बुलाकर अपने हाथ से भोजन करादो"। राजा दिगम्बर मुनियों के धार्मिक नियम को भूलकर कहने लगे कि "यह कौन बड़ी बात है"। अपने हीन अंग का उसे ख्याल न रहा। दिगम्बर मुनि अगहीन, रोगी आदि के हाथ से भोजन ग्रहण न करेंगे, इगका उसने ध्यान भी न किया और मुनिमहागज को पडगाह लिया। मुनिराज अतराय हुआ जानकर वापस चले गये। गज इस पर घिटा गया और वह वैष्णव धर्म में दीक्षित हो गया।<sup>404</sup> किन्तु उसके वैष्णव हो जाने पर भी दिगम्बर मुनियों का बाहुल्य उसके राज्य में बना रहा। उसकी अग्रमहर्षी शान्तलदेवी अब भी दिगम्बर मुनियों की भक्त थी और उसके मनापति तथा प्रधान मंत्री गंगराजभी दिगम्बर मुनियों के परम सेवक थे। उनके मसर्ग में विष्णुवर्द्धन न अन्तिम समय में भी दिगम्बर मुनियों का सम्मान किया और जैन मन्दिरों का दान दिया था।<sup>405</sup> उनके उत्तराधिकारी नरसिंह प्रथम द्वारा भी दिगम्बर मुनियों का सम्मान हुआ था। नरसिंह का प्रधानमंत्री हुल्ल दिगम्बर मुनियों का परमभक्त था। उस समय दक्षिण भारत में चामुण्डराय,

399 मजैस्मा, पृ १५५-१५६

400 SSIJ, pt I p 115

401 मजैस्मा, पृ १५६-१५७

402 SSIJ, pt I p 115

403 Ibid p 116

404 AR, vol IX p 266

405 मजैस्मा, प्रस्तावना पृ १३

महाराज और बृहन्न दिगम्बरधर्म के महान् आश्रयक और स्वयं सम्झे जाते थे।<sup>406</sup>  
बृहन्नराय होयसाल के गुरु थी वासपुत्र्य इती थे। राजा पुनिस होवराल के गुरु  
अजितमुनि थे।<sup>408</sup>

**विजयनगर साम्राज्य में दिगम्बर मुनि**

विजयनगर साम्राज्य की स्थापना आर्य-सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के लिये हुई  
थी। वह हिन्दू समष्टि का एक आदर्श था। जैव, वैष्णव, जैन-सम्बन्धी कंधे से कंधा जुटा कर  
धर्म और देश रक्षा के कार्य में पये हुए थे। स्वयं विजयनगर स्थापकों में हरिहर द्वितीय और  
राजकुमार उग्र दिगम्बर जैनधर्म में दीक्षित होकर दिगम्बर मुनियों के महान् आश्रयदाता हुये  
थे।<sup>409</sup> दिगम्बर मुनि श्री धर्मकृष्णजी राजा देवराय के गुरु थे तथा आचार्य विद्यानन्दि ने  
देवराज और कृष्णराय नामक राजाओं के दरबार में वाद किया था तथा विलगी और  
कारकल्मे दिगम्बर धर्म की रक्षा की थी।<sup>410</sup>

**मुस्लिम काल में दिगम्बर मुनि।**

मुस्लिमकाल में देश त्रसित और दुःखित हो रहा था। आर्य धर्म सकटाकुल थे। किन्तु  
उम पर भी हम देखते हैं कि प्रसिद्ध मुसलमान शासक हैदरअली ने श्रवणवेल्लगोल की  
नगदेवमूर्ति श्री गोमटदेव के लिये कई गाँवों की जागीर भेंट की थी।<sup>411</sup> उस समय  
श्रवणवेल्लगोल के जैनमठ में जैन साधु विद्याध्ययन कराते थे। दिगम्बराचार्य विशालकीर्तिने  
सिकन्दर और वीरू पक्षरायके सामने वाद किया था।<sup>412</sup>

**मैसूर के राजा और दिगम्बर मुनि**

मैसूर के ओडयरवशी राजाओं ने दिगम्बर जैनधर्म को विशेष आश्रय दिया था और  
वर्तमान शासकभी जैनधर्म पर सदस्य है। सत्रहवीं शताब्दि में भट्टाकलक देव नामक  
दिगम्बराचार्य हदुवल्ली जैनमठके गुरु के शिष्य और महावादी थे। उन्होंने सर्वसाधारण में  
वाद करके जैन धर्म की रक्षा की थी। वह संस्कृत और कन्नड के विद्वान् तथा छः भाषाओं  
के ज्ञाता थे।<sup>413</sup> जैनरानी भरवदेवी ने मणिपुर का नाम बदलकर इनकी स्मृति में

406 Ibid ,

407 मजैस्मा , पृ १६०

408 ADJB , p 31

409 SSIJ pt I p 118

410 मजैस्मा , पृ १६३

411 AR , Vol IX 267 & SSIJ , pt I p 117

412. मजैस्म. , पु. १६३

413 HKI , p 83

“भट्टकलसंक्रामपुर” रचना था— वहीं आजकल का भटकल है।<sup>414</sup> श्री कुम्भराय और अच्युतराय राजा के सम्मुख श्री दिगम्बर मुनि नेमिचन्द्र ने वाद किया था।<sup>415</sup>

**फण्डाईकिडू राजा और दिगम्बर मुनि**

पुण्डी ( उत्तर अर्काट ) के तीसरे ऋषभदेव मंदिर के विषय में कहा जाता है कि फण्डाईकिडू राजा की लड़की को भूतबाधा सताती थी। उसी समय कुछ शिक्षारिषों के पास एक दिगम्बर मुनिने श्री ऋषभदेव की मूर्ति देखी। मुनिजी ने वह मूर्ति उनसे लेनी। इन्हीं शिक्षारिषों ने राजा से मुनिजी की प्रशंसा की। उस पर राजा ने मुनिजी की वन्दना की और उनसे भूतबाधा दूर करने का अनुरोध किया। मुनिजी ने लड़की की भूतबाधा दूर कर दी। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसके उक्त मंदिर बनवाया।<sup>416</sup>

**दो सौ वर्ष पहले दिगम्बर मुनि**

दक्षिण भारत में दो सौ वर्ष पहले कई एक दिगम्बर मुनियों का सद्भाव था। उनमें मन्नरगुडी के पर्णकुटिवासी ऋषि प्रसिद्ध है। उन्होंने कई मूर्तियों और मंदिरों की प्रतिष्ठा कराई थी।<sup>417</sup> उनके अतिरिक्त सधि महा मुनि और पण्डित महामुनि भी प्रसिद्ध हैं। उन्होंने चित्तम्बुर नामक ग्राम में वहाँ के ब्राह्मणों के साथ वाद किया था और जैनधर्म का डंका बजाया था। तब से वहाँ पर एक जैन विद्यापीठ स्थापित है।<sup>418</sup> सचमुच दक्षिण भारत के एक अत्यन्त प्राचीनकाल से सिलसिलेवार दिगम्बर मुनियों का सद्भाव रहा है। प्रो ए एन उपाध्याय इस विषय में लिखते हैं कि दक्षिण भारत में नियमितरूप में दिगम्बर मुनि इस ओर से गुजरे हैं, किन्तु खेद है, उनकी जीवन सम्बन्धी वार्ता उपलब्ध नहीं है।

**महाराष्ट्र देश के दिगम्बर जैन मुनि**

दक्षिण भारत की तरह ही महाराष्ट्रदेश भी जैनधर्म का केन्द्र था।<sup>419</sup> वहाँ अब तक दिगम्बर जैनों की बाहुल्यता है। कोल्हापुर, बेलगाँव आदि स्थान जैनों की मुख्य बस्तियाँ थीं। कहते हैं एक मरतबा कोल्हापुर में दिगम्बर मुनियों का एक वृहत् सघ आकर ठहरा था। राजा और रानी ने भक्तिपूर्वक उसकी वन्दना की थी। दैवयोग से संघ जहाँ पर ठहरा था। वहाँ आग लग गई। मुनिगण उसमें भस्म हो गये। राजा को बड़ा परिताप हुआ। उसने

414 बुजेश , भा १ पृ १०

415 मजैस्या , पृ १६३

416 दिजैडा , पृ ८५७

417 Ibid, p 864

418 दिजैडा , पृ ८५६

419 Jainism was specially popular in the Southern Maratha country " - EHI , p 444

उनके स्मारक में 108 दिगम्बर भस्त्रिण बनाये। संघ में 108 ही दिगम्बर मुनि थे।<sup>420</sup> इस घटना को महाभारत में एक समय में दिगम्बर मुनियों की वादुत्पत्ता का पता चलता है। सचमुच महाभारत के रूद्र, धर्मपुत्र, शिलाहार उद्वि कर्ण के राजा दिगम्बर जैनधर्म के पोषक के और वही कारण है कि वहाँ दिगम्बर मुनियों का बड़ी संख्या में शिलार हुआ था। अठारहवीं शताब्दि में हुये दो दिगम्बर मुनियों का पता चलता है। भराठी एक कवि जिनवास के गुरु विद्वान् दिगम्बराचार्य श्री उज्ज्वलकीर्ति थे। दूसरे महतिस्सामर जी थे। उन्होंने स्वतः कुल्लुकवत् दीक्षा ली थी। उपरान्त वेवेन्द्र कीर्ति भट्टारक से विधिवत् दीक्षा ग्रहण की थी। वनहस्तदेश में उन्होंने खूब धर्मप्रभावना की थी। गुजरात को उन्होंने जैने बनाया था। वही गाव उनका समाधिस्थान है, जहाँ सदा मेला लगता है। उनके रचे हुए ग्रन्थ भी मिलते हैं (मजह पृ. 65-72)

शके 1127 में कोल्हापुर के अजरिका स्थान में त्रिभुवन तिलक सैत्यालय में श्री विशालकीर्ति आचार्य के श्री सोमदेवाचार्य ने ग्रन्थ रचना की थी।

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध दि. जैनाचार्य।

दिगम्बर जैनों के प्रायः सब ही दिगम्बर विद्वान् और आचार्य दक्षिण भारत में ही हुये हैं। उन सबका सक्षिप्त वर्णन उपस्थित करना यहाँ समभव नहीं है, किन्तु उनमें से प्रख्यात दिगम्बराचार्यों का वर्णन यहाँ पर दे देना इष्ट है। अग-ज्ञान के ज्ञाता दिगम्बराचार्यों के उपरान्त जैन संघ में श्री कुन्दकुन्दाचार्य का नाम प्रसिद्ध है। दिगम्बर जैनों में उनकी मान्यता विशेष है। वह महातपस्वी और बड़े ज्ञानी थे। दक्षिण भारत के अधिवासी होने पर भी उन्होंने गिरिनार पर्वत पर जाकर श्वेताम्बरों से वाद किया था।<sup>421</sup> तामिल साहित्य का नीतिसिन्धु कुरल उन्हीं की रचना थी।<sup>422</sup> उन और उन्हीं के समान अन्य दिगम्बराचार्यों के विषय में प्रो रामास्वामी पेंगार लिखते हैं -

"First comes Yatindra Kunda, a great Jain Guru, 'who in order to show that both within & without he could not be assisted by Rājās, moved about leaving a space of four inches between himself and the earth under his feet' Uma Svami, the compiler of Tattvartha Sutra, Griddhrapinchha, and his disciple Balakapinchha follow, 'Then comes Samantabhadra, 'ever fortunate', 'whose discourse lights up the palace of the three worlds filled with the 'all meaning Syadvada, This Samantabhadra was the first of a series of celebrated Digambara writers who acquired considerable

420 ब्रह्मजैस्ना, पृ. ६३

421. दिजैहा., पृ. ७६५

422. SSIJ, I pp. 40-44 89

predominance, in the early Rashtrakuta period. Jain tradition assigns him Saika 60 or 138 A.D. ... He was a great Jain missionary who tried to spread far and wide Jain doctrines and morals and that he met with no opposition from other sects wherever he went. Samantabhadra's appearance in South India marks an epoch not only in the annals of Digambara tradition, but also in the history of Sanskrit literature .... After Samantabhadra a large number of Jain Munis took up the work of proselytism. The more important of them have contributed much for the uplift of the Jain world in literature and secular affairs. There was, for example, Simbhanandi, the Jain sage, who, according to tradition, founded the state of Gangavadi. Other names are those of Pujyapada the author of the incomparable grammar, Jinedndra, Vyakarana and of Akalanka who, in 788 A.D., is believed to have confuted the Buddhists at the court of Himasitara in Kanchi, and thereby procured the expulsion of the Buddhists from South India." SSIJ, pt [pp.29-31]

भावार्थ - "पहले ही महान् जैनगुरु यतीन्द्र कुन्द का नाम मिलता है जो राजाओं के प्रति निस्पृहता दिखाते हुये अघर चलते थे। "तत्त्वार्थ सूत्र" के कर्ता उमास्वामी गृह्यपिच्छ और उनके शिष्य बलाकपिच्छ उनके बाद आते हैं। तब समन्तभद्र का नाम दृष्टि पड़ता है जो सदा भागवान् रहे और जिनकी स्याद्ब्रह्मवाणी तीन लोक को प्रकाशमान करती थी। यह समन्तभद्र प्रारम्भिक राष्ट्रकूट काल के अनेक प्रसिद्ध दिगम्बर मुनियों में सर्व प्रथम थे। उनका समय जैनमतानुसार सन् 138 ई. है। यह महान् जैन प्रचारक थे, जिन्होंने घड़ु ओर जैनसिद्धान्त और शिक्षा का प्रसार किया और उन्हें कहीं भी किसी विधर्मी संप्रदाय के विरोध को सहन न करना पड़ा। उनका प्रदुर्भाव दक्षिण भारत के दिगम्बर जैन इतिहास के लिये ही सुप्रवर्तक नहीं है, बल्कि उससे ससकृत साहित्य में एक महान् परिवर्तन हुआ था। समन्तभद्र के बाद बहुसंख्यक जैन साधुओं ने अजैनों को जैनी बनाने का कार्य किया था। उनमें से प्रसिद्ध साधुओं ने जैन ससार को साहित्य और राष्ट्रीय अपेक्षा उन्नत बनाया था। उदाहरणतः जैनधर्म सिद्धनन्दिने गणवाही का राज्य स्थापित कराया था। अन्य आचार्यों में पूज्यपाद, जिनकी रचना आद्वितीय "जिनेन्द्र व्याकरण" है और अकल्क देव है जिन्होंने काशी के हिमश्रीतल राजा के दरबार में बौद्धों को बाद में परास्त करके उन्हें दक्षिण भारत से निकलवा दिया था।"

श्री उमास्वामी - श्री कुन्दकुन्दाचार्य के उपरान्त श्री उमास्वामी प्रसिद्ध आचार्य थे, प्रो सा. का यह प्रकट करना निस्सन्देह ठीक है। उनका समय वि.स 76 है। गुजरात प्रान्त के गिरिनगर में जब यह मुनिराज विचार कर रहे थे और एक द्वैपायक नाम श्रावक

के घर पर-उसकी अनुसरिणी में आहार लेने से थे, तब जहाँ पर एक अनुष्ठान शुरू देकर उसे मुक्त कर आये थे। जैहयकले जब घर-उत्तरक-कक देखा तो उसने उममन्वासी को "तत्त्वार्थसूत्र" रचने की प्रार्थना की थी। तदनुसार वह ग्रन्थ-रचा गया था। उमाग्वर्मा वादना भारत के शिक्षापी और आचार्य कुन्वकुन्द के शिष्य थे, फेरस उनके "गृह्यपिट्ठ" विशेषण से बोध होता है।<sup>423</sup>

श्री समन्तभद्राचार्य - श्री समन्तभद्राचार्य विगम्बर जैनों में बड़े प्रतिभशाली नैयायिक और वादी थे। मुनिदशा में उन को भस्मक रोग हो गया था, जिसके निवारण के लिये वह काशीपुर के शिवात्म्य में शैव-संन्यासी के भेष में जा रहे थे। वहीं स्वर्गमू खोत्र रचकर शिवकोटि राजा को आर्षवश्यकित कर दिया था। परिणामतः वह विगम्बर मुनि हो गवा था। समन्तभद्राचार्य ने सारे भारत में विहार करके दिगम्बर जैनधर्म का डका बजावा था। उन्होंने प्रव्यशिद्यत लेकर पुनः मुनिवेष और फिर आचार्य पद धारण किया था। उनकी ग्रन्थरचनयें जैन धर्म के लिए बड़े महत्व की है।<sup>424</sup>

श्री पूज्यपादाचार्य - कर्नाटक देश के कोल्हाल नामक गाव में एक ब्राह्मण माधवभट्ट विक्रम की चौबी शताब्दि में रहता था। उन्हीं के माग्यकन पुत्र श्रीपूज्यपादाचार्य थे। उनका दीक्षा नाम श्री देवनन्दि था। नाना देशों में विहार करके उन्होंने धर्मोपदेश दिया था, जिसके प्रभाव से सैकड़ों प्रसिद्ध पुरुष उनके शिष्य हुये थे। ग्मवशी दुर्विनीत राजा उनका मुख्य शिष्य था। "जैनेन्द्रव्याकरण", "शब्दप्रतार" आदि उनकी श्रेष्ठ रचनायें हैं।<sup>425</sup>

श्री वादीभरिसंह - यतिवर श्री वादीभरिसंह श्री पुष्पसेन मुनिके शिष्य थे। उनका गृहस्थ दशा का नाम "ओह्यदेव" था, जिससे उनका दक्षिण देशवासी होना स्पष्ट है। उन्होंने सातवी शताब्दी में "क्षत्रवृडामणि" "गद्यचिन्तामणि" आदि ग्रन्थों की रचना की थी।<sup>426</sup>

श्री नेमिचन्द्राचार्य - श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्त चक्रवर्ती नन्दिसद्य के स्वामी उभयनन्दि के शिष्य थे। वि स 735 में द्रविड देश के मथुरा नगर में वह रहते थे। उन्होंने जैनधर्म का विशेषप्रचार किया था और उनके शिष्य गावश के राजा श्री राधमन्स और सेनापति चामुण्डराय आदि थे। उनकी रचनाओं में "गोमट्टरसार" ग्रन्थ प्रधान है।<sup>427</sup>

श्री अकलकाचार्य - श्री अकलकाचार्य देवसद्य के साथु थे। बौद्धमत में रहकर उन्होंने विद्याध्ययन किया था। उपरसत बौद्धों से ब्राह्म करके उनका पराभ्रम और जैनधर्म का उत्कर्ष प्रकट किया था। कौटिली का हिमश्रितस राजा उनका मुख्य शिष्य था। उनके सबे हुये ग्रन्थ में राजवार्तिक, अष्टशती, न्यायविनिश्यालडाकर आदि मुख्य है।<sup>428</sup>

423 नजह, पृ ४४

424 Ibid., पृ. ४५

425 Ibid., पृ ४६

426 Ibid, पृ. ४७

427 Ibid, पृ ४८

428. Ibid., पृ. ४९

श्री जिनसेनआचार्य - राजाओं से पूजित श्री जैनसेन स्वामी के शिष्य श्री जिनसेनआचार्य सहाय जिनसेनआचार्य के गुरु थे। उस समय उनके द्वारा जैनधर्म का उत्कर्ष विशेष हुआ था। वह अधिपतिव्यक्त थे। उनका "पाश्र्वाभ्युदयकाव्य" कालिदास के मंडूक्य काव्य की समरथापूर्ति रूप में रचा गया था। उनकी दूसरी रचना "महापुराण" भी काव्यकृष्टि से एक श्रेष्ठ ग्रंथ है। उनके शिष्य गुणभद्राचार्य ने इस पुराण के शेषांश की पूर्ति की थी।<sup>429</sup>

श्री विद्यानन्दिआचार्य - श्री विद्यानन्दि आचार्य कर्णाटकदेशवासियों और गृहस्थधर्म में एक वेदानुयायी ब्राह्मण थे। देवागम स्तोत्र को सुनकर वह जैनधर्म में दीक्षित हो गये थे। दिगम्बर बुनि होकर उन्होंने राजदरबारों में पहुँच कर ब्राह्मणों और बौद्धों से वाद किया था, जिनमें उन्हें विजय भी प्राप्त हुई थी। अष्टसहस्रत्री, आप्तपरीक्षा आदि ग्रंथ उनकी शिष्य रचनाएँ हैं।<sup>430</sup>

श्री वादिराज - श्रीवादिराजसुरि नन्दिसंघ के आचार्य थे। उनकी षट्कर्त्तव्यसूत्र स्वाराजदक्षिणापति और जगदकमल्लयादी उपधिवाँ उनके गौरव और प्रतिभ की सूचक हैं। उनको एक बार कुष्ठ रोग हो गया था, किन्तु अपने योगबल से एकीभावस्तोत्र रचते हुए उस रोग से वह मुक्त हुए थे। यज्ञोद्धार चरित्र, पाश्र्वाभ्युदय चरित्र आदि ग्रंथ भी उन्होंने रचे थे।<sup>431</sup>

आप धालुक्यवशीय नरेश जयसिंह की सभा के प्रख्यात् वादी थे। वे स्वयं सिंहपुर के राजा थे। राज्य त्यागकर दिगम्बर बुनि हुए थे। उनके दादा-गुरु श्रीपाल भी सिंहपुराधीश थे। (जैनि, वर्ष 33 अंक 5 पृ. 72)

इसी प्रकार श्री मल्लिकार्जुनाचार्य, श्रीसोमदेवसुरि आदि अनेक लब्धप्रतिष्ठ दिगम्बर जैनाचार्य दक्षिणभारत में हो गुजरे हैं, जिनका वर्णन अन्य ग्रन्थों से देखना चाहिए।

इन दिगम्बरसंघों के विषय में उक्त विद्वान आगे लिखते हैं कि "समग्र दक्षिण भारत विद्वान जैन साधुओं के छोटे-छोटे समूहों से अलंकृत था, जो धीरे-धीरे जैनधर्म का प्रचार जनता की विविध भाषाओं में ग्रन्थ रचकर कर रहे थे। किन्तु यह समझना गलत है कि यह साधुगण लौकिक कार्यों से विमुख थे। किसी हद तक यह सच है कि वे जनता से ज्यादा मित्ते जुलते नहीं थे। किन्तु ई. पू. चौथी शताब्दि में मेगास्थनीज के कथन से प्रगत है कि जैन धर्मगण, जो जंगलों में रहते थे, उनके पास अपने राजदूतों को भेजकर राजा लोग वस्तुओं के कारण के विषय में उनका अभिप्राय जानते थे। जैन मुक्तों ने ऐसे कई राज्यों

429 Ibid., पृ. ५०-५१

430 Ibid., पृ. ५१-५२

431 Ibid., पृ. ५३

की स्थापना की थी, जिन्होंने कई महाविद्यालयों तक जैन धर्म को अग्रसर किया है।<sup>432</sup>

प्रो. डॉ. वी. सेवणिरराय ने दक्षिण भारत के दिगंबर मुनियों के सम्बन्ध में लिखा है कि "जैन मुनिकण विद्या और विज्ञान के ज्ञाता थे, अर्थशास्त्र और मन्त्रशास्त्र के भी वे महाविद्वान् थे, ज्योतिषशास्त्र, उन्मत्त अर्थशास्त्र, वायुशास्त्र, विज्ञान और साहित्य को उन्होंने रखा था। जैनमान्यतामें ऐसे सफल एक प्राचीन आचार्य कुम्भकुन्द कहे गए हैं, जिन्होंने केरलरी जिले के कोनकुण्डल प्रदेश में ध्यान और तपस्या की थी।"<sup>433</sup>

इस प्रकार दक्षिण भारत में दिगंबर मुनियों के अस्तित्व का ऐतिहासिक प्रमाण है और वह इस बात का प्रमाण है कि दक्षिण भारत एक अत्यन्त प्राचीनकाल से दिगंबर मुनियों का आश्रयस्थान रहा है तथा वह अभी भी रहेगा, इसमें संशय नहीं।

---

432 "The whole of south India strewn with small groups of learned Jain ascetics, who were slowly but surely spreading their morals through the medium of their sacred literature composed in the various vernaculars of the country. But it is a mistake to suppose that these ascetics were indifferent towards secular affairs in general. to a certain extent it is true that they did not mingle with the world. But we know from the account of Megasthenes that, so late as the 4th century B.C., 'The Sarmanes or the Jain Sarmanes who lived in the woods were frequently consulted by the kings through their messengers regarding the cause of things'. Jaina Gurus have been founders of States that for centuries together were tolerant towards the Jain faith" - SSIJ, I, 106.

433 SSIJ, pt II pp 9-10

## तामिल-साहित्य में दिगम्बर मुनि ।

"Among the systems controverted in the Manimechala the Jain system also figures as one and the words Samanas and Amana are of frequent occurrence, as also references to their <math>\langle \text{Viharas} \rangle</math>, so that from the earliest times reachable with our present means, Jainism apparently flourished in the Tamil Country "434

तामिल साहित्य के मुख्य और प्राचीन लेखक दिगम्बर जैन विद्वानरहे हैं। और उसका सर्वप्राचीन व्याकरण-ग्रन्थ "तोल्काप्पियम्" (Tolkappiyam) एक जैनाचार्य की ही रचना है।<sup>435</sup> किन्तु हम यहाँ पर तमिल-साहित्य के जैनों द्वारा रचे हुये अग को नहीं हूयेंगे। हमें तो जैनतर तामिल-साहित्य में दिगम्बर मुनियों के वर्णन को प्रकट करना इष्ट है।

अच्छा तो, तामिलसाहित्य का सर्वप्राचीन समय "सगम-काल" अर्थात् ईस्वी पूर्व दूसरी शताब्दि से ईस्वी से पाचवी शताब्दि तक का समय है। इस काल की रचनाओं में बौद्ध विद्वान् द्वारा रचित काव्य "मणिमेखली" प्रसिद्ध है। "मणिमेखली" में दिगम्बरमुनियों और उनके सिद्धान्तों तथा मठों का अच्छा खासा वर्णन है। जैनदर्शन को इस काव्य में दो भागों में विभक्त किया है- (1) आजीविका और (2) निग्रन्थ।<sup>436</sup>

आजीविक भ महावीर के समय में एक स्वतंत्र सम्प्रदाय था, किन्तु उपरान्तकाल में वह दिगम्बर जैनसंप्रदाय में समाविष्ट हो गया था। निर्गन्थ संप्रदाय को 'अरुहन्' (अर्हत्) का अनुयायी लिखा है, जो जैनों का द्योतक है। इस काव्य के पात्रों में सेठ कोवल्न की पत्नी कण्ठिके पिता मानाहकन् के विषय में लिखा है कि 'जब उसने अपने दामाद के मारे जाने के समाचार सुने तो उसे अत्यन्त दुःख और खेद हुआ। और वह जैन सघ में गगा मुनि हो गया।'<sup>437</sup> इस काव्य से यह भी प्रकट है कि चोल और पाण्ड्य राजाओं ने जैनधर्म को अपनाया था।<sup>438</sup>

434. Sc., p 32 भावार्थ - तामिल काव्य "मणिमेखली" में जैन संप्रदाय और शब्द "सगम" - "अमण" तथा उनके सिद्धांतों का उल्लेख विशेष है; जिससे तामिल देश में भतीव प्राचीनकाल से जैनधर्म का अस्तित्व सिद्ध है।"

435. SSI., pt. 1. p. 69

436. BS., p. 15

437. Ibid., p 681

438. SSI., pt. 1 p 47

"मणिकेसरी" के वर्णन से प्रकट है कि "निगन्थागम ग्रन्थों के बाहर भील्ल मठों में रहते थे। इन मठों की विकासे बहुत ऊँची और जल रंग से रंगी हुई होती थी। प्रत्येक मठ के साथ एक छोटा सा बगीचा भी होता था। उनके मंदिर तिराछों और चौराछों पर अवस्थित थे। जैनों ने अपने स्नेहपूर्ण भी बना रखे थे, जिन पर से निगन्थाचार्य अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते थे। जैन साधुओं के मठों के साथ साथ जैनसाधुओं के आश्रम भी होते थे। जैन साधुओं का प्रभाव तमिल महिला समाज पर विशेष था। कावेरीप्युमट्टिनम् जो चील राजाओं की राजधानी थी, वहाँ और कावेरी तट पर स्थित उदैपुर में जैनों के मठ थे। मदुरा जैन धर्म का मुख्य केन्द्र था। सेठ कवेत्तन् और उनकी पत्नी क्वाण्णकि ने उन्हें किन्नी जीव कोषाहा न पशुघाने के लिये सावधान किया था, क्योंकि मदुरा में निगन्थों द्वारा यह एक महान् पाप करार दिया गया था। यह निगम्बराण तीन कत्रयुक्त और अशोक वृक्ष के तले बैठते गये। अर्हत भगवान् की वैदीप्यमान मूर्ति की विनय करते थे। यह सब जैन दिगम्बर थे, यह उक्त काव्य के वर्णन से स्पष्ट है। पुरर में जब इन्द्रोत्सव मनाया गया तब वहा के राजा ने सब धर्मों के आचार्यों को बाव और धर्मोपदेश करने के लिये बुलवाया था। दिगम्बर मुनि इस अवसर पर बड़ी संख्या में पहुँचे थे और उनके धर्मोपदेश से अनेकानेक तामिल स्त्रीपुरुष जैन धर्म में दीक्षित हुये थे।"<sup>439</sup>

"मणिमेकलै" काव्य में उसकी मुख्य पात्री मणिमेखला एक निग्रन्थ साधु से जैन धर्म के सिद्धान्तों के विषय में जिज्ञासा करती भी बताई गई है।<sup>440</sup> इस तथा इस काव्य के अन्य वर्णन से स्पष्ट है कि ईस्वी की प्रारम्भिक शताब्दों में तामिल देश में दिगम्बर मुनियों की एक बड़ी संख्या मौजूद थी और तामिल देश में विशेष मान्य तथा प्रभावशाली थे।

शैव और वैष्णव सम्प्रदायों के तामिल साहित्य में भी दिगम्बर मुनियों का वर्णन मिलता है। शैवों के 'पेरियपुण्णाम्' नामक ग्रन्थ में मूर्ति नायनार के वर्णन में लिखा है कि कल्पत्रय वंश के क्षत्री जैसे ही दक्षिण भारत में पहुँचे जैसे ही उन्होंने दिगम्बर जैन धर्म को अपना लिया। उस समय दिगम्बर जैनों की संख्या वहा अत्यधिक थी और उनके आचार्यों का प्रभाव कल्पधर्म पर विशेष था।<sup>441</sup> इस कारण शैवधर्म उन्नत नहीं हो पाया था। किन्तु कल्पधर्म के बाद शैवधर्म को उन्नति करने का अवसर मिला था। उस समय बौद्ध प्रायः निवृत्त हो गये थे, किन्तु जैन अब भी प्रधानता लिये हुये थे।<sup>442</sup> शैवधर्मों का बादशाहा में मुक्तकाल लेने

439 Ibid pp 47-48. "That these Jains were the Digambaras is clearly seen from their description . . . The Jains took every advantage of the opportunity and large was the number of those that embraced this faith "

440 "Manumekalai asked the Nigantha to state who was his god and what he was taught in his sacred books etc " -- SSIJ, pt I p 50

441 Ibid, p 55

442 "It would appear from a general study of the literature of the period that Buddhism had declined as an active religion but jainism had still its stroughold. The chief opponents of these saints were the as or the Jainas " - BS., p 689

के लिये दिगम्बराचार्य-जैन धर्म ही अग्रणी थे। जैनों में सम्बन्ध-और अन्तः प्रामाण्य आचार्य जैन धर्म के कट्टर विरोधी थे। इनके प्रचार से सत्प्रवायिक विद्वेष-की-आय तामिल देश में भड़क उठी थी<sup>443</sup> जिसके परिणाम स्वरूप उपरान्त के शिव धर्मों में बेला उपदेश दिया हुआ मिश्रता है कि बौद्धों और समणों (दिगम्बर मुनियों) के न तो दर्शन किये और न उनके धर्मोपदेश सुने। बल्कि शिव से वह प्रार्थना की गई है कि वह शक्ति प्रदान करें जिससे बौद्धों और समणों (दि. मुनियों) के सिर फोड़ डाले जावें, जिनके धर्मोपदेशों को सुनते- सुनते उन लोगों के कान भर गये हैं।<sup>444</sup> इस विद्वेष-का भी कोई ठिकाना है। किन्तु इससे स्पष्ट है कि उस समय भी दि. मुनियों का प्रभाव दक्षिण भारत में काफी था।

वैष्णव तामिल साहित्य में भी दिगम्बर मुनियों का विवरण मिश्रता है। उनके 'तेवराव' (Tevaram) नामक ग्रंथ से ई. सातवीं आठवीं शताब्दि के जैनों का हाल मालूम होता है। उक्त ग्रन्थ से प्राप्त है कि "इस समय भी जैनों का मुख्य केन्द्र मद्रुरा में था। मद्रुरा के चर्चु और स्थित अनैमल्लै, पसुमल्लै आदि आठ पर्वतों पर दिगम्बर मुनिगण रहते थे और वे ही जैन सघ का सचालन करते थे। वे प्रायः जनता से अलग रहते थे-उससे अत्यधिक सम्पर्क नहीं रखते थे। स्त्रियों से तो वे बिल्कुल दूर-दूर रहते थे। नासिका स्वर से वे प्राकृत व अन्य मद्र बोलते थे। ब्राह्मणों और उनके वेदों का वे इमेशा खुना विरोध करते थे। कहीं धूप में वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर वेदों के विरुद्ध प्रचार करते हुए विद्यमान थे। उनके हाथ में पीछी, घटाई और एक छत्री होती थी। इन दिगम्बर मुनियों को सम्बन्ध-द्वेषवश बन्दरों की उपमा देता है, किन्तु वे सैद्धान्तिक वाद करने के लिये बड़े लालायित थे और उन्हें विपक्षी को परास्त करने में आनन्द आता था। केशलौघ ये मुनिगण करते थे और स्त्रियों के सम्मुख नमन उपस्थित होने में उन्हें लज्जा नहीं आती थी। भोजन लेने के पहले वे अपने शरीर की शुद्धि नहीं करते थे (अर्थात् स्नान नहीं करते थे) मन्त्रशास्त्र वे खूब जानते थे और उसकी खूब तारीफ करते थे।<sup>445</sup>

त्रिज्ञानसम्बन्ध और अप्पर ने जो उपरोक्त प्रमाण दिगम्बर मुनियों का वर्णन दिया है, यद्यपि वह द्वेष को लिये हुये है, परन्तु तो भी उससे उस काल में दिगम्बर मुनियों के बाहुल्य रूप में सर्वत्र विहार करने, विकट तपस्वी और उत्कट वादी होने का समर्थन होता है।

दक्षिण भारत की 'नन्द्याल कैफियत' (Nandyala Kaiphayat) में लिखा है<sup>446</sup> कि "जैन मुनि अपने सिरों पर बाल नहीं रखते थे कि शायद कहीं जू न पड़ जाय और वे हिंसा के भागी हों। जब वे चलते थे तो मोर पिच्छी से रास्ता को साफ कर लेते थे कि कहीं सूक्ष्म जीवों की विराधना न हो जाय। वे दिगम्बर वेप धारण किये थे, क्योंकि उन्हें भय था कि कहीं उनके कपड़े और शरीर के ससर्ग से सूक्ष्म जीवों को पीडा न पड़ये। वे सूर्यास्त के उपरान्त भोजन नहीं करते थे, क्योंकि पवन के साथ उड़ते हुए जीवजन्तु कहीं

443 SSIJ., pt. I pp 60-66

444 सिम्मलै - BS., p 692

445. SSIJ., pt. I pp 68-70

446 Ibid., pt II pp 10-11

उनके भोजन में गिर कर नर न जाव।" इस वर्णन से भी दक्षिण भारत में दिगम्बर मुनियों का ब्राह्मण्य और निर्वाह धर्म प्रचार करना प्रमाणित है।

"सिद्धवत्तम् कैफियत" (Siddhavattam Kauphiyat) से प्रकट है<sup>447</sup> कि "वरंगल के जैन राजा उदार प्रकृति थे। वे दिगम्बरों के साथ 2 अन्य धर्मों को भी उपास्य देते थे।" "वरंगल कैफियत" से प्रकट है<sup>448</sup> कि वहाँ कृष्णधर्मार्थ नामक दिगम्बर मुनि विशेष प्रभावशाली थे।

दक्षिणभारत के ग्रन्थ-कथा साहित्य में एक कहानी है, उससे प्रकट है कि "वरंगल के काकतीय वंशी एक राजा के पास ऐसी खड़ाऊँ थीं, जिनको पहनकर वह उड़ सकता था और रोज बनारस में जाकर गंगा स्नान कर आता था। किसी को भी इसका पता न चलता था। एक रोज उसकी रानी ने देखा कि राजा नहीं है। वह जैन धर्मपरायण थी। उसने अपने गुरुओं से राजा के संबंध में पूछा। जैनगुरु ज्योतिष के विद्वान विशेष थे, उन्होंने राजा का सब पता बता दिया। राजा जब लौटा तो रानी ने बताया कि वह कहाँ गया था और प्रार्थना की कि वह उसे भी बनारस ले जाया करे। राजा ने स्वीकार कर लिया। वह रानी भी बनारस जाने लगी। एक रोज मार्ग में वह मासिक धर्म से ही गई। फलतः खड़ाऊँ की यह विशेषता नष्ट हो गई। राजा को उस पर बड़ा दुःख हुआ और उसने जैनों को कष्ट देना प्रारंभ कर दिया।"<sup>449</sup> इस कहानी से विधर्मी राजाओं के राज्य में भी दिगम्बर मुनियों का प्रतिभाशाली होना प्रकट है।

अरुलनन्दि शैवाचार्य कृत "शिवज्ञानसिद्धियार" में परपक्ष संप्रदायों में दिगम्बर जैनों का "धम्मणरूप" उल्लेख है। तथा "हालास्यमाहात्म्य" में मदुरा के शैवों और दिगम्बर मुनियों के बाद का वर्णन मिलता है।<sup>450</sup>

इस प्रकार तामिल साहित्य के उपरोक्त वर्णन से भी दक्षिण भारत में दिगम्बर मुनियों का प्रतिभाशाली होना प्रमाणित है। वे वहाँ एक अत्यन्त प्राचीनकाल से धर्म प्रचार कर रहे थे।

447 Ibid., p 17

448 Ibid p 18

449 SSIJ, pt II pp 27 - 28 SC, p 243

450 IHQ, Vol IV p 564

## भारतीय पुरातत्व और दिगम्बर मुनि ।

"Chalcolithic civilisation of the Indus Valley was something quite different from the Vedic civilisation" "On the eve of the Aryan immigration the Indus Valley was in possession of a civilized and war like people"

- R B Ramprasad Chanda <sup>451</sup>

मोहन-जो-दारों का पुरातत्व और दिगम्बरत्व

भारतीय पुरातत्व में सिन्धुदेश के मोहन जोदरो और पंजाब के हरप्पा नामक ग्रामों से प्राप्ति पुरातत्व अतिप्राचीन है। वह ईस्वी सन् से तीन चार हजार वर्ष पहले का अनुमान किया गया है। जिन विद्वानों ने उसका अध्ययन किया है, वह हम परिणाम पर पहुँचे हैं कि सिन्धुदेश में उस समय एक अतीव सभ्य और क्षत्रिय प्रकृति के मनुष्य रहते थे, जिनका धर्म और सभ्यता वैदिक-धर्म और सभ्यता से नितान्त भिन्न थी। एक विद्वान ने उन्हें "ब्राह्म" सिद्ध किया है<sup>452</sup> और मनु के अनुसार "ब्राह्म" वह वेद विरोधी संप्रदाय था "जिसके लोग द्विजों द्वारा उनकी सजातीय पत्नियों से उत्पन्न हुए थे, किन्तु जो (वैदिक) धार्मिक नियमों का पालन न कर सकने के कारण सावित्री से प्रथक कर दिये गये थे।" (मनु 10/20) वह मुख्यतः क्षत्री थे। मनु एक ब्राह्म क्षत्री से ही इत्तन्, मत्स्य, लिच्छवि, नात, करण, खस और द्राविड वंशों की उत्पत्ति बतलाते हैं। (मनु 10/22) यह पहले भी लिखा जा चुका है। सिन्धु देश के उपरोक्त मनुष्य इसी प्रकार के क्षत्री थे और वे ध्यान तथा योग का स्वयं अभ्यास करते थे और योगियों की मूर्तियों की पूजा करते थे। मोहन-जो-दारों से जो कतिपय मूर्तियाँ मिली हैं उनकी दृष्टि जैन मूर्तियों के सदृश 'महासायदृष्टि' है। किन्तु ऐसी जैन मूर्तियाँ प्रायः ईस्वी पहली शताब्दि तक की ही मिलती विद्वान् प्रकट करते हैं<sup>453</sup> यद्यपि जैनों की मौन्यता के अनुसार उनके मंदिरों में बहुप्राचीनकाल की मूर्तियाँ मौजूद हैं। उस पर, हाथी गुफा के शिलालेख से कुमारी पर्वत पर नन्दकाल की मूर्तियों का होना प्रमाणित है<sup>454</sup> तथा मथुरा के 'देवा' द्वारा निर्मित जैनरूप से भगवान् पारश्वनाथ के समय में भी ध्यानदृष्टिमय मूर्तियों का होना सिद्ध है।<sup>455</sup> इसके

451 SPOIV, p 1 & 25

452 Ibid, pp 25-34

453 Ibid pp 25-26

454 JBORS

455. दीर वर्ष ४ पृ. २६६

अतिरिक्त प्राचीन जैन साहित्य तथा शौद्धों के उल्लेख से भ. पार्श्वनाथ और भ. महावीर के पहले के जैनों में भी ध्यान और योगाभ्यास के नियमों का होना प्रमाणित है। 'संयुक्तनिकम्व' में जैनों के अतिरिक्त और अविद्यार श्रेणी के ध्यानों का उल्लेख है<sup>456</sup> और "दीर्घनिकम्व" के ब्रह्मजालसुक्ता से प्रकट है कि गौतम बुद्ध से पहले ऐसे साधु थे जो ध्यान और विद्यार द्वारा मनुष्य के पूर्वजन्मों का ब्रह्मसाया करते थे।<sup>457</sup> जैन शास्त्रों में ब्रह्मणादि प्रत्येक तीर्थंकर के शिष्यसमुदाय में ठीक ऐसे साधुओं का वर्णन मिलता है, वह पहले ही लिखा जा चुका है। अतः यह स्पष्ट है कि जैन साधु एक अतीव प्राचीनकाल से ध्यान और योग का अभ्यास करते अये हैं तथा छान्द, भक्त, लिट्छवि, सातृ आदि ब्राह्म्य प्रायः जैन थे। अन्वय यह सिद्ध किया जा चुका है कि 'ब्राह्म्य' क्षत्रिय बहुत कट्टक जैन थे और उनमें से ज्येष्ठ ब्राह्म्य सिवाय 'दिगम्बर मुनि' के और कोई न थे।<sup>458</sup> इस अवस्था में सिन्धुदेश के उपरोक्त कालवर्ती मनुष्यों का प्राचीन जैन ऋषियों का भक्त होना बहुत कुछ संभव है। किन्तु मोहन जोहरों से जो मूर्तियाँ मिली हैं वह वस्त्र सयुक्त हैं और उन्हें विद्वान् लोग 'पुजारी' (Priest) ब्राह्म्यो की मूर्तियाँ अनुमान करते हैं। हमारे विचार से वे हीन-ब्राह्म्य (अमृगती श्रावकों) की मूर्तियाँ हैं। ब्राह्म्य-साधु की मूर्ति वह हो नहीं सकती, क्योंकि उसे शास्त्रों में नग्न प्रकट किया गया है। वहा 'ज्येष्ठब्राह्म्य' का एक विशेषण 'समनिचमेद्र' अर्थात् 'पुरुषस्त्रिंश से रहित' दिया हुआ है जो नग्नता का द्योतक है। हीनब्राह्म्यो की पोशाक के वर्णन में कहा गया है कि वे एक पगड़ी (निर्यन्त्र), एक लाल कपडा और एक चादी का आभूषण 'निश्क' नामक पहनते थे। उक्त मूर्ति की पोशाक भी इसी ढंग की है। माथे पर एक पट्ट रूप पगड़ी जिसके बीच में एक आभूषण जडा है, वह पहने हुये प्रकट है और वगल से निकला हुआ एक छिटदार कपडा वह ओढ़े हुये है।<sup>459</sup> इस अवस्था में इन मूर्तियों को होन ब्राह्म्यो की उक्त मूर्तियों मानना ही ठीक है और इस तरह पर यह सिद्ध है कि ब्राह्म्यक्षत्रिय एक अतीव प्राचीनकाल में अवश्य ही एक वेद - विरोधी संप्रदाय था, जिसमें ज्येष्ठब्राह्म्य दिगम्बर मुनि के अनुरूप थे। अत प्रकारान्तर से भारत का सिन्धुदेशवर्ती सर्वप्राचीन पुरातत्व भी दिगम्बर मुनि और उनकी योगमुद्रा का पोषक है।<sup>460</sup>

अशोक के शासन लेख में निम्न

सिन्धु देश के पुरातत्व के उपरान्त सम्राट अशोक द्वारा निर्मित पुरातत्व ही सर्व प्राचीन है। वह पुरातत्व भी दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व का द्योतक है। सम्राट अशोक ने अपने

456 PTS. IV, 287

457 भम्बु, पृ २१६-२२०

458 भपा, प्रस्तावना पृ ४४-४५

459 SPCIV, Plate I, Fig., 'b'

460 'SPCIV' pp. 25-33 में मोहन जोदड़ो की मूर्तियों को जिन मूर्तियों के समान और उनका पूर्ववर्ती टाइप प्रकट किया गया है।

एक ज्ञासन लेख में अजायबिका साधुओं के साथ निम्न साधुओं को भी उल्लेख किया है।<sup>461</sup>

**खण्डगिरि-उदयगिरि के पुरातत्व में दि. मुनि**

अशोक के पश्चात् खण्डगिरि उदयगिरि का पुरातत्व दिगम्बर धर्म का पोषक है। जैन सघाट खारवेल के हाथी गुफा वाले शिलालेख में दिगम्बर मुनियों का "राजस" (राजसिद्ध) रूप उल्लेख है<sup>462</sup> और उन्होंने सारे भारत के दिगम्बर मुनियों का सम्बन्ध किया था, यह पहले लिखा जा चुका है। खारवेल की पटरानी ने भी दिगम्बर मुनियों कलिग भ्रमणों के लिये गुफा निर्मित कराकर उनका उल्लेख अपने शिलालेख में निम्न प्रकार किया है:-

"अरहन्तपसादायम् कलिगानम् समनाम लेन कासितम् राज्ञो लालकसाहवीसाहसपपोतस् धुतुनाकलिगच्छक वर्तिनो श्री खारकेसस अगम्बिसीना कारितम्।"

भावार्थ - "अर्हन्त के प्रसाद या मन्दिर रूप यह गुफा कलिग देश के भ्रमणों (दिगम्बर मुनियों) के लिये कलिग चक्रवर्ती राजा खारवेल की मुख्य पटरानी ने निर्मित कराई, जो यथीह इसके पौत्र लालकस की पुत्री थी।"<sup>463</sup>

खण्डगिरि की तत्वगुफा पर जो लेख है वह बान्मुनि का लिखा हुआ है।<sup>464</sup> 'अनन्तगुफा' में लेख है कि "दोहद के दिग मुनियों भ्रमणों की गुफा" (दोहद समनानम् लेनम्)।<sup>465</sup>

इस प्रकार खण्डगिरि-उदयगिरि के शिलालेखों से ईग्वी पूर्व दूसरी शताब्दि में दिगम्बर मुनियों के कल्याणकारी अस्तित्वका पता चलता है।

खण्डगिरि-उदयगिरि पर जो मूर्तिया हैं, वे प्राचीन और नग्न हैं और उनसे दिगम्बरत्व तथा दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व का पोषण होता है। वह अब भी दिगम्बर मुनियों का मान्य तीर्थ हैं।

**मथुरा का पुरातत्व और दिगम्बर मुनि**

मथुरा का पुरातत्व ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दि तक का है और उससे भी दिगम्बर मुनियों का जनता में बहुमान्य और कल्याणकारी होना प्रगट है। वहाँ की प्रायः सब ही प्राचीन मूर्तिया नग्न-दिगम्बर हैं। एक स्तूप के चित्र में जैन मुनि नग्न पीछी व कमण्डल लिये दिखाये गये हैं।<sup>466</sup>

461 स्थम्भलेख न ६

462 'सबदिसान तापसान' पंक्ति १५ JBORS

463 बावेबो जैस्मा, पृ ६१

464 Ibid p 84

465 Ibid, p 97

466 जैसिभा, वर्ष १ किरण ४ पृ १०३

उन पर के लेख दिगम्बर मुनियों के श्रोतक है, यथा -

"नमो अर्हतां धर्मानसं आराधये गणिकायै लोण शोभिक्त्रयै धितु समण साविकाये नदाये गणिकाये वसु (ये) आर्हतादेविकुल आद्यग समा प्रयाशिल । एती पतिरुटापितो निरन्धानम् अर्हता कतनेसङ्गमातरे भग्निने धितरे पुत्रेण सर्वेन च परिजेने अर्हत् पुत्राये ।"

अर्थात् - "अर्हत् वरुणन् को नगरवारा भ्रमणो की श्रविका आराधयगणिका लोणशोभिका की पुत्री नदाय गणिका वसु ने अपनी माता, पुत्री, पुत्र और अपने सर्व कुटुम्ब सहित अर्हत् एक मन्दिर, एक आद्यग समा, ताल और एक शिला निर्माय अर्हत् के पवित्र स्थान पर बनवाये ।" 467

इसमें दानशीला श्रविका को भ्रमणो-दिगम्बर मुनियों का भक्त तथा निग्रय दिगम्बर मुनियों के लिये एक शिला बनाया जाना प्रगट किया गया है । एक आयागट पर के लेख में भी भ्रमण-दिगम्बर मुनियों का उल्लेख है । 468 प्लेट नं. 28 पर के लेख में भी ऐसा ही उल्लेख है । 469 तथा एक दिगम्बर मूर्ति पर निम्न प्रकार लेख है -

"स 15 ग्री 3 दि 1 अस्या पूर्वार्धे द्विक्र तो आर्ध जयभूतिस्व शिषीनिन अर्ध सनामिके शिषीन अर्ध वसुल ये (निर्व्वर्त्त) न लस्य धीतु 3 धु वेणि श्रेष्टिर्य धर्मपत्निये भट्टिसेनस्य (मातु) कुमरमितयो दन भगवतो (प्र) वा सब्ब तो भट्टिका ।"

अर्थात् - "(सिद्ध) स 15 ग्रीष्म के तीसरे महीने में पहले दिन को, भगवत की एक चतुर्मुखी प्रतिमा कुमरमिता के दानरूप, जो ल की पुत्री, की बहु, श्रेष्टि वेणि की प्रथम पत्नी, भट्टिसेन की माता थी, वैहिककुल के आर्ध जयभूति की शिष्या अर्ध सनामिका की प्रति शिष वसुला की इच्छानुसार (अर्पित हुई थी) 470

इसमें दिगम्बर मुनि जयभूति का उल्लेख 'आर्ध' विशेषण से हुआ है । ऐसे ही अन्य उल्लेखों से वहा का पुरातत्व तत्कालीन दिगम्बर मुनियों के सम्माननीय व्यक्तित्व का परिचायक है ।

अहिच्छत्र (बरेली) के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि ।

अहिच्छत्र (बरेली) पर एक समय नागवशी राजाओं का राज्य था और वे दिगम्बर जैन धर्मानुयायी थे । वहा के कटारी खेडा की खुदाई में डा. फुहरर सा ने एक समृद्धा सभामन्दिर खुदावा कर निकलवाया था । यह मन्दिर ई पूर्व प्रथम शताब्दि का अनुमान किया गया है और यह श्री पार्श्वनाथ जी का मन्दिर था । इसमें से मिली हुई मूर्तियां सन् 96 से 152 तक की है, जो नग्न हैं । यहा एक इटों का बना हुआ प्राचीन स्तूप भी मिला था, जिसके एक स्तम्भ पर निम्न प्रकार लेख था -

467 होलीदरवाजा से मिला आयागट - वीर, वर्ष ४ पृ 303

468 आर्धवती आयागट -- वीर वर्ष ४ पृ 308

469 JOAM, Plate No 28

470 वीर, वर्ष ४ पृ. 310

"महापार्व इन्द्रगन्धि शिष्य पार्वतीस्य कोट्टरीः"  
आचार्य इन्द्रगन्धि उक्त समय के प्रख्यात दिगम्बर मुनि थे।<sup>471</sup>

कौशाम्बी के पुरातत्व में दिगम्बर संघ।

कौशाम्बी का पुरातत्व भी दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व का पौकक है। वहा से कुभानकाल का मथुरा जैसा अयागम्बुट मिला है, जिले राजा शिवभिर के राज्य में आर्य शिवनन्दि की शिष्या बड़ी स्थविरा ब्रह्मदासा के कहने से शिवमल्लि ने अर्हत् की पूजा के लिये स्थापित किया था।<sup>472</sup> इस उल्लेख से उस समय कौशाम्बी में एक वृहत् दिगम्बर जैन संघ के रहने का पता चलता है।

कुहाऊं का गुप्तकालीन लेख दि. मुनियों का घोटक हैं।

कुहाऊं (गोरखपुर) से प्राप्त पुरातत्व गुप्तकाल में दिगम्बर धर्म की प्रचलना का घोटक है। वहा के पाषाण -स्तम्भ में नीचे की ओर जैन तीर्थंकर और साधुओं की नमन मूर्तियां हैं और उस पर निम्नलिखित शिलालेख हैं -<sup>473</sup>

"यस्योपस्थानभूमिर्नृपति-शतशिर पात-वातवाधूताः। गुप्तानां वशजस्य प्रविस्तृत्यशस्तस्य सर्वोत्तमर्द्धे ॥ राज्ये शक्रोपमस्य क्षितिपशतपते स्कन्दगुप्तस्य शान्ते । क्वं त्रिशदशैकोत्तर क-भत त में ज्येष्ठ मासे प्रपन्ने-ख्यातेऽस्मिन् ग्राम रत्ने कुकुभ इति जनैस्साधु -ससर्गपूते पुत्रो यस्तोमिलस्य प्रधुर गुण निधेर्भट्टिसोमो महार्थ तत्सून रुद्रसोम पृथलुमतिथशा व्याघरस्यन्य सञ्जो मद्रस्तस्यात्म औ-भूदिद्वज-गुरुय तिवु प्रायश प्रीतिमान्य ॥ इत्यादि"

भाव वही है कि संवत् 141 में प्रसिद्ध तथा साधुओं के संसर्ग से पवित्र कुकुभ ग्राम में ब्राह्मण-गुरु और यतियों को प्रिय मद्र नामक विप्र रहते थे, जिन्होंने पाच अर्हत्वम्य निर्मित कराये थे। इससे स्पष्ट है कि उस समय कुकुभ ग्राम में दिगम्बर मुनियों का एक वृहत् संघ रहता था।

राजगृह (बिहार) के पुरातत्व में दि. मुनियों की साक्षी।

राजगृह (बिहार) का पुरातत्व भी गुप्तकाल में वहां दिगम्बर मुनियों के बाहुल्य का परिचायक है। वहा पर गुप्तकाल की निर्मित अनेक दिगम्बर जैनमूर्तियां मिलती हैं<sup>474</sup> और निम्न शिलालेख वहा पर दिगम्बर जैन संघ का अस्तित्व प्रमाणित करता है -

471 समाजैस्मा, पृ ८१-८२ (General Cunningham) found a number of fragmentary naked Jain statues, some inscribed with dates ranging from 96 to 152 A d'

472 समाजैस्मा, पृ २७

473 पूर्व, पृ ३-४

474 SPCIV, Plate II (b)

"निर्वाणलाम्ब तपस्वि शौभे मुनेमुह्युडईप्रतिमाप्रतिष्ठे ।  
आचार्यस्वाम् मुनि वैरदेवः त्रिमुक्तये कश्यप संघीजः ४१"

आचार्य - निर्वाण की प्राप्ति के लिये तपस्वियों के शौर्य और श्री अर्जुन की प्रतिमा से प्रतिष्ठित शुभगुणा में मुनि वैरदेव की मुक्ति के लिये परम तेजस्वी आचार्य पद को रत्न प्राप्त हुआ यानि मुनि वैरदेव को मुनि संघ ने आचार्य स्थापित किया। "इस शिलालेख के निकट ही एक नग्न जैन मूर्ति का निम्न भाग उकेरा हुआ है, जिससे इसका सम्बन्ध दिगम्बर मुनियों से स्पष्ट है।<sup>475</sup>

बंगाल के पुरातत्त्व में दिगम्बर मुनि।

गुप्तकाल और उसके बाद कई शताब्दियों तक बंगाल, असम और ओड़ीसा प्रान्तों में दिगम्बर जैन धर्म बहुत प्रचलित था। नग्न जैन मूर्तियाँ वहाँ के कई जिलों में बिखरी हुई मिलती हैं। फहाडपुर (राजशाही) गुप्तकाल में एक जैनकेन्द्र था।<sup>476</sup> वहाँ से प्राप्त एक ताघ लेख दिगम्बर मुनियों के संघ का द्योतक है।

उसमें अंकित है कि "गुप्त सं 159 (सन् 479 ई) में एक ब्राह्मण दम्पति ने निगन्थ विहार की पूजा के लिये बटगोहली ग्राम में भूमिदान दी। निगन्थसंघ आचार्य गुहनन्दि और उनके शिष्यों द्वारा शासित था।"<sup>477</sup>

कादम्बर राजाओं के ताम्रपत्रों में दिगम्बर मुनि

देवगिरी (घाड़वाड) से प्राप्त कादम्बरवंशी राजाओं के ताम्रपत्र ईस्वी पाचवीं शताब्दि में दिगम्बर मुनियों के वैभव को प्रकट करती हैं। एक लेख में है कि महाराजा कादम्ब श्री कृष्णवर्मा के राजकुमार पुत्र देववर्मा ने जैन मन्दिर के लिये यापनीय संघ के दिगम्बर मुनियों को एक खेत दान दिया था। दूसरे लेख से प्रकट है कि "काकुष्ठवशी श्री शान्तिवर्मा के पुत्र कादम्ब महाराज मृगेश्वरवर्मा ने अपने राज्य के तीसरे वर्ष परलूरा के आचार्यों को दान दिया था।" तीसरे लेख में कहा गया है कि इसी मृगेश्वर वर्मा ने जैन मन्दिरों और निगन्थ (दिगम्बर) तथा श्वेतपट (श्वेतांबर) सघों के साधुओं के व्यवहार के लिये एक कालकड़ नामक ग्राम अर्पण किया था।<sup>478</sup>

उदयगिरी (विदिशा) में पाचवीं शताब्दि की बनी हुई गुफायें हैं, जिनमें जैन साधु ध्यान किया करते थे। उनमें लेख भी है।<sup>479</sup>

475 बंविऔजेस्मा, पृ १६

476 IHQ, Vol VII p 441

477 Modern Review, August 1931, p. 150

478 IA VII 33-34 व बंगालेस्मा, पृ १२६

479 बंगालेस्मा., पृ. ६६

अजन्ता की गुफाओं में दि. मुनियों का अस्तित्व

अजन्ता (खानदेश) की प्रसिद्धगुफाओं के पुरातत्व से ईस्वी सातवीं शताब्दि में दिगम्बर जैन मुनियों का अस्तित्व प्रमाणित है वहाँ की गुफा नं 13 में दिगम्बर मुनियों का संघ चित्रित है। नं 33 की गुफा में भी दिगम्बर मूर्तियों है।<sup>480</sup>

बादामी की गुफा

बादामी (बीजापुर) में सन् 650 ई की जैन गुफा उस जमाने में दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व की द्योतक है। उसमें मुनियों के ध्यान करने योग्य स्थान हैं और नग्न मूर्तिया अंकित हैं।<sup>481</sup>

घालुक्य राजा विक्रमादित्य के लेख में दिगम्बर मुनि।

लक्ष्मेश्वर (घाटवाड) की सखवस्त्री के शिला लेख से प्रगट है कि सखतीर्थ का उद्धार पश्चिमीय घालुक्यवंशी राजा विक्रमादित्य द्वितीय (शाका 656) ने कराया था और जिन पूजा के लिये श्री देवेन्द्र भट्टारक के शिष्य मुनि एकदेव के शिष्य जयदेव पंडित को भूमि दान दी थी। इससे विक्रमादित्य का दिगम्बर मुनियों का भक्त होना प्रगट है। वहाँ के एक अन्य लेख से मूलसद्य के श्री रामधन्द्राचार्य और श्रीवियज देव पंडिताचार्य का पता चलता है।<sup>482</sup> साराशत वहा उस समय एक उन्नत दिगम्बर जैन सघ विद्यमान था।

एलोरा की गुफाओं में दिगम्बर मुनि

ईस्वी आठवीं शताब्दि की निर्मित एलोरा की जैन गुफायें भी उस समय दिगम्बर मुनियों के विहार और धर्म प्रचार को प्रगट करती हैं। वहा की इन्द्रसभा नामक गुफा में जैन मुनियों के ध्यान करने और उपदेश देने योग्य कई स्थान हैं और उनमें अनेक नग्न मूर्तियाँ अंकित हैं। श्रीकाकुबलि गोमटस्वामी की भी खडगासन मूर्ति है। "जगन्नाथसभा" "छोटा कैलास" आदि गुफायें भी इसी ढंग की हैं और उनसे तत्कालीन दिगम्बरत्व की प्रधानता का परिचय मिलता है।<sup>483</sup>

राट्टराजा आदि के शिलालेखों में दिगम्बर मुनि।

सौदति (बेलगाम) के पुरातत्व में दिगम्बर मुनियों की मूर्तियों और उनका वर्णन मिलता है।<sup>484</sup> वहा एक आठवीं शताब्दी का शिलालेख है, जिमसे प्रकट है कि "मैलेयतीर्थ की कारेयशाखा में आचार्य श्री मूल भट्टारक थे, जिनके शिष्य विद्वान गणकीर्ति

480 बंगाजैस्मा, पृ ५५-५६

481 Ibid p 103

482 Ibid p 124-125

483 Ibid p 163-171

484 बंगाल जैस्मा पृ ८३-८६

वे और उनके शिष्य इत्यादि को जितने दान भूमि इन्द्रकीर्ति स्वामी थे उनका शिष्य भरह का बड़ा पुत्र राजा पुण्डरीक वा, जिसने एक जैन मन्दिर बनवाया था और उनके शिष्य भूमि का दान दिया था।" एक दूसरे सन् 983 के लेख से विदित है कि कुमदुर जैन शाखा के गुरु अनि प्रसिद्ध थे उनको चौथे राष्ट्रराजा शात ने 150 मन्जर भूमि उम्र जैन मन्दिर के लिये दी जो उन्होंने सौदास्ति में बनवाया था और उतनी ही भूमि उम्र मंदिर का उनकी स्त्री निजिकण्वे ने दे दी थी। उन दिगम्बराचार्य का नाम श्री बाहुयलीजी और वे व्याकरणार्थी थे। उस समय श्री रविचन्द्र स्वामी, अर्हन्दी शुभचन्द्र भट्टारकदेव, मौनी देव, प्रभाचन्द्रदेव मुनिगण विद्यमान थे। राजाकस्तम की स्त्री पद्मनादेवी जैनधर्म के ज्ञान व ब्रह्मज्ञान में इन्द्राणी के सम्मान थी। वह दिगम्बर मुनियों की भक्ति में दृढ़ थी।

**वासुधराजा विक्रम के लेख में दि. मुनियों का उल्लेख**

एक अन्य लेख वहीं पर वासुधराजा विक्रम के 12 वें राज्यवर्ष का लिखा हुआ है, जिसमें निम्नलिखित दिगम्बराचार्यों के नाम दिये हुए हैं -

"बलात्कारण मुनि गुणचन्द्र, शिष्य नयनदि, शिष्य श्रीधराचार्य, शिष्य चन्द्रकीर्ति, शिष्य श्रीधरदेव, शिष्य नेमिचन्द्र और वासुपूज्य त्रेविधदेव, वासुपूज्य के लघुभ्राता मुनि विद्वान मन्पाल थे। वासुपूज्य के शिष्य सर्वोत्तम साधु पदप्रभ थे। मैरिंग का वंश का अधिकारी गुरु वासुपूज्य का सेवक था।"

इस प्रकार उपरोक्त लेखों से सौदति और उम्रके प्राग्य पास में दिगम्बर मुनियों का बाहुल्य और उनका प्रभावशाली तथा राजमान्य होना प्रकृत है।

**राठौर राजाओं द्वारा मान्य दि. मुनियों के शिलालेख**

गोविन्दराय तृतीय राठौर मान्यखेट के सन् 813 क ताम्रपत्र में प्रकट है कि गणवंशी चाकरराज की प्रार्थना पर उन्होंने विजयकीर्ति कुलाचार्य क शिष्य मुनि अर्ककीर्ति को दान दिया था। अमोघवर्ष प्रथम ने सन् 860 में मान्यखेट में देवेन्द्रमुनि को भूमिदान किया था।<sup>485</sup> इनसे दिग. मुनियों का राठौर राजाओं द्वारा मान्य होना प्रमाणित है।

**मूलगुड के पुरातत्त्व में दि. संघ**

मूलगुड (घाडवाड) को 9 वीं -10वीं शताब्दी का पुगान्व भी वहा पर दिगम्बर मुनियों के प्रभुत्व का द्योतक है। वहा के एक शिलालेख में खर्जन है कि "चीकारि, जिसने जैन मन्दिर बनवाया था, उसके पुत्र नागार्थ क छोट भाता आगार्थ ने दान किया। यह आगार्थ नीति और धर्मशास्त्र में बड़ा विद्वान था। इम्ल नगर क व्यापारियां की सम्मति से 1000 पान क वृक्षों के खन को मनवश के आचार्य कनक मन की सेवा में जैन मन्दिर के निम्न अर्पण किया था। कनकसेनाचार्य के गुरु श्री वीर मनम्बामी थे, जो पूज्य पाद कुमार

<sup>485</sup> भाप्ररा भा, 3 पृ 38-39

सेनाध्यक्ष के दिगम्बर मुनियों के सघ के गुरु थे। चन्द्रनाथ मन्दिर के शिलालेख से मूलगुह के राजा महरसा की स्त्री भावती की मृत्यु का वर्णन प्रकट है।<sup>486</sup> मज़बूत यह कि मूल गुह में दिगम्बर मुनियों की एक समय प्रधानपद मिला हुआ था-वहा का शासक भी उनका भक्त था।

सुन्दी के शिलालेखों में राजमान्य दिगम्बर मुनि

सुन्दी (घाहवाह) के जैन मन्दिर विषयक शिलालेख (10वीं श) में पश्चिमीय गंगवशीय राजकुमार वटुग का वर्णन है जिसने उस जैन मन्दिर के लिये दिगम्बर गुरु को दान दिया था। जिसको उसकी स्त्री दिवल्म्बा ने सुन्दी में स्थापित किया था। राजा बुटुग गगमण्डल पर राज्य करता था और श्री नागदेव का शिष्य था। रानी दिवल्म्बा दिगम्बर मुनियों और आर्थिकाओं की परम भक्त थी। उसने छे आर्थिकाओं को समाधिमरण कराया था।<sup>487</sup> इससे सुन्दी में दिगम्बर मुनियों का राज मान्य होना प्रकट है।

कुम्भोज बाहुवलि पहाड (कोल्हापुर) श्री दिगम्बर मुनि बाहुवलि के कारण प्रसिद्ध है, जो वहां हो गये हैं और जिनकी चरण पादुका वहां मौजूद हैं।<sup>488</sup>

कोल्हापुर के पुरातत्व में दिग मुनि और शिलाहार राजा

कोल्हापुर का पुरातत्व दिगम्बर मुनियों के उत्कर्ष का द्योतक है। वहां के इरविन म्यूजियम में एक शिलालेख शाका दसवीं शताब्दि का है जिससे प्रकट है कि दण्डनायक दासी मरस ने राजा जगदेकभल्ल के दूसरे वर्ष के राज्य में एक ग्राम धर्मार्थ दिया था। उस समय यापनीयसघ पुन्नागवृक्षमूलगण राद्धान्तादिके चाता परमविद्वान् मूनि कुमार कीर्तिदेव विराजित थे।<sup>489</sup> उपरान्त कोल्हापुर के शिलाहार वशीय राजा भी दिगम्बर मुनियों के परमभक्त थे। वहां के एक शिलालेख से प्रकट है कि "शिलाहार वशीय महामण्डलेश्वर विजयादित्यने माघ सुदी 15 शाका 1065 को एक खेत और एक मकान श्री पाशर्वनाथ जी के मन्दिर में अष्टदशत्य पूजा के लिये दिया। इस मन्दिर को मूल सघ देशीयगण पुरतक गच्छ के अधिपति श्री माघनन्दि सिद्धान्तदेव (दिगम्बराचार्य) के शिष्य सामन्त कामेदव के अर्धनस्य वासुदेव ने बनवाया था। दान के समय राजा ने श्री माघनन्दि सिद्धान्तदेव के शिष्य भाणिक्यनन्दि प के चरण धोये थे।" बमनी ग्राम से प्राप्त शाका 1073 के लेख से प्रकट है कि "शिलाहार राजा विजयादित्य ने जैन मन्दिर के लिये श्री कुन्दकुन्दान्वयी श्री कुलचन्द्र मुनि के शिष्य श्रीमाघनन्दि सिद्धान्तदेव के शिष्य श्री अर्धनन्दि सिद्धान्तदेव के चरण धोकर भूमिदान किया था।"<sup>490</sup> इनसे उस समय दिगम्बर मुनियों का प्रभुत्व स्पष्ट है।

486 बंगालीयमा, पृ १२०-१२१

487 बंगालीयमा, पृ १२७

488. बंगालीयमा, पृ १५३

489 जैनमित्र वर्ष ३३ अंक ५ पृ ७१

490 बंगालीयमा, पृ १५३-१५४

## आरटाल शिला-लेख में चालुक्य राज रजित दिगम्बर मुनि

आरटाल (धाडवाड़) से एक शिलालेख शका 1045 का चालुक्यराज भूमिकमल्ल के राज्य काल का मिला है। उसमें एक जैन मन्दिर बनने का उल्लेख है तथा दिगम्बर मुनि श्री कनकचन्द्र जी के विषय में निम्न प्रकार वर्णन है - 491

"स्वस्तिकम-नियम-स्वाध्याय-ध्यान-भौनानुष्ठान-समाधिशील-गुण संपन्नरघु कनकचन्द्र सिद्धान्त देव ।"

इससे उस समय के दिगम्बर मुनियों की चरित्रनिष्ठा का पता चलता है।

## ग्वालियर और दूबकुंड के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि

ग्वालियर का पुरातत्व ईस्वी ग्यारहवीं से सोलहवीं शताब्दी तक कला पर दिगम्बर मुनियों के अभ्युदय की प्रगट करता है। ग्वालियर किले में इस काल की बनी हुई अनेक दिगम्बर मूर्तियाँ हैं, जो बाबर के विध्वंसक हाथ से बच गई हैं। उन पर कई लेख भी हैं, जिनमें दिगम्बर गुरुओं का वर्णन मिलता है।<sup>492</sup> ग्वालियर के दूबकुण्ड नामक स्थान से मिला हुआ एक शिलालेख सन् 1088 में दिगम्बर मुनियों के सद्य का परिचायक है। यह लेख महाराज विक्रमसिंह कच्छवाहा का लिखाया हुआ है, जिसने श्रावक ऋषि को श्रेष्ठीपद प्रदान किया था और जो अपने भुजविक्रम के लिये प्रसिद्ध था। इस राजा ने दूबकुण्ड के जैन मन्दिर के लिये दान दिया था और दिगम्बर मुनियों का सम्मान किया था। ये दिगम्बर मुनिगण श्री लाटवागटकण के थे और इनके नाम क्रमशः (1) देवसेन (2) कुलभूषण (3) श्री दुर्लभसेन (4) शातिसेन और (5) विजयकीर्ति थे। इनके श्री देवसेनाचार्य ग्रथरचना के लिये प्रसिद्ध थे और श्रीशातिसेन अपनी वादकला से विपक्षियों का मद चूर्ण करते थे।<sup>493</sup>

## खजुराहो के लेखों में दि. मुनि"

खजुराहो के जैन मन्दिर में एक लेख सन् 1011 का है। उस से दिगम्बर मुनि श्री वासवचन्द्र (महाराज गुरु श्री वासवचन्द्र) का पता चलता है। वह धागराना द्वारा मान्य सरदार पादिल के गुरु थे।<sup>494</sup>

491 दिजैडा, पृ ६४९

492 मद्राजैस्मा, ६५-६६

493 मद्राजैस्मा, पृ ६३-६४ - "श्रीलाटवागटकणोन्नतराहणादि माणिक्यभूतचरितोगुरु देवसेन। सिद्धान्तोद्विधोप्यवाधितधिया येनप्रमाण ध्वनि। ग्रंथेषु प्रभव. श्रियामवगती हस्तस्य नुबतोपम। ----- आस्थानाधिपतौ गुधादविगुणे श्रीभोजदेवे नृपे सम्प्रेद्यवरसेन पण्डित शिरोरत्नादिपुण्यमदान। बोनेकाश्रतसो अजेष्ट पटुताभीष्टोद्यमो वादिन। शास्त्राभौनिधि पाणगो भवदन्त श्री शान्तिसेनो गुरु ।"

494 मद्राजैस्मा, पृ ११६

## झालरापाटन में दि. मुनियों की निधिधिकायें

झालरापाटन शहर के निकट एक पहाड़ी पर दिगम्बर मुनियों के कई समाधिस्थल हैं। उन पर के लेखों से प्रगत है कि स 1066 में श्री नेमिदेवाचार्य और श्री बलदेवाचार्य ने समाधिमरण किया था।<sup>495</sup>

## अनवरराज्य के लेखों में दि. मुनि

अनवर राज्य के नौगमा ग्राम में स्थित दि. जैन मन्दिर श्री अनन्तनाथ जी की एक कार्यालयी मूर्ति है जिसके आसन पर लिखा है कि स 1175 में आचार्य विजय कीर्ति के शिष्य नरेन्द्र कीर्ति ने उसकी प्रतिष्ठा की थी।<sup>496</sup>

## देवगढ़ ( झांसी ) के पुरातत्व में दि. मुनि-

देवाह ( झांसी ) का पुरातत्व वहाँ तेरहवीं शताब्दि तक दिगम्बर मुनियों के उत्कर्ष का द्योतक है। नमन मुनिया में मारा पहाड़ ओत-प्रोत है। उन पर के लेखों में प्रगत है कि 11वीं शताब्दि में वहाँ एक शुभदवनाथ नामक प्रसिद्ध मुनि थे। स 1209 के लेख में दिगम्बर गुरुओं की भक्त आर्यिका धर्मश्री का उल्लेख है। स 1224 का शिन्नालेख पण्डित मुनि का वर्णन करता है। स 1207 में वहाँ आचार्य जयकीर्ति प्रसिद्ध थे। उनके शिष्यों में भावनन्दि मुनि तथा कई आर्यिकायें थीं। धर्म नन्दि, कमलदेवाचार्य, नागसेनाचार्य, व्याख्याता माघनन्दि लोकनन्दि और गुणनन्दि नामक दिगम्बर मुनियों का भी उल्लेख मिलता है। स 222 की मूर्ति मुनि आर्यिका धावक श्राविका, इस प्रकार धनुर्विधिमघ के लिये बनी थी।<sup>497</sup>

मर्ज यह कि देवगढ़ में लगातार कई शताब्दियाँ तक दिगम्बर मुनिया का दारदीरा रहा था।

## बिजौलिया ( मेवाड़ ) में दिग. साधुओं की मूर्तियां-

बिजौलिया ( पार्श्वनाथ-मेवाड़ ) का पुरातत्व भी वहाँ पर दिगम्बर मुनिया के उत्कर्ष को प्रगत करता है। वहाँ पर कई एक दिगम्बर मुनिया की नमन प्रतिमायें बनी हुई हैं। एक

495 Ibid , p 191

496 Ibid , p 195

497 देज्ञे , पृ १३-२५

मन्दिरोपर लीखतरी के मुनियों के साथ दिगम्बर मुनिगण के प्रतिबिम्ब व दर्शनलिनक अंकित हैं। दो मुनि राज शतरत्नवाद्याय करते प्रगट किये हैं। उनके पास कम्बल पीछे रखे हुये हैं। वे अजमेर के चौहान राजाओं द्वारा मान्य थे।<sup>498</sup> शिलालेख से प्रगट है कि यहां पर भी मूलसंघ के दिगम्बरध्यायी श्री बसन्त कीर्ति देव, वैशखीकीर्तिदेव, मदनकीर्ति देव, धर्मचन्द्रदेव, रत्नकीर्तिदेव, प्रभाचन्द्रदेव, पद्मनन्ददेव और शुभचन्द्र देव विमानन थे।<sup>499</sup> इनके चौहान राजा पृथ्वी राज और सोमेश्वर ने जैन मन्दिर के लिये ग्राम भेंट किये थे।<sup>500</sup> साराशत बीजोल्या में एक समय दिगम्बर मुनि प्रभावशाली हो गये थे।

## अजमेरी की गुफाओं में दि. मुनि

अजमेरी और अंकरई (नासिक जिल्ला) की जैन गुफाये वहां पर 12 वीं-13 वीं शताब्दि दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व को प्रकट करती हैं। पांडुसेना गुफाओं का पुरातत्व भी इसी बात का समर्थक है।<sup>501</sup>

## बेलगाम के पुरातत्व में राजमान्य दि. मुनि

बेलगाम का पुरातत्व वहा पर 12वीं -13वीं शताब्दियों में दिगम्बर मुनियों के महत्व को प्रगट करते हैं, जो राज मान्य थे। यहां के राट्टराजाओं ने जैनमुनियों का सम्मान किया था यह उनके लेखों से प्रगट है। मन् 1205 के लेख में वर्णन है कि बेलगाम में जब राट्टराजा कीर्तिवर्मा और मन्लिकार्जुन राज्य कर रहे थे तब श्री शुभचन्द्र भट्टारक की सेवा में राजा वीधा के बनाए गए राट्टों के जैन मन्दिर के लिये भूमिदान किया गया था। एक दूसरा लेख भी इन्ही राजाओं द्वारा शुभचन्द्र जी को अन्यभूमि अर्पण किये जाने का उल्लेख करता है। इसमें कातवीर्य की रानी का नाम पद्मावती लिखा है।<sup>502</sup> सचमुच उस समय वहा पर दिगम्बर मुनियों का काफी प्रभुत्व था।

बेलगामान्तर्गत कोन्नूर स्थान से भी राट्टराजा का एक शिलालेख शका 1009 का मिला है जिसका भाव है कि "चालुक्यराजा जयकर्ण के अधीन राट्टराज तण्डलेश्वर सेन कोन्नूर आदि प्रदेशों पर राज्य करता था, तब बलात्कारगण के वशधरों को इन नगरों का अधिपति उसने बना दिया था। यहा के जैन मन्दिरों को चालुक्य राजा कोन्न व जयकर्ण द्वारा दान दिये जाने का उल्लेख मिलता है।<sup>503</sup> इनसे दिगम्बर मुनियों का महत्व स्पष्ट है।

498 दिजैडा , पृ ५०१

499 मग्राजैस्मा , पृ १३३

500 राई, पृ ३६३

501 बंग्राजैस्मा , पृ ५६-५६

502 बंग्राजैस्मा . पृ ६४-६४

503 Ibid pp 80-81

बेलगाम जिले के कलखोले ग्राम में एक प्राचीन जैनमंदिर है, जिसमें एक शिलालेख राष्ट्रराज कीर्तवीर्य चमुर्य और खल्लिकार्जुन का लिखाया हुआ मौजूद है। उस में श्री आदिनाथ जी के मंदिर को भूमिदान देने का उल्लेख है। उसमें श्रीआदिनाथ जी के मंदिर को भूमिदान देने का उल्लेख है। मंदिर के गुरु श्री मूलसंपद कुन्दकुन्दार्थर्व की शाखा वृषसंगी वंश के थे। इस वंश के तीन गुरु मन्त्रधारी थे, जिनके एक शिष्य सैदासिक नेमिघ्नद्र थे। श्रीनेमिघ्नद्र के शिष्य शुभवन्द्र थे, जिन्होंने दिगम्बर धर्म की बहुत उन्नति की थी। उनके शिष्य श्री स्वस्तिकीर्ति थे।<sup>504</sup>

बेलगाम जिले में स्थित रायबाग ग्राम में भी एक जैन शिलालेख राष्ट्रराज कीर्तवीर्य का है। उससे विदित है कि कीर्तवीर्य ने भ. शुभवन्द्र को शाका 1124 में राटों के उन जैन मंदिरों के लये दान दिया था जिन्हें उसकी माता चन्द्रिकादेवी ने स्थापित किया था।<sup>505</sup> इससे चन्द्रिकादेवी का दि. मुनियों और तीर्थंकरों का भक्त होना प्रगट है।

### बीजापुर किले की मूर्तियों दि. मुनियों की द्योतक

बीजापुर के किले की दिगम्बर मूर्तियां सं. 1001 में श्री विजयसूरी द्वारा प्रतिष्ठित हैं।<sup>506</sup> उनसे प्रकट है कि बीजापुर में उस समय दिगम्बर मुनियों की प्रधानता थी।

#### तेवरी की दि. मूर्ति

तेवरी (जबलपुर) के तालाब में स्थित दि. जैन मंदिर की मूर्ति पर बारहवीं शताब्दि का लेख है कि "मानादित्य की स्त्री रोज नमन करती हैं"।<sup>507</sup>

इससे वहां पर जैनमुनियों का राजमान्य होना प्रगट है।

### दिल्ली के मूर्ति लेखों में दि. मुनि

दिल्ली नयामंदिर कटघर की मूर्तियों पर एक लेख 15 वीं शताब्दि में वहां दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व प्रगट करते हैं। श्री आदिनाथ की मूर्ति पर लेख है कि "स 1428 ज्येष्ठ सुदि 12 सोमवार से काष्ठासघे माथुरान्कये भ. श्रीदेवसेनदेवासत्पदे त्रयोदशविधध्यारित्रेनालकृता सकल विमल मुनिमंडली शिष्य शिखामणय प्रतिष्ठाचार्य क्व श्री विमल सेनदेवास्तेषामुकपदेनेन जाइसवालान्कये सा पुरइपति। इत्यादि।"

504 Ibid pp 82-83

505 Ibid p 87

506 Ibid p 108

507 दिउँडा, पृ २८७

यहाँ मुनि विशालकीर्ति के शिष्य अजिंक्य गुण श्री विमलकीर्ति थे, यह बात उसी मंदिर की एक अन्य मूर्ति पर के लेख से प्रकट है।

### लखनऊ के मूर्ति-लेख में निगुन्याचार्य

लखनऊ घाँक के जैन मंदिर में विराजमान श्री अग्रदिनाथ की मूर्ति पर के लेख से विदित है कि सं. 1503 में श्री भू. सकलकीर्ति के शिष्य श्री निगुन्याचार्य विमलकीर्ति थे, जिनका उपदेश और विहार छाँओर होता था।

घाँकलपट्टी (बगाल) के जैन मंदिर में विराजमान दशधर्म यंत्रलेख से प्रकट है कि सं. 1586 में आचार्य श्री रत्नकीर्ति के शिष्य मुनि ललितकीर्ति विद्यमान थे, जिनकी भक्ति भ्रमरी धाई करती थी।<sup>508</sup>

### कलकत्ता की मूर्तियाँ और दि. मुनि

यहाँ के एक अन्य सम्यक्ज्ञान यंत्र के लेख से विदित होता है कि सं. 1634 में विहार में भू. धर्मचन्द्र जी के शिष्यमुनि श्री वासुनन्दी का विहार और धर्मप्रचार होता था।<sup>509</sup>

### एटा, इटावा और मैनपुरी के पुरातत्त्व में दिगम्बर मुनि

कुराकली (मैनपुरी) के जैनमंदिर में विराजमान सम्यक्दर्शन यंत्र पर के लेख से प्रकट है कि सं. 1578 में मुनि विशालकीर्ति विद्यमान थे। उनका विहार समुक्त प्रान्त में होता था।<sup>510</sup> अलीगंज (एटा) के लेखों से मुनि माघनंदि और मुनि धर्मचन्द्र जी का पता चलता है।<sup>511</sup> इटावा नभियं जी पर कतिपय जैन स्तूप हैं और उन पर के लेख से यहाँ अठारवीं शताब्दि में मुनि विन्ध्यसागरजी का होना प्रमाणित है।<sup>512</sup>

उधर पटना के श्री हरकचंद वाले जैन मंदिर में स. 1964 की बनी हुई एक दिगम्बर मुनि की काष्ठमूर्ति विद्यमान है।<sup>513</sup>

508 जैप्रबलेस पृ २५

509 जैप्रबलेस, पृ २६

510 प्राजैलेस, पृ

511 Ibid., p 70

512. Ibid., pp 90-91 .

513 Mr Aytaprasada, Advocate, Lucknow reports "Patna Jain temple renovated in 1964 V.S by daughter-in-law of Harakchand On the entrance door is the life-size image in wood of a muni with a Kamandal in the right hand & the broken end of what must have been a pitch in the left."

सारांशत उत्तरभारत और महाराष्ट्र में प्राचीनकाल से बराबर दिगम्बर मुनि होते आये हैं, यह बात उक्त पुरातत्व विषयक साक्षी से प्रमाणित है। अब यह आश्चर्यक नहीं है कि और भी अनगिनत से शिलालेख आदि का उल्लेख करके इस व्याख्या को पुष्ट किया जाव। यदि सबही जैन शिलालेख यहां लिखे जायें तो इस ग्रंथ का आकार-प्रकार तिगना-चौगुना बढ़ जाय, जो पाठकों के लिये अरुचिकर होगा।

## दक्षिण भारत का पुरात्व और दि. मुनि

अच्छा तो अब दक्षिण भारत के शिलालेखादि पुरातत्व पर एक नजर डाल लीजिये। दक्षिण भारत की पाण्ड्यमलय आदि गुफाओं का पुरातत्व एक अति प्राचीनकाल में बहान पर दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व प्रमाणित करता है। अनुमनामले (द्राक्ष्यन्कोर) की गुफाओं में दिगम्बर मुनियों का एक प्राचीन आश्रम था। वहां पर दीर्घकाय दिगम्बर मूर्तियाँ अंकित हैं। दक्षिण देश के शिलालेखों में म्दुरा और रामनद जिलों से प्राप्त प्रसिद्ध ब्राह्मीलिपि के शिलालेख अति प्राचीन हैं। यह अशोक की लिपि में लिखे हुये हैं। इसलिये इनको ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दि का समझना चाहिये। यह जैन मंदिरों के पास बिखरे हुये मिले है और इनके निकट ही तीर्थंकरों की नग्न मूर्तिया भी थी। उत इनका सबध जैन धर्म से होना बहुत कुछ संभव है। इनसे स्पष्ट है कि ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दि से ही जैन मुनि दक्षिण भारत में प्रचार करने लगे थे।<sup>514</sup> इन शिलालेखों के अतिरिक्त दक्षिण भारत में दिगम्बर मुनियों से सम्बन्ध रखने वाले सैकड़ों शिलालेखों हैं। उन सबको यहाँ उपस्थित करना असम्भव है। हा, उनमें से कुछ एक का परिचय हम यहां पर अंकित करना उचित समझते हैं। अकेले श्रवणवेलगोल में ही इतने अधिक शिलालेख हैं कि उनका सम्पादन एक बड़ी पुस्तक में किया गया है। अस्तु

## श्रवणवेलगोल के शिलालेखों में प्रसिद्ध दिगम्बर साधुगण

पहले श्रवण वेलगोल के शिलालेखों से ही दिगम्बर मुनियों का महत्व प्रमाणित करना श्रेष्ठ है। शक स 522 के शिलालेख से वहां पर श्रुतकेवली भद्रबाहु और मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त का परिचय मिलता है। इन दोनों महानुभावों ने दिगम्बर वेप में श्रवणवेलगोल को पवित्र किया था।<sup>515</sup> शक स 622 के लेख में मौनिगुरु की शिष्या नागमति को तीन मास का व्रत धारण करके समाधिभरण करते लिखा है। इसी समय के एक अन्य लेख में

514. SSIJ, pt I pp 33-35

515. जैशिस, पृ १-२

चरितार्थी नामक मुनि का उल्लेख है।<sup>516</sup> अश्विनी, बालदेव, पट्टाङ्गिरस, उग्रसेन गङ्गुलसेन, पेरुमानु, उल्लिखल्ल, तीर्थद, कुम्भपक आदि दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व भी इसी समय प्रमाणित है।<sup>517</sup> शक सं 896 के लेख से प्रमत्त है कि गग राजा मारसिंह ने अनेक लड़ाइयों लड़कर अपना भूजयिक्रम प्रगट किया था और अन्त में अजितसेनाचार्य के निकट बब्रपुर में समाधिभरण किया था।<sup>518</sup>

## तार्किक चक्रवर्ती श्री देवकीर्ति

शक सम्वत् 1085 के लेख से तार्किक चक्रवर्ती श्री देवकीर्ति मुनि का तथा उनके शिष्य लक्ष्मन्दि, माध्वेन्दु और त्रिभुवन्मन्त्र का पता चलता है। उनके विषय में कहा है -

"कुर्व्वेन कपिल-पादि वनोपग्रहये  
 चक्रवर्तिक्यादि मकराकर काड्याग्नये ।  
 बौद्धोपवादितिनिरप्रविभेदभानवे  
 श्रीदेवकीर्तिमुनये कविकादियानिने ॥"

x x x

"घतुर्मुख घतुर्व्वर्षत निर्गमागमदुस्सहा ।  
 देवकीर्तिमुखाभोजे नृत्वतीति सररवती ॥"

सचमुच मुनि देवकीर्तिजी अपने समय के अद्वितीय कवि, तार्किक और वक्ता थे। वे महामण्डलाचार्य और विद्वान और उनके समक्ष सांख्यिक, चार्वाक, नैयायिक, वेदान्ती, बौद्ध आदि सभी दार्शनिक हार मानते थे।<sup>519</sup>

## महाकविमुनि श्री श्रुतकीर्ति

उक्त समय के एक अन्य शिनालेख में मुनि देवकीर्ति का गुरुपरम्परा भी है, जिससे स्पष्ट है कि मुनि कन्नकनन्दि और देवचन्द्र के भ्राता श्रुतकीर्ति त्रै विद्य मुनि ने देवचन्द्र सदृश विपक्षवादियों को पराजित किया था और एक चमत्कारी काव्य राधव पाण्डवीय की रचना की थी, जो आदि से अन्त को व अन्त से आदि का, दान और पढ़ा जा सक। इससे प्रकट है कि उपरोक्त मुनि देवकीर्ति के शिष्य यादव-नरेश नार्गसिंह प्रथम के प्रसिद्ध सेनापति और मंत्री हुल्लप थे।<sup>520</sup>

516 Ibid p 3

517 Ibid pp 4-18

518 Ibid p 20

519 जैशिसं., पृ २३-२४

520 Ibid pp 24-30

## श्री शुभचन्द्र और रानी जयकण्ठ्ये

शक सं. 1099 के लेख में मंत्री नागदेव के गुरु श्री नयकीर्ति योगीन्द्र व उनकी गुप्तपरंपरा का उल्लेख है।<sup>521</sup> शक सं. 1045 के लेख से प्रगत है कि होयसाल महाराज भगन्तरेण विष्णुवर्द्धन ने अपने गुरु शुभचन्द्र देव की निषद्या निर्माण कराई थी। इनकी भावना जयकण्ठ्ये की जैन धर्म में दृढ़ भ्रष्टा थी और वह दिगम्बर मुनियों का दानादि देकर सत्कार किया करती थी।<sup>522</sup> उनके विषय में निम्नाप्रकार उल्लेख है -

"दीरेये जयकण्ठिकययेगी भुवनदोल् चारित्रदोल् शीलदोल्  
पर श्रीजिनपूजेवोल् सकलदानाशघटर्बदोल् सत्यदोल् ।  
गुरुपादाभ्युजभवितवोल् विमयदोल् भयवर्कसकन्दो-  
दरिदं मग्गिसुतिर्यं पेष्पिवेहेवोल् यत्तम्बकान्ताजगम् ।।"

## श्री गोल्लाचार्य प्रभूत अन्य दिगम्बराचार्य

शक सं. 1037 के लेख में है कि मुनि त्रैकाल्ययोगी के तप के प्रभाव से एक ब्रह्म राक्षस उनका शिष्य हो गया था। उनके स्मरण मात्र से बड़े-बड़े भूत भागते थे, उनके प्रताप से करंज का तैल घृत में परिवर्तित हो गया था। गोल्लाचार्य मुनि होने के पहले गोल्न्देश के नरेश थे। नून चन्दिल नरेश के वंश चड्डामणि थे। सकलचन्द्रमुनि के शिष्य मेघचन्द्र त्रैविद्य थे, जो सिद्धान्त में वीरसेन, तर्क में अकल्क और व्याकरण में पूज्यपाद के समान विद्वान् थे।<sup>523</sup> शक सं. 1044 के लेख में दण्डनायक गगराज की धर्मपत्नी लक्ष्मीमति के गुण, शील और दान की प्रशंसा है। वह दिगम्बराचार्य श्री शुभचन्द्र जी की शिष्या थी। इन्हीं आचार्य की एक अन्य धर्मात्मा शिष्या राज सम्मानित चामुण्ड की स्त्री देवमति थी।<sup>524</sup> शक सं. 1068 के लेख में अन्य दिगम्बर मुनियों के साथ श्री शुभकीर्ति आचार्य का उल्लेख है, जिनके सम्मुख बाद में बौद्ध, मीमांसकादि कोई भी नहीं ठहर सकता था। इसी में श्री प्रभाचन्द्र जी की शिष्या विष्णुवर्द्धन नरेश की पटरानी शान्तलदेवी की धर्म परावणता भी उल्लेख है।<sup>525</sup>

शक सं. 1050 के लेख में श्री महावीर स्वामी के बाद दि मुनियों की शिष्यपरंपरा का बखान है जिनमें भुतकेवली भद्रबाहु और सघाट चन्द्रप्रतापीय का भी उल्लेख है। कुन्दकुन्दाचार्य के चारित्र गुणादि का परिचय भी एक श्लोक द्वारा कराया गया है।

521 Ibid pp 33-42

522 Ibid pp 43-49

523 Ibid pp 56-66

524 Ibid pp 67-70

525 Ibid pp 90-81

## श्री सुन्दरुण्य और समन्तभद्र आचार्य

इन आचार्य को एक अन्य शिलालेख में दूसरांश का अग्रणी लिखा है। उन्होंने चारित्र की श्रेष्ठता से चारणसद्वि प्राप्त की थी, जिसके कल से वह पृथ्वी से चर अंगुल ऊपर चरते थे।<sup>526</sup> श्री समन्तभद्राचार्य जी के विषय में कहा गया है।

पूर्व घाटलिपुत्र-कथं कथे भेरी नवा ठाड़िता  
परधान्यासव-सिन्धु टरक किवे कांचीपुरे वैदिजे।  
प्राप्तोऽडंकरवाटकं बहु भटं विद्योत्कटं संकटं  
पादात्तौ विद्यराज्यङ्गनरपते शार्दूलविकोडितम् ॥ 7 ॥  
अबद्ध-स्तवदतिष्ठादिति स्फुट पद्मवाचत धृज्जटिरपिजह्वा।  
वादिनि समन्तभद्रे स्थितवतितवसदसि भूतकास्मान्मेवां ॥ 18 ॥”

भाव लक्षी है कि श्री समन्तभद्रस्वामी ने पहले घाटलिपुत्र नगर में कादभेरी बजाई थी। उपरान्त वह मालव, सिन्धु पंजाब कांचीपुर, विदिशा आदि में वाद करते हुये करहाटक नगर (कराड) पहुंचे थे और वहां की राजसभा में वाद गर्जना की थी। कहते हैं कि वादी समन्तभद्र की उपस्थिति में हस्तुराई के साथ स्पष्ट, शीघ्र और बहुत बोलेने वाले धूर्जटिकी जिसका ही जब शीघ्र अपने बिल में घुस जाती है उसे कुछ बोल नहीं आता- तो फिर दूसरे विद्वानों की तो क्या ही क्या है? उनका अस्तित्व तो समन्तभद्र के सामने कुछ भी महत्व नहीं रखता। सचमुच समन्तभद्राचार्य जैनधर्म के अनुपम रत्न थे। उनका वर्णन अनेक शिलालेखों में गौरवरूप से किया गया है। तिस्मकूडलु तरसीपुर तालुके के शिलालेख न 105 निम्न पद्य में उनके विषय में ठीक ही कहा गया है कि -

समन्तभद्रस्संस्तुत्य कस्य न स्वान्मुनीश्वर'।  
वाराणसीश्वरस्वाधोभिर्जिता वेन विद्विष' ॥

अर्थात् - "वे समन्तभद्र मुनीश्वर जिन्होंने वाराणसी( बनारस ) के राजा के सामने शत्रुओं को मिथैकान्तवादियों को परास्त किया है, किसके स्तुतिपात्र नहीं है? वे सभी के द्वारा स्तुति किये जाने के योग्य हैं।"

शिवकोटी नामक राजा ने श्री समन्तभद्रजी के उपदेश से ही जैनेन्द्रिय दीक्षा ग्रहण की थी।

## श्री वक्रग्रीव आदि दिगम्बराचार्य

दिगम्बराचार्य श्री वक्रग्रीव के विषय में उपरोक्त अथर्ववेद गौतमीय शिल्पा लेख बतता है कि वे छ मास तक उर्व भस्म का उर्व्य करने वाले थे। श्री पात्रकेतरी गुरु त्रिलोक्य सिद्धान्त के स्रष्टा हैं। श्रीवर्द्धनदेव धुडामणि काव्य के कर्ता कवि दण्डी द्वारा रच्युत थे। स्वामी महेश्वर ब्रह्मराक्षसों द्वारा पूजित थे। अक्सर स्वामी बौद्धों के विजेता थे। उन्होंने साहस युग नरेश के सन्मुख, हिमशौक्ल नरेश की सभा में उन्हें परास्त किया था। विमलचन्द्र मुनि ने शैव पाशुपतादिव्यादियों के लिये शत्रुभयकर के भवनद्वार पर नेटिस लगा दिया था। पर वादिमल्ल ने कृष्ण राज के समक्ष वाद किया था। मुनि वादिराज ने चालुक्य चक्रेश्वर जयसिंह के कटक में कीर्ति प्राप्त की थी। आचार्य शान्तिदेव होयशाल नरेश विनयादित्य द्वारा पूज्य थे। घनमुमुख देव मुनिराज ने पाण्ड्य नरेश से 'स्वामी' की उपाधि प्राप्त की थी और आद्यकम्पलनरेश ने उन्हें घनमुमुख देव रूपी सम्मानित नाम दिया था। गर्ज वह कि यह शिल्प लेख दिग, मुनियों के गौरव गाय्या से समन्वित है।<sup>527</sup>

## दिगम्बराचार्य श्री गोपनन्दि

शक सं. 1022 (न. 55) के शिल्पा लेख से जाना जाता है कि मूल संघ देशीयाण आचार्य गोपनन्दि बहु प्रसिद्ध हुए थे। 'वह बड़े भारी कवि और तर्क प्रवीण थे। उन्होंने जैन धर्म की दैसी ही उन्नति की थी जैसी गगनरेशों के समय में हुई थी। उन्होंने धूर्जटिकी जिह्वा को भी स्थगित कर दिया था।' देशदेशान्तर में विहार करके उन्होंने साख्य, बौद्ध, चार्वाक, जैमिनि, लोकायत आदि विपक्षी मतों को हीनप्रभ बना दिया था। वह परमतप के निधान, प्राणीमात्र के विदेशी और जैन शासन के सकल कलापूर्ण चन्द्रमा थे।<sup>528</sup> होयसलनरेश एरेया उनके शिष्य थे, जिन्होंने कई ग्राम उन्हें भेट किये थे।<sup>529</sup>

## धारानरेश पूजित प्रभाचन्द्र

इसी शिल्पा लेख में मुनि प्रभाचन्द्र जी के विषय में लिखा है कि वे एक सफल वादी थे और धारानरेश भी ने अपना शीश उनके पवित्र वस्त्रों में रक्खा था।<sup>530</sup>

527 जैशिस, पृ २०१-२२४

528 जैशिस, पृ ११७ "परमतपो निधान, वसुधैककुटुम्बजैनशानाम्बर-परिपूर्णचन्द्र-सकलामग्न - तत्त्व-पदार्थ-शास्त्र-विस्तर-वचनाभिगम गुण-रत्न-विभूषण गोपणान्ति ।"

529 जैशिस, पृ ३६५

530 जैशिस, पृ ११८

## श्री दामनन्दि

श्री दामनन्दि मुनि को भी इस शिलालेखों में एक महावादी प्राप्त किया गया है, जिन्होंने बौद्ध, नैयायिक और वैष्णवों को शास्त्रार्थ में परास्त किया था। महावादी 'विष्णु भट्ट' को परास्त करने के कारण वे 'महावादी विष्णुभट्ट घरट्ट' कहे गये हैं।<sup>531</sup>

## श्रीजिनचन्द्र

श्री जिनचन्द्र मुनि को यह शिलालेख व्याकरण में पूज्यवाद, तर्क में भट्टाकलस और साहित्य में भारवि बतलाता है।<sup>532</sup>

## चालुक्यनरेश पूजित श्री वासवचन्द्र

श्री वासवचन्द्र मुनि ने चालुक्य नरेश के कटक में 'बाल-सरस्वती' की उपाधि प्राप्त की थी, वह भी इस शिलालेख से प्राप्त है। स्याद्वाद और तर्क शास्त्र में प्रवीण थे।<sup>533</sup>

## सिंहलनरेश द्वारा सम्मानित यशः कीर्ति मुनि--

श्री यश कीर्ति मुनि को उक्त शिलालेख सार्यक नाम बताता है। वे विशाल कीर्ति को लिये हुये स्याद्वाद सूर्य ही थे। बौद्धादि वादियों को उन्होंने परास्त किया था। तथा सिंहल-नरेश के उनके पूज्यपादों का पूजन किया था।<sup>534</sup>

## श्री कल्याण कीर्ति

श्री कल्याण कीर्ति मुनि को उक्त शिलालेख जीवों के लिये कल्याण कारक प्राप्त करता है। वह शाकनी आदि वाधाओं को दूर करने में प्रवीण थे।<sup>535</sup>

- 
- 531 "बौद्धोद्धर-शम्भ नयायिक-कुज्ज-कुज्ज-विधु-विम्ब ।  
श्री दामनन्दिविबुध क्षुद्र-पहावादि-विष्णुभट्ट-घरट्ट ॥ १६११" - जैशिस, पृ ११८
- 532 जैनेन्द्र पूज्य ( पाद ) सकलसमयतक च भट्टाकलक ।  
साहित्ये भारविस्मयात्कवि गमक-महावाद-वारिमन्त्र-रुन्द ।  
गीते वाद्ये च नृत्ये दिशि विदिशि च सवति सत्कीर्ति मूर्ति ।  
स्थेयाशुक्लियोगिवृन्दार्तितपद जिनचन्द्रो वितन्द्रोमुनीन्द्र ॥ ।
- 533 जैशिस, पृ ११६- "चालुक्य-कटक-मध्ये बाल-सरस्वतीरिति प्रसिद्धि प्राप्त ।"
- 534 "श्रीमान्यश कीर्ति-विशालकीर्ति स्मयाद्वाद तर्काब्ज विबोधनाबर्क ।  
बौद्धादि वादी द्विप कुम्भ भेदी श्री सिंहलाधीश कृतागर्ध पाद्य ॥ २६ ।
- 535 कल्याणकीर्ति नामाभूद्भव्य कल्याण कारक  
शाकिन्यादि ग्रहणाद्य निहाटन दुर्हर ॥ - जैशिस, पृ १२१

श्री त्रिमुष्टि मुनीन्द्र बड़े सैद्धांतिक ब्रह्मज्ञेय गये हैं। वे तीन बूढ़ी अन्न का ही आहार करते थे। सारांश यह कि उक्त शिलालेख दिगम्बर मुनियों की गौरव गाथा को जानने के लिये एक अच्छा साधन है।<sup>536</sup>

## वादीन्द्र अभयदेव

शक सं. 1320 (नं. 105) के शिलालेख में भी अनेक दिगम्बराचार्यों की कीर्ति गाथा का बखान है। वादीन्द्र अभयदेवसूरि ने बौद्धादि परवादियों को प्रतिभाहीन बना दिया था। यही बात आचार्य चारुकीर्ति के विषय में कहीं गई है।<sup>537</sup>

## होयसाल वंश के राज गुरु दि. मुनि

शक सं. 1205 (नं. 129) में होयसाल वंश के राजगुरु भगवणहल्लवार्य माधमन्दि का उल्लेख है, जिनके शिष्य केलगोल के जौहरी थे।<sup>538</sup>

## योगी दिवाकरनन्दि

नं. 139 के शिलालेख में योगी दिवाकरनन्दि तथा उनके शिष्यो का वर्णन है। एक गन्ती नामक भद्रमहिला ने उनसे दीक्षा लेकर समाधिभरण किया था।<sup>539</sup>

## एक सौ आठ वर्ष तप करने वाले दि. मुनि

नं. 159 शिलालेख प्रगट करता है कि कालन्दूर के एक मुनीराज ने कटवप्र पर्वत पर एक सौ आठ वर्ष तक तप करके समाधिभरण किया था।<sup>540</sup>

गर्ज यह है कि भ्रवणखोलगोल के प्रायः सब ही शिलालेख दिगम्बर मुनियों की कीर्ति और यज्ञ को प्रगट करते हैं और राजा और रक सब ही का उन्होंने उपकार किया था। रणक्षेत्र में पहुंच कर उन्होंने वीरों को सन्मार्ग सुझाया था। राजा रानी, स्त्री-पुरुष, सब ही उनके भक्त थे।

536. "मुष्टि त्रय प्रकृतामन तुष्ट शिष्ट प्रिय त्रिमुष्टिमुनीन्द्र ।"

537. जैशिस, पृ. १६६-२०७

538. Ibid., p 253

539. Ibid., p 289

540. Ibid., p 308

## दक्षिण भारत के अन्य शिला लेखों में दिग. मुनि

धरुणबेलगोल के अतिरिक्त दक्षिण भारत के अन्य स्थानों से भी अनेक शिलालेख मिले हैं, जिन्से दिगम्बर मुनियों का गौरव प्रकट होता है। उनमें से कुछ का संग्रह प्रो. शेरवगरि राव ने प्रकट किया है, जिन्से यह सिद्ध होता है कि दिगम्बर मुनि इन शिलालेखों में यम-नियम-स्वाध्याय-ध्यान धारण मीनानुष्ठान-जप-समाधि -शीलानुष्ठान-सम्पन्न लिखे गये हैं।<sup>541</sup> उनका यह विशेषण उन्हें एक सिद्ध योगी प्रकट करता है। प्रो सा उनके विषय में लिखते हैं कि -

"From these epigraphs we learn some details about the great ascetics and acharyas who spread the gospel of Jainism in the Andhra-karnatadesa They were not only the leaders of lay and ascetic disciples, but of royal dynasties of warrior clans that held the destinies of the peoples of these lands in their hands "<sup>542</sup>

भावार्थ - "उक्त शिलालेख संग्रह से उन महान् दिगम्बर मुनियों और आचार्यों का परिचय मिलता है, जिन्होंने आंध्रकर्णाट देश में जैन धर्म का सदेश विस्तृत किया था। वे मात्र ध्रावक और साधु शिष्यों के ही नेता नहीं थे, बल्कि उन क्षत्रिय कुलों के राजवशों के नेता थे कि जिनके हाथों में उन देशों की प्रजा के भाग्य की बागडोर थी।"

## दिगम्बराचार्यों का महत्वपूर्ण कार्य

सद्यमुच दिगम्बर मुनियों ने बड़े बड़े राज्यों की स्थापना और उनके सचालन में गहरा भाग लिया था। पुल्ल ( मद्रास ) के पुरातत्त्व से प्रकट है कि एक दिगम्बराचार्य ने असभ्य कुटुम्बों को जैन धर्म में दीक्षित करके सभ्य शासक बना दिया था। वे जैन धर्म के महान् रक्षक थे और उन्होंने धर्म लगन से प्रेरित हो कर बड़ी-बड़ी लड़ाइया लड़ी थीं।<sup>543</sup> उनसे ही क्या, बल्कि दिगम्बराचार्यों के अनेक राजवशी शिष्यों ने धर्म संग्राम में अपना भुज-विक्रम प्रकट किया था। जैन शिलालेख उनकी रणगाथाओं से ओतप्रोत हैं। उदाहरणत गग सेनापति क्षत्रघ्नानि श्री चामुण्डराय को ही ले लीजिए, वह जैन धर्म के दृढ़ श्रद्धालु ही नहीं बल्कि उसके तत्त्व के ज्ञाता थे। उन्होंने जैन धर्म पर कई श्रेष्ठ ग्रन्थ लिखे हैं और वह ध्रावक के धर्माचार का भी पालन करते थे, किन्तु उस पर भी उन्होंने एक नहीं अनेक

541 SSIJ, pt II p 6

542 Ibid., p 68

543 Oil, p 236

सफल संग्रहों में अपनी तस्खार का जोहर जाहिर किया था।<sup>544</sup> सद्यम्बु जैन धर्म मनुष्य को पूर्ण स्वाधीनता का सन्देश सुनाता है। जेनाचार्य निःशंक और स्वाधीन होकर वही धर्मोपदेश जनता को देते हैं जो जनकल्याणकारी हो। इसीलिये वह दसुधैयकुटुम्बक कहे गये हैं। भीरुता और अन्याय तो जैनमुनियों के निकट फटक भी नहीं सकता है।

प्रो. सा के उक्त संग्रह में विशेष उल्लेखनीय दिगम्बराचार्य श्री भावसेन त्रैवेद्याचक्रवर्ती, जो वादियों के लिये महामथानक (Terror to disputant) थे, वह और बहराज के गुरु (Preceptor of Bava king) श्री भावनन्दि मुनि हैं।<sup>545</sup> अन्य श्रोत से प्रगट है कि-

## उपरान्त के शिलालेखों में दि. मुनि

सन् 1478 ई में जिंजी प्रदेश में दिगम्बराचार्य श्री वीरसेन बहु प्रसिद्ध हुये थे। उन्होंने लिंगायत प्रचारकों को समक्ष वाद में विजय पाकर धर्मोद्योत किया था और लोगो को पुन जैन धर्म में दीक्षित किया था।<sup>546</sup> कारकल में राजा वीरपाण्डय ने दिगम्बराचार्यों को आश्रय दिया था और उनके द्वारा सन् 1432 में श्री गोम्मत-मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी, जिसे उन्होने स्थापित कराया था। एक ऐसी ही दिगम्बर मूर्ति की स्थापना वेणूर में सन् 1604 में श्री तिमराज द्वारा की गई थी। उस समय भी दिगम्बराचार्यों ने धर्मोद्योत किया था। शासक विधर्मी हो गया था, उसे जैन साधु विद्यानन्दि ने पुन जैन धर्म में दीक्षित किया था।<sup>547</sup>

## दि. मुनि श्री विद्यानंदि

इसी शिलालेख से यह भी प्रगट है कि "इन मुनिराज ने नारायणपट्टन के राजा नन्ददेव की सभा में नटनमल्ल भट्ट को जीता, सातवेन्द्र राजा केशरीवर्मा की सभा में वाद में विजय पाकर 'वादी' पाया, सालुवदेव राजा की सभा में महान विजय पाई, बलिंगों के राजा नरसिंह की सभा में जैन धर्म का महात्म्य प्रगट किया, कारकल नगर के शासक भैरव राजा की सभा में जैन धर्म का प्रभाव विस्तारा, राजा कृष्णराय की राजसभा में विजयी हुए कोपन व अन्य तीर्थों पर महान उत्सव कराय श्रवणवेन्नगाल क श्री गोम्मटरवागी के चरणों के निकट आपने अमृत की वर्षा के समान योगाभ्यास का सिद्धांत मुनियों को प्रगट किया, जिरसप्पा में प्रसिद्ध हुये, उनकी आज्ञानुसार श्रीवग्देव राजा ने कल्याण पूजा कराई

544 वीर, वर्ष ७ पृ २-११

545 SSIJ, VI pp 61-62

546 वीर, वर्ष ५ पृष्ठ २४६

547 सौध, पृ ७० व DG

और वह सभी राज पुरुषों का गुरु है।<sup>548</sup> वह एक प्रतिभाशाली समूह है और उनके अनेक विद्व विगम्बर मुनिम है।

सारांशः दक्षिण भारत के पुरातन से कल के विगम्बर मुनिमों का सम्बन्ध अस्तित्व एक प्राचीनकाल से बराबर सिद्ध होता है। इस प्रकार भारत भर का पुरातन विगम्बर जैन मुनिमों के बड़ी उत्कर्ष का प्रतीक है।

वे मुनिवर कब मिलि हैं उपकारी .....

वे मुनिवर कब मिलि हैं उपकारी ॥टेक॥

साधु दिगम्बर नगन निरम्बर, संवर भूषण धारी ॥१॥

कंचन कांच बराबर जिनके, ज्यों रिपु त्यों हितकारी ।

महल मसान मरन अरु जीवन, सम गरिमा अरु गारी ॥२॥

सम्यग्ज्ञान प्रधान पवन बल, तप पावक परजारी ।

सेवत जीव सुवर्ण सदा जे, काय-कारिमा टारी ॥३॥

जोरि जुगल कर 'भूधर' विनवै, तिन पद धोक हमारी ।

भाग उदय दरसन जब पाऊँ, ता दिन की बलिहारी ॥४॥

## विदेशों में दिगम्बर मुनियों का विहार

'India had pre-eminently been the cradle of culture and it was from this country that other nations had understood even the rudiments of culture, For example, they were told, the Buddhistic missionaries and jaina monks went forth to Greece and Rome and to places as far as Norway and had spread their culture ' \$<sup>549</sup>

- Prof-M S Ramaswamy Iyengar.

जैन पुराणों के कथन से स्पष्ट है कि तीर्थंकरों और धर्मियों का विहार गमगन्त आर्यखंड में हुआ था। वर्तमान की जानी हुई दुनिया का समावेश आर्यखंड में हो जाता है।<sup>550</sup> इसलिये यह मानना ठीक है कि अमरीका, यूरोप, एशिया आदि देशों में एक समय दिगम्बर धर्म प्रचलित था और वहां दिगम्बर मुनियों का विहार होता था। आधुनिक विद्वान् भी इस बात को प्रकट करते हैं कि बौद्ध और जैन भिक्षुगण यूनान, रोम और नारवैक तक धर्म प्रचार करते हुये पहुँचे थे।

किन्तु जैन पुराणों के वर्णन पर विशेष ध्यान न देकर यदि ऐतिहासिक प्रमाणा पर ध्यान दिया जाय, तो भी यह प्रगट होता है कि दिगम्बर मुनि विदेशों में अपने धर्म प्रचार करने को पहुँचे थे। भू महावीर के विहार के विषय में कहा गया है कि वे आकनीय, कृकार्यप, बाल्हीक, यवनश्रुति, गांधार क्वाथतोय, तार्ण और काणदेशों में भी धर्मप्रचार करते हुये पहुँचे थे।<sup>551</sup> ये देश भारतवर्ष के बाहर ही प्रगट होते हैं। आकनीय समभवत आक्सरीनया (Oxiana) है। यवनश्रुति यूनान अथवा पाण्ड्य का द्योतक है। बाल्हीक बल्ख (Balkh) है। गांधार कंधार है। क्वाथतोय रेड-सी (Red Sea) के निकट क दश हो सकते हैं। तार्ण-कार्ण तूरान आदि प्रतीत होते हैं।<sup>552</sup> इम दशा में कंधार, यूनान, मिथ्र आदि देशों में भगवानका विहार हुआ मानना ठीक है।<sup>553</sup>

549 The "Hindu" of 25th July 1919 & JG XV27

550 भषा, १५६-१५७

551 हरिवंशपुराण, सर्ग ३ श्लो ३-७

552 वीर, वर्ष ६ अंक ७

553 संजीव, भा २ पृ १०२-१०३

सिक्किम वरान् के साथ दिगम्बर मुनि कल्याण युवान के लिये वहां से प्रस्थानित हो गये थे और एक अन्य दिगंबराचार्य युवान धर्म प्रचारार्थ जो गये थे वह पहले लिखा जा चुका है। कुमनी लेखकों के कथन से बैक्ट्रिया (Bactria)<sup>554</sup> और इथ्यूपिया (Ethiopia)<sup>555</sup> नामक देशों में धर्मणों के विहार का पता चलता है। ये धर्मगण वि. जैन ही थे, क्योंकि बौद्ध धर्मण तो सम्राट् अशोक के उपरान्त विदेशों में पहुंचे थे।

अफ्रिका के मिथ्र और अथीसिनिया देशों में भी एक समय दिगम्बर मुनियों का विहार हुआ प्रगट होता है, क्योंकि वहां की प्राचीन मान्यता में दिगम्बरत्व को विशेष आदर मिलता प्रमाणित है। मिथ्र में नान मूर्तियों भी बनी थीं और वहां की कुमारी सेंटमैरी (St Mary) दिगम्बर साधु के भेष में रही थी। मालूम होता है कि सचका की लम्बा अफ्रिका के निकट ही थी और जैन पुराणों से यह प्रगट ही है कि वहां अनेक जैन मन्दिर और दिगम्बर मुनि थे।<sup>556</sup>

यूनान में दिगम्बर मुनियों के प्रचारका प्रभाव काफी हुआ प्रगट होता है। वहां के लोगों में जैन मान्यताओं का आदर हो गया था। यहा तक कि डायजिनेस (Diogenes) और सम्भवत पैरंहो (Pyrrho of Elis) नामक यूनानी तत्व वेत्ता दिगम्बर वेप में रहे थे।<sup>557</sup> पैरंहोने दिगम्बर मुनियों के निकट शिक्षा ग्रहण की थी। यूनानियों ने नान मूर्तियों भी बनाई थीं। जैसे कि लिखा जा चुका है।

जब यूनान और नारवे जैसे दूर के देशों में दिगम्बर मुनि गये पधुये थे, तो भला मध्य-एशिया के अरब ईरान और अफगानिस्तान आदि देशों में वे क्यों न पधुचते ? सचमुध दिगम्बर मुनियों का विहार इन देशों में एक समय में हुआ था। मौर्य सम्राट् सम्प्रति ने इन देशों में जैन धर्मणों का विहार कराया था, यह पहले ही लिखा जा चुका है। मालूम होता है कि दिगम्बर मुनि अपने इस प्रयास में सफल हुये थे, क्योंकि यह पता चलता है कि इस्लाम मजहब की स्थापना के समय अधिकांश जैनी अरब छोडकर दक्षिण भारत में आ बसे थे।<sup>558</sup> तथा हुएन सांग के कथन से स्पष्ट है कि ईस्वी सातवीं शताब्दि तक दिगम्बर मुनिगण अफगानिस्तान में अपने धर्म का प्रचार करते रहे थे।<sup>559</sup>

554 AL p 104

555 AR III p 6 व जैन होस्टल मैगजीन भाग ११ पृ ६

556 मया, पृ १६०-२०२

557 NJ, Intro p 2 & "Diogenes Laertius (IX 61 & 63) refers to the Gymnosopists and asserts that Pyrrho of Elis, the founder of pure Scepticism came under their influence and on his return the Elis imitated their havits of life" -XII 753

558. Ar, IX. 284

559 हुमा, पृ. ३७

दिगम्बर मुनियों के धर्मोपदेश का प्रभाव इस्लाम मजहब पर बहुत कुछ पड़ा प्रतीत होता है। दिगम्बरत्व के सिद्धांत का इस्लाम मजहब में यान्व होना, इस बात का सबूत है कि अरबी कवि और तत्वेत्त अबु-ल्-अला (Abu-L-Ala) ई. 973-1058) की रचनाओं में जैनत्व की काफी झलक मिलती है। अब-ल्-अला शकभोजी तो थे ही परन्तु वह न. गांधी की तरह वह भी मानते थे कि एक अधिसक को दूध नहीं पीना चाहिये। मद्य का भी उन्होंने जैनों की तरह निषेध किया था। अहिंसा धर्म को पालन के लिये अबु-ल्-अला ने चमड़े के जूतों का पहनना भी बुरा समझा था और नमन रहना वह बहुत अच्छा समझते थे। भारतीय साधुओं का अन्त समय अग्नि चिता पर बैठकर शरीर को भस्म करते देखकर, वह बड़े आश्चर्य में पड़ गये थे। इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि अबु-ल्-अला पर दिगम्बर जैन धर्म का काफी प्रभाव पड़ा था और उन्ने दिगम्बर मुनियों को सल्लेखनात्रत का पालन करते हुये देखा था।<sup>560</sup> यह अवश्य ही दिगम्बर मुनियों के संसर्ग में आये प्रतीत होते हैं। उनका अधिक समय बगदाद में व्यतीत हुआ था।

सेयन (Ceylon) में जैन धर्म की गति प्राचीनकाल से है। ईस्वी पूर्व चौथी शताब्दि से सिंहलनरेश पाण्डु का भय ने वहा के राजनगर अनुरुद्धपुर में एक जैनमन्दिर और जैन मठ बनवाया था। निगन्ध साधु वहां पर निर्वाध धर्म प्रचार करते थे। इक्कीस राजाओं के राज्य तक वह जैन विहार और मठ वहा मौजूद रहे थे, किन्तु ई. पू. 38 में राजा वट्टगामिनी ने उनको नष्ट कराकर उनके स्थान पर बौद्ध विहार बनवाया था।<sup>561</sup>

उस पर भी दिगम्बर मुनियों ने जैन धर्म के प्राचीन केन्द्र लका या सिंहलद्वीप को बिल्कुल ही नहीं छोड़ दिया था। मध्यकाल में मुनि यश कीर्ति इतने प्रभावशाली हुये थे कि तत्कालीन सिंहल नरेश ने उनके पाद-पद्मों की अर्घा की थी।<sup>562</sup>

सारांशतः यह प्रकट है कि दिगम्बर मुनियों का विहार विदेशों में भी हुआ था। भारतेतर जनता का भी उन्होंने कल्याण किया था।

560 जैध., पृ ४६६

561 महावंश, AISJ p 37

562 जैशिसं., पृ ११०

## मुसलमानी बादशाहत में दिगम्बर मुनि

"O Son, the kingdom of India is full of different religions... It is incumbent on the to wipe all religious prejudices off the tablet of the heart; administer justice according to the ways of every religion" -563

- Babar.

### मुसलमान और हिन्दुओं का पारस्परिक सम्बन्ध

ई. 8वीं 10वीं शताब्दि से अरब के मुसलमानों ने भारतवर्ष पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया था किन्तु कई शताब्दियों तक उनके पैर यहाँ पर नहीं जमे थे। वह लूटमार करके जो मिला उसे लेकर अपने देश को लौट जाते थे। इन प्रारम्भिक आक्रमणों में भारत के स्त्री-पुरुष की एक बड़ी संख्या में हत्या हुई थी और उनके धर्म मन्दिर और मूर्तियाँ भी खूब तोड़ी गई थी। तिमूरलगा ने जिस रोज दिल्ली फतह की उस रोज उसने एक लाख भारतीय कैदियों को तोप दम करवा दिया।<sup>564</sup> सचमुच प्रारम्भ में मुसलमान आक्रमणकारियों ने हिन्दुस्तान को बेतरह तबाह किया किन्तु जब उनके यहाँ पर पैर जम गये और वे यहाँ रहने लगे तो उन्होंने हिन्दुस्तान का होकर रहना ठीक समझा। यहाँ की प्रजाको संतोषित रखना उन्होंने अपना मुख्य कर्तव्य माना। बाबर ने अपने पुत्र हुमायूँ को यह शिक्षा दी कि "भारत में अनेक मतमतान्तर हैं, इसलिये अपने हृदय को धार्मिक पक्षपात से साफ रख और प्रत्येक धर्म की रिवाजों के मुताबिक इन्साफ कर" परिणाम इसका यह हुआ कि हिन्दुओं और मुसलमानों में परस्पर विश्वास और प्रेम का बीज पड़ गया। जैनों के विषय में प्रो. डॉ. हेल्मुथ वॉन गलाज़ेनाप कहते हैं कि "मुसलमानों और जैनों के मध्य हमेशा वैरभरा सम्बन्ध नहीं था (बल्कि) मुसलमानों और जैनों के बीच मित्रता का भी सम्बन्ध रहा है।"<sup>565</sup> इसी मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध का ही वह परिणाम था कि दिगम्बर मुनि मुसलमान बादशाहों के राज्य में भी अपने धर्म का पालन कर सके थे।

563 QJMS, Vol. XVIII p 116

564 Elliot III p 436 "100000 in fidels, impious idolators were on that day slain" - *Maluzat-i Timuri*

565 DD, p 66 & जैध, नृ ६८

ईसवी दसवी शताब्दी में जब अरब का सौदागर सुलेमान यहाँ आया तो उसे दिगम्बर साधु बहु संख्या में मिले थे, यह पहले लिखा जा चुका है। गर्ज यह कि मुसलमानों ने आते ही यहाँ पर नो दरवेशों को देखा। महमूद गजनी (1001) और महमूद गौरी (1175) ने अनेक बार भारत पर आक्रमण किये किन्तु वह यहाँ ठहरे नहीं। ठहरे तो यहाँ पर 'गुलाम खानदान' के सुल्तान और उन्हीं से भारत पर मुसलमानी बादशाहत की शुरुआत हुई सम्प्रदाना छादिये। उन्होंने सन् 1206 से 1290 ई. तक राज्य किया और उनके बाद खिलजी, तुगलक और लोदी वंशों के बादशाहों ने सन् 1290 से 1526 ई. तक यहाँ पर शासन किया।<sup>566</sup>

## मूहम्मद गौरी और दिगम्बर मुनि

इन बादशाहों के जमाने में दिगम्बर मुनिगण निर्वाह धम्र प्रचार करते रहे थे, यह बात जैन एवं अन्य श्रोतों से स्पष्ट है गुलाम बादशाहों के पहले ही दिगम्बर मुनि सुल्तान महमूद का ध्यानअपनी और आकृष्ट कर चुके थे।<sup>567</sup> सुल्तान मुहम्मद गौरी के सम्बन्ध में तो यह कहा जाता है कि उसकी बेगम ने दिगम्बर आचार्य के दर्शन किये थे।<sup>568</sup> इससे स्पष्ट है कि उस समय दिगम्बर मुनि इतने प्रभावशाली थे कि वे विदेशी आक्रमणकारियों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ थे।

## गुलाम बादशाहत में दिगंबर मुनि

गुलाम बादशाहत के जमाने में भी दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व मिलता है। मूलगद्य सेनागण में उस समय श्रीदुर्लभसेनाचार्य श्री धरसेनाचार्य श्री पण श्री लक्ष्मीसेन, श्री सोमपुत्र प्रभूत मुनिपुत्र शोभा कां पा उक्त थे। श्री दुर्लभसेनाचार्य ने उग्र कर्नाग, काश्मीर, नैपाल, द्राविड, गौड़, केरल, नेन्ग उरु आदि देशों में विहाग करके विधर्मी आचार्यों को हतप्रभ किया था।<sup>569</sup> इसी समय में श्रीकाण्टासघ में मुनिश्रेष्ठ विजयचन्द्र तथा मुनि यश कीर्ति, अभयकीर्ति, महासेन, कुन्दकीर्ति, त्रिभुवनचन्द्र, रामसेन आदि हुये प्रतीत हांत हैं।<sup>570</sup> ग्वालियर में भी अकल्कचन्द्र जी दिगम्बर वप में सं 1257 तक रहे थे।<sup>571</sup>

566 Oxford pp 109-130

567 "अलदरवरपुराद्वरवच्छनगर राजाधिराजपरमेश्वर ययन रायशिरोमणि महम्मदपातशाह सुरत्राणसमस्या पूर्णदिखिलत् त्रिनिपातिनाप्टादश वर्धप्राप्नदवनाकधीश्रुतवीरस्यामिनाम्।" - अर्थात् -- "अलकद्वरमुग J. भगवतनगर में राजेश्वर म्यामी यवनराजाओं में श्रेष्ठ महम्मद बादशाह के योग समस्या की पूर्ति में तथा दृष्ट हांत में १८ वप की अवस्था में स्वर्ग गए हुए री श्रुतवीर स्वामी हुए। - जैसिभा, भा १ कि २-३ पृ ३५

568 IA, Vol XXI p 361 - "wife of Muhammad ghori desired to see the chief of the Digambaras"

569 जैसिभा, भा १ कि २-३ पृ ३४

570 Ibid, किरण ४ पृ १०६

571 बुजेश, पृ १०

## खिलजी, तुगलक और लोदी बादशाहों के राज्य और दिगम्बर मुनि

खिलजी, तुगलक, और लोदी बादशाहों के राज्यकाल में भी अनेक दिगम्बर मुनि हुये थे। काफ़्तासंघ में श्री कुमारसेन, प्रतापसेन, महातपस्वी, माहकसेन आदि मुनिगण प्रसिद्ध थे। महातपस्वी श्री माहकसेन तथा महासेन के विषय में कहा जाता है कि उन्होंने खिलजी बादशाह अलाउद्दीन से सम्मान पाया था।<sup>572</sup> इतिहास से प्रगट है कि अलाउद्दीन धर्म की परवाह कुछ नहीं करता था। उस पर राघों और चेतन नामक ब्राह्मणों ने उसको और भी बरगल्ल रखवा था। एकदा उन्हीं दोनों ने बादशाह को दिगम्बर मुनियों के विरुद्ध कहा सुना और उनकी बात मानकर बादशाह ने जैनियों से अपने गुरु को राजदरबार में उपस्थित करने के लिये कहा। जैनियों ने नियत काल में आचार्य माहवरोन को दिल्ली में उपस्थित पाया। उनका विहार दक्षिण की ओर से वहा हुआ था।

### सुल्तान अलाउद्दीन और दिगम्बराचार्य

आचार्य माहकसेन दिल्ली के बाहर शमशान में ध्यानारूढ तिष्ठे थे कि वहा एक सर्प-दश से अचेत सेठ पुत्र दाह कर्म के लिये लाया गया। आचार्य महाराज ने उपकार भाव से उसका विष प्रभाव अपने योग बल से दूर कर दिया। इस पर उनकी प्रसिद्धि सारे शहर में हो गई। बादशाह अलाउद्दीन ने भी यह सुना और उसने उन दिगम्बरराचार्य के दर्शन किये। बादशाह के बाद राजदरबार में उनका शास्त्रार्थ भी वट्दर्शन वादियों से हुआ, जिसमे उनकी विजय रही। उस दिन महासेन स्वामी ने पुन एक बार स्याद्धद की अखण्ड ध्वज भारत वर्ष की राजधानी दिल्ली में आरोपित कर दी थी।<sup>573</sup>

इन्हीं दिगम्बराचार्य की शिष्य परम्परा में विजयसेन नयसेन, श्रेयाससेन, अनन्तकीर्ति, कमलकीर्ति, क्षेमकीर्ति, श्री हेमकीर्ति, कुमारसेन, हेमचन्द्र, पद्मनन्दि, यशकीर्ति, त्रिभुवनकीर्ति, सठस्त्रकीर्ति, महीचन्द्र आदि दिगम्बर मुनि हुये थे। इनमें श्रीकमल कीर्ति जी विशेष प्रख्यात थे।<sup>574</sup>

572 " (The Jain) Acharyas ----- by their character attainments and scholarship ----- commanded the respect of even Muhammadas Sovereigns like Allauddin and Auranga Padusha ( Aurangazeb ) " - SSIJ, pt II p 132

573 जैसिभा., भा १ कि पृ १०६

574. Ibid

सुल्तान अलाउद्दीन का उपरनाम मुहम्मदशाह था।<sup>575</sup> सन् 1530 ई. के एक शिलालेख में मुनि विद्यानन्दि के गुरुपरम्परीण श्री अचार्य सिद्धनन्दि का उल्लेख है कि वह बड़े नैतिक थे और उन्होंने दिल्ली के बादशाह महमूद सूरीत्राण की सभा में बौद्ध व अन्यो को बाद में हराया था। यह बात उक्त शिलालेख में है। यह उल्लेख बादशाह अलाउद्दीन के संबंध में हुआ प्रतिभाषित होता है।<sup>576</sup>

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि बादशाह अलाउद्दीन के निकट दिगम्बर मुनियों का विशेष सम्मान प्राप्त हुआ था। दिल्ली के श्री पूर्णचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थक की भी इज्जत अलाउद्दीन करता था<sup>577</sup> और उसने श्वेताम्बराचार्य श्री रामचन्द्रसूरि को कई भेट अर्पण की थीं।<sup>578</sup> सच बात तो यह है कि अलाउद्दीन के निकट धर्म का महत्त्व न कुछ था। उससे अपने राज्य का ही एक मात्र ध्यान था। उसके सामने वह 'शरीअत' को भी कुछ न समझता था। एक दफा उसने नव मुस्लिमों को तोपदम करा दिया था।<sup>579</sup> हिन्दुओं के प्रति वह ज्वादा उदार नहीं था और जैन लेखकों ने उसे 'खूनी' लिखा है। किन्तु अलाउद्दीन में 'मनुष्यत्व' था। उसी के बल पर वह अपनी प्रजा को प्रसन्न रख सकता था। और विद्वानों का सम्मान करने में सफल हुआ था।<sup>580</sup>

## तत्कालीन अन्य दिगम्बर मुनिगण

सं. 1462 में ग्वालियर में महामुनि श्री गुणकीर्तिजी प्रसिद्ध थे।<sup>581</sup> मेदपाद देश में स 1536 में श्री मुनि रामसेन जी के प्राशिष्य मुनि सोमकीर्ति जी विद्यमान थे और उन्होने

575. Oxford, p 130

576 मजैस्मा, पृ ३२२श "सुल्तान शब्द को जेनाचार्यों ने सूत्रित्राणा लिखकर बादशाहों को मुनिरक्षक प्रकट किया है।

577 जैहि, भा १५ पृ १३२

578 जैध, पृ १६८

579 "He (Allau-ddin) was by nature cruel and implacable, and his only care was the welfare of his kingdom. No consideration for religion (Islam) ever troubled him. He disregarded the provisions of the Law

He now gave commands that the race of "New-Muslims" should be destroyed" XXTarikhi-Firozshahi" - Elliot III, p 205

580 सुल्तान अलाउद्दीन ने शराब की बिक्री रूकवा दी थी। नाज, कपडा आदि बेहद सस्ते थे। उसके राज में राजभक्ति की बाहुल्यता थी। विद्वान काफी हुए थे। (Without the patronage of the Sultan many learned and great men flourished) -- Elliot, III 206

581 जैहि, भा १५ पृ २२५

'यशोधराचरित्' की रचना श्री श्री 582 श्री 'भद्रबाहु चरित्' के कर्ता मुनि रत्नमन्दि भी इसी समय हुये थे। वस्तुतः उस समय अनेक मुनिजनों अपने दिग्म्बर वेस में इस देश में विद्यर रहे थे।

## लोदी सिकन्दर निजामखां और दिग्म्बराचार्य विशालकीर्ति

लोदी खानदान में सिकन्दर ( निजामखां ) बादशाह सन् 1489 में राज सिंहासन पर बैठा था। 583 क्रिस मठ के गुरु श्री विशालकीर्ति भी लगभग इसी समय हुये थे। उनके विषय में एक शिलालेख से पता जाता है कि उन्होंने सिकन्दर बादशाह के समक्ष बाद किया था। 584 वह बाद लोदी सिकन्दर के दरबार में हुआ प्रतीत होता है।

अतः यह स्पष्ट है कि दिग्म्बर मुनि तब भी इतने प्रभावशाली थे कि वे बादशाहों के दरबार में भी पहुँच जाते थे।

## तत्कालीन विदेशी यात्रियों ने दिग्म्बर साधुओं को देखा था

जैन साहित्य के उपरोक्त उल्लेखों की पुष्टि अजैन श्रोत से भी होती है। विदेशी यात्रियों के कथन से यह स्पष्ट है कि गुलाम से लोदी राज्य काल तक दिग्म्बर जैन मुनि इस देश में विहार और धर्म प्रचार करते रहे। देखिये तेरहवीं शताब्दि में यूरोपीय यात्री मार्को पोलो ( Marco Polo ) जब भारत में आया तो उसे ये दिग्म्बर साधु मिले। उनके विषय में वह लिखता है कि - 585

582 "नदीतटाख्यगच्छे वशे श्रीरामसेन देवस्य जातीगुणार्णविक श्रीमाशुध भीमसेयेति। निर्मित तस्य शिष्येण श्री यशोधर सन्निक श्री सोमकीर्ति मुनिनानिशौदयाधीपतांबुधावषेपद् दिग्मशख्येतिथिपरिगणनायुक्त संवत्सरेति पद्यम्भा पौषकृष्णादिनकर दिवसे द्योत्तरास्पट्ट वटि ।। इत्यादि ।।"

583 Oxford , p 130

584 मजैस्मा , पृ २६३ व ३३३

585 "Some Yogis went stark naked, because, as they said, they had come naked into the world and desired nothing that was of this world and desired nothing that was of this world 'Moreover, they declared, "we have no sin of the flesh to be conscious of, and, therefore, we are not ashamed of our nakedness, and more than you are to show your hand or face You, who are conscious of the sins of the flesh, do well to have shame and to cover your nakedness " - Yule's Marco Polo, II, 386, & HARI, p 364

"कतिपय योगी मादरजात में घूमते थे, क्योंकि जैसे उन्होंने कहा वे इस दुनिया में नगे आये हैं और उन्हें इस दुनिया की कोई चीज चाहिये नहीं खासकर उन्होंने यह कहा कि हमें शरीर सम्बन्धी किसी भी पाप का भान नहीं है और इसलिये हमें अपनी नंगी दशा पर शर्म नहीं आती है, उसी तरह जिस तरह तुम अपना मुँह और हाथ नगे रखने में नहीं शरमाते हो। तुम जिन्हें शरीर के पापों का भान है, यह अच्छा करते हो कि शर्म के मारे अपनी नग्नता ढक लेते हो।"

इस प्रकार की मान्यता दिगम्बर मुनियों की है। मार्को पोलो का समागम उन्हीं से हुआ प्रतीत होता है। वह उनके ससर्ग में आये हुये लोगों में अहिंसा धर्म की बाहुल्यता प्रकट करता है। वहाँ तक कि वह साग सब्जी तक ग्रहण नहीं करते थे। सूखे पत्तों पर रखकर भोजन करते थे। वे इन सब में जीव तत्व का होना मानते थे। डैवेल सा गुजरात के जैनों में इन मान्यताओं का होना प्रकट करते हैं।<sup>586</sup> किन्तु वस्तुतः गुजरात ही क्या प्रत्येक देश का जैनी इन मान्यताओं का अनुयायी मिलेगा। अतः इसमें सन्देह नहीं कि मार्को पोलो को जो नगे साधु मिले थे, वह जैन साधु ही थे।

अल्बेरुनी के आधार पर रशीदुद्दीन नामक मुसलमान लेखक ने लिखा है कि "मलाबार के निवासी सबही भ्रमण हैं और मूर्तियों की पूजा करते हैं। समुद्र किनारे के सिन्दबूर, फकनूर, मजरूर, हिला, सदर्स, जगलि और कुलम नामक नगरों और देशों के निवासी भी भ्रमण हैं।"<sup>587</sup> यह लिखा ही जा चुका है कि दिगम्बर मुनि भ्रमण नाम से भी विख्यात हैं। अतः कहना होगा की रशीदुद्दीन के अनुसार मलाबार आदि देशों के निवासी दिगम्बर जैन ही थे, और तब उनमें दिगम्बर मुनियों का होना स्वाभाविक है।

586 'Moreco Polo also noticed the customs, which the orthodox Jaina community of Gujerat maintains to the present day 'They do not kill an animal on any account, not even a fly or a flea, or a louse, or anything in fact that has life! for they say, these have all soul and it would be sin to do so' (Yule's Morco polo, II 366) - HARI, p 365

587 Rashi-uddm from Al-Biruni writes "The whole country (or Malibar produces the pan ----- The people are all Samanis and worship idols. Of the cities of the shore the first is Sindabur, the Faknur, then the country of Mamyarur, then the country of Hili, then the country of Sadarsa, then Jangli, then Kulam The men of all these countries are Samanis" - Elliot Vol. I p 68

इसलिये तब नगे इन भ्रमणों को बौद्ध लिखा है, किन्तु उस समय दक्षिण भारत में बौद्धों का होना असम्भव है। भ्रमण शब्द बौद्धभिक्षुके अतिरिक्त दिगम्बर साधुओं के लिये भी व्यवहृत होता है।

## मुगल साम्राज्य में दिगम्बर मुनि

उपरान्त सन् 1526 से 1761 ई. तक भारत पर मुगल और सुरवशों के राजाओं ने राज्य किया था।<sup>588</sup> उनके समय में भी दिगम्बर मुनियों का बाहुल्य था। पाटोदी (जयपुर) के वि. स. 1575 की प्रशस्ति से प्रकट है कि उस समय श्री चन्द्र नामक मुनि विद्यमान थे।<sup>589</sup> लखनऊ चौक के जैन मंदिर में विराजमान एक प्राचीन गुटका के पत्र 163 पर दी हुई प्रशस्ति से निग्रन्थाचार्य श्री माणिक्य चन्द्र देव का अस्तित्व सन् 1611 में प्रमाणित है।<sup>590</sup> "भावत्रिभंगी" की प्रशस्ति से स. 1605 मुनि क्षेमकीर्ति का होना सिद्ध है।<sup>591</sup> सद्यमुय बादशाह बाबर, हुमायूँ और शेरशाह के समय में दिगम्बर मुनियों का विहार सारे देश में होता था। मालूम होता है कि उन्हीं का प्रभाव मुसलमान दरवेशों पर पड़ा था जिसके फलस्वरूप वे नग्न रहने लगे थे। मुगल बादशाह शाहजहाँ के समय में वे एक बड़ी संख्या में मौजूद थे।<sup>592</sup> शेरशाह के समय में दिगम्बर मुनियों का निर्वाह विहार होता था, यह बात शेरशाह के अफसर मलिक मुहम्मद जायसी के प्रसिद्ध हिन्दीकाव्य पद्मावत (2/60) के निम्नलिखित पद्य से स्पष्ट है -

"कोई ब्रह्मचारज पन्थ लागे।  
कोई सुदिगंबर आका लागे।।"

## अकबर और दिगम्बर मुनि

बादशाह अकबर जलालुद्दीन स्वयं जैनों का परम भक्त था और यदि हम उस समय के ईसाई लेखकों के कथन को मान्यता दे तो कह सकते हैं कि वह जैन धर्म में दीक्षित हो गया था। नि सन्देह श्वेताम्बराचार्य श्रीहीरविजयसूरी आदि का प्रभाव उस पर विशेष पड़ा था।<sup>593</sup> इस दशा में अकबर दिगम्बर साधुओं का विरोधी नहीं हो सकता। बल्कि अबुलफजल ने आईन अकबरी भाग 3 पृष्ठ 87 में उनका उल्लेख स्पष्ट शब्दों में किया है और लिखा है कि वे नग्न रहते थे।

588 Oxford, p 151

589 "श्री संघाचार्यसत्कवि शिष्येण श्रीचन्द्रमुनि।" --- जैमि, वर्ष १० अंक ४५ पृ ६६८

590 "सं १६११ वैश्र सु २ ----- मूलसंघे ----- भ श्रीविद्यानदि तत्पट्टे श्री कल्याणकीर्ति तत्पट्टे निग्रन्थाचार्य ----- तपोबलसन्ध्यातिशय श्री माणिक्यचन्द्रदेवा -----। -- जैमि, वर्ष २२ अंक ४५ पृ ७४०

591 "सं १६०५ वर्षे ----- तत्शिष्य सर्वगुणविराजमान मडलाचार्य मुनि श्री क्षेमकीर्तिदेवा।"

592 Bernier pp 315-318

593 पादरी पिन्हेरो (Pinheiro) ने लिखा है कि अकबर जैन धर्मानुयायी है। (He Akbar) follows the sect of the Jainas

## वैराट काव्य. संघ

वैराटनगर में उस समय दिगम्बर मुनियों का संघ विद्यमान था। वहाँ पर साक्षात् कोश मार्ग की प्रवृत्ति के लिये ब्याजगत जिनात्मिग शोभा पा रहा था। वह नगर बड़ा समृद्धशाली था और उस पर अकबर शासन करता था कवि राजमल्ल ने 'लाटी संहिता' की रचना वहाँ के जैनमन्दिर में की थी।<sup>594</sup> उन्होंने अपने 'जम्बूस्वामी चरित्' में लिखा है कि भटानिया कोल के निवासी साधु टोहर जब तीर्थयात्रा करते हुये मयुरा पहुँचे तो उन्होंने वहाँ पर 514 दिगम्बर मुनियों के समाधि सूचक प्राचीन स्तूपों को जीर्णोद्धार दशा में देखा। उन्होंने उनका उद्धार करा दिया और उन की प्रतिष्ठा शुभतिथि वार को चतुर्विधिसंघ -- (1) मुनि (2) आर्थिका (3) धावक (4) धाविका- एकत्र करके कराई थी।<sup>595</sup> इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि बादशाह अकबर के राज्य में अनेक दिगम्बर मुनि विद्यमान थे और उनका निर्वाह बिहार सारे देश में होता था।

## बादशाह औरंगजेब ने दिगम्बर मुनि सम्मान किया था

अकबर के बाद मुगल खानदान में जितने भी शासक हुये उन सबके ही शासन काल में दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व मिलता है। औरंगजेब सदृश कट्टर बादशाह को भी दिगम्बर मुनियों ने प्रभावित कर लिया था यहाँ तक कि औरंगजेब ने उनका सम्मान किया था।<sup>596</sup> उस समय के किन्हीं मुनि महाराजों का उल्लेख इस प्रकार है।

594 "वीर" वर्ष ३ पृ व "लाटी, पृ, १२

"श्रीमुडिडीरपिण्डोपमतितमितनभ पाण्डुराखण्डकीर्त्या,  
कृष्ट ब्रह्माण्डकाण्ड निजभुजभयभस। मण्डपाडम्बराऽस्मिन्।  
बैनासी पातिसाहि प्रतपदकवर प्रखिख्यातकीर्ति -  
जीवाद्भोक्ताय नाथ प्रभुरिति नगरस्यास्य वैराटनाम्न ॥६२॥  
जैने धर्मोन्वद्यो जगति विजयतेऽद्यापि सन्तानवतीं  
साक्षाद्दिगम्बरास्ते यतय इह ब्याजातरूपात्मक लक्ष।  
तस्मैतेभ्यो नमोस्तु त्रिसमयनिवर्त प्रोत्ससद्यत्प्रसादा -  
दर्वागावर्द्धमान प्रतिघविरहितो वर्तते मोक्षमार्ग, ॥६३॥"

595 अनेकान्त, भा, १ पृ १३६-१४१ "चतुर्विधमहासंघ समाहुया त्रधोमता।

596 SSIJ, pt II p 132 जैन कवियों ने औरंगजेब की प्रसन्ना ही की है  
"औरंगोसाह वली को राज, पावो कविजन परम समाज।  
यकवतिसय जगमें भयो, केरत आनि उदधि लो गयो।  
जाके राज परम सुख पाव, करी कवा हम जिन गुन गाव।"  
-- कवि विनोदीलाल

## तत्कालीन दिगम्बर मुनि

दिगम्बर मुनि श्री सखल चन्द्र जी सं. 1667 में विद्यमान थे उनके एक शिष्य ने भक्तानन्दर कव्य की रचना की थी,<sup>597</sup> सं. 1690 का लिखा हुआ एक गुटका दि. जैन पंचवक्ती बड़ा मन्दिर नैनपुरी के आसन्नभण्डार में शिरसजमान है। उसमें श्री दिगम्बर मुनि महेन्द्रसागर का उल्लेख उस समय में मिलता है।<sup>598</sup> संवत् 1719 में अकबराबाद में मुनि श्री वैरागसेन ने अष्ट कर्म की 148 प्रकृतियों का विचार चर्चा ग्रंथ लिखा था।<sup>599</sup> सन 1783 में गुरु देवेन्द्रकीर्ति का अस्तित्व दूंगारि देश में मिलता है। वहाँ पर दिगम्बर मुनियों का प्राचीन आवास था।<sup>600</sup> सं. 1757 में कुण्डलपुर में मुनि श्री गुणसागर और वश. कीर्ति थे। उनके शिष्य ने महाराज महत्साल की विशेष सहायता की थी।<sup>601</sup> कवि लालमणि ने औरगजेब के राज्य में 'अजितपुराण' की रचना की थी। उससे काष्ठासद्य में श्री धर्मसेन, भावसेन, सहस्रकीर्ति, गुणकीर्ति वश. कीर्ति, जिनचन्द्र, ध्रुवकीर्ति आदि दिगम्बर मुनियों का पता चलता है।<sup>602</sup> स 1799 में कवि खुशालदास जी ने एक मुनि महेन्द्रकीर्ति जी का उल्लेख किया है।<sup>603</sup>

मुनि धर्मचन्द्र मुनि विश्वसेन, मुनि श्रीभूषण का भी इसी समय पता चलता है<sup>604</sup> साराशत. यदि जैन साहित्य और मूर्ति लेखों का और भी परिशीलन और अध्ययन किया जाय तो अन्य अनेक मुनिगण का परिचय उस समय में मिलेगा।

597 जैत्र पृ १४३

598 "गुरु मुनि माहिदसेनि नमिजी, भनत भगवतीदासु।" - वीर जिनेन्द्र गीत  
"मुनि माहेन्द्रसेनि गुरु तिहं जुग वरन पसाई।" - टमाबु राजमती नेमिसुर  
"गुणि माहेदसेन इह गिसि प्रणामा तासो।  
धानि कपस्थलि नीकइ भनत भगीती दासो।।" -- स्खानी ढाल

599 "संवत् १७१९ वर्षे फाल्गुण सुदि १३ सोमे लिखितं मुनि री वैराग्य सागरेण।"

600 "देसदं टाहड जाणु सार --- मूलसद्य भक्तिजान सुर्य सिवकार बचान्कूम। आगे भये रिषीस गुणाकर तिनि इह ठान्कूम।।

कुन्दकुन्द मुनिराइ जिहाजधर्म जामाहिं, कतैकिलकाल वितात भय मुनिवर अधिकाही।

देवेन्द्रकीर्ति अवै वितधारि ताहि विषे। सहनीसुदास पण्डित तहां विनु सुगुरु अति सैरपे।।

सतरासे तियासिये पोस सुकुल तिथिजानि ----।" -- पद्मपुराण भाषा

601 "तस्थान्दये संजातो ज्ञानधान गुणसागर। भवस्वी संघ संपूज्यो वश कीर्तिर्षहामुनि।"।  
--दिजैहा पृ २४९

602 जैहि, १२-१९४ "श्रीमच्छ्रीकाष्ठासंघेमुनिगणगणनातिदिगम्बरयुटे।

603 "भट्टारक पद सौभे जास - मुनि महेन्द्रकीर्ति पट तास।" - उत्तरपुराण भाषा

604 श्री मूलसंघेभारतीये गधे बलात्कार गणेशिरभ्ये। आमीन्सु देवेन्द्रशोमुनीन्द सधर्माचारी मुनि धर्मचन्द्र। - श्रीजिनसहस्रनाम

x x x x

श्री काष्ठासंघे जिनराजसेनस्तदन्वये श्री मुनि विश्वसेन।

विद्याविभ्ये: मुनिराट कभूव श्रीभूषणो वादि गजेन्द्रसिंह।।" - पंचकल्पाधक पाठ.

## आगरे में तब दिगम्बर मुनि

कविवर बन्नारसी दास जी बादशाह शाहजहा के कृपापत्रों में से थे। उनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि एक बार जब कविवर आगरे में थे तब वहाँ पर दो नग्न मुनियों का आगमन हुआ। सब ही लोग उनके दर्शन-कचन के लिये आते जाते थे। कविवर परीक्षा प्रदानी थे। उन्होंने उन मुनियों की परीक्षा की थी।<sup>605</sup> इस उल्लेख से उस समय आगरे में दिगम्बर मुनियों का निर्वाध विहार हुआ प्रकट है।

## फ्रेंच-यात्री डा. बर्नियर और दिगम्बर साधु

हिंदी विद्वानों की साक्षी भी उक्त वक्तव्य की पोषक है। बादशाह शाहजहा औरगजेब के शासनकाल में फ्रांस से एक यात्री डा बर्नियर (Dr Bernier) नामक आया था। वह सारे भारत में घूमा था और उसका समागम दिगम्बर मुनियों से भी हुआ था। उनके विषय में वह लिखता है कि -<sup>606</sup>

"मुझे अक्सर साधारणत किसी राजा के राज्य में, इन नग्न फकीरों के समूह मिले थे, जो देखने में भयानक थे। उसी दशा में मैंने उन्हें मारजात नगा बड़े-बड़े शहरों में चलते फिरते देखा था। मर्द, औरत और लड़कियाँ उनकी ओर वैसे ही देखते थे जैसे की कोई साधु जब हमारे देश की गलियों में हो कर निकलता है तब हम लोग देखते हैं। औरतें अक्सर उनके लिये बड़ी विनय से भिक्षा लाती थी। उनका विश्वास था कि वे पवित्र पुरुष हैं और साधारण मनुष्यों से अधिक शीलवात और धर्मात्मा हैं।"

दावरनियर आदि अन्य विदेशियों ने भी उन दिगम्बर मुनियों को इसी रूप में देखा था। इस प्रकार इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि मुसलमान बादशाहों ने भारत की इस प्राचीन प्रथा कि साधु नग्न रहें और नग्न ही सर्वत्र विहार करें, को सम्माननीय दृष्टि से देखा था। यहां तक कि कतिपय दिगम्बर जैनाचार्यों का उन्होंने खूब आदर सत्कार किया था। तत्कालीन हिन्दू कवि सुन्दरदासजी भी अपने सर्वांगयोग नामक ग्रन्थ से इन मुनियों का उल्लेख निम्न शब्दों में करते हैं -<sup>607</sup>

605 बवि, चरित्र, पृ. १७-१०२

606 "I have often met, generally in the territory of some Raja, bands of these naked fakirs, hideous to behold ---- In this trim I have seen them shamelessly walk stark naked, through a large town, men, women and girls looking at them without any more emotion than may be created when a hermit passes through our streets Females would often bring them alms with much devotion, doubtless believing that they were holy personages, more chaste and discreet than other men" - Bernier p 317

607 फाहायान, भूमिका

"केचित् कर्म स्वयमहि जैत्र, केचि सुखार्थं कर्तहि अति वैत्र ।"

केचिसुखन किञ्च दिगम्बर मुनिषी का एक खास मूलगुण है, वह लिखा ही जा चुका है।  
इससे तब ही 1870 में हुये कवि लक्ष्मणजी जी के निम्न उल्लेख से लक्ष्मणजी दिगंबर  
मुनिषी का अपने मूलगुणों को फलन करने में पूर्णतः दस्तचित रहना प्रगट है:-

"धारे दिगम्बर तप भूय सब पद को परसे,  
दिये जपन वैराग्य लोकावरण को धरसे।  
जे भवि सेवे करन दिव्ये कर्मक करसारी,  
करे अप्य कल्पवृक्ष सुखदरभावन भावै ॥  
पंच महाव्रत धरे करे त्रिवसुन्दर गारी,  
निज अनुभी रसलीन परम-पद के सुविचारी।  
दसलक्षण निजधर्म नहि रत्नत्रयधारी ॥  
ऐसे श्री मुनिराज धरन पर जग-बलिहारी ॥"



धन्य मुनीश्वर आत्म हित में.....

धन्य मुनीश्वर आत्म हित में छोड़ दिया परिवार,।

कि तुमने छोड़ा सब घरबार ।।टेक।

काया की ममता को टारी, करते सहन परीषह भासी।

पञ्च महाव्रत के हो धारी, तीन रतन के बने भंडारी ॥

धन छोड़ा वैभव सब छोड़ा, समझा जगत असार ॥१॥

राग-द्वेष सब तुमने त्यागे, वैर विरोध हृदय से भागे।

परमात्म के हो अनुरागे, बैरी कर्म पलायन भागे ॥

सत सन्देश सुना भविजन क, करते बेड़ा पार ॥२॥

होय दिगम्बर वन में विचरते, निश्चल होय ध्यान जब करते।

निजपद के आनंद में झूलते, उपशम्य रस की धार बरसते ॥

मद्रा सौम्य निरख कर मस्तक, नमता बारम्बार ॥३॥

## ब्रिटिश-शासनकाल में दिगम्बर मुनि ।

"All shall alike enjoy the equal and impartial protection of the Law, and We do strictly charge and enjoin all those who may be in authority under us that they abstain from all interference with the religious belief or worship of any of our subjects on pain of our highest displeasure "

- Queen Victoria 608

महारानी विक्टोरियाने अपनी 1 नवम्बर सन् 1858 की घोषणा में यह बात स्पष्ट करदी है कि ब्रिटिश शासन की छत्र-छाया में प्रत्येक जाति और धर्म के अनुयायी को अपनी परम्परागत धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं को पालन करने में पूर्णस्वाधीनता होगी और कोई भी सरकारी कर्मचारी किसी के धर्म में हस्तक्षेप न करेगा। इस अवस्था में ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत दिगम्बर मुनियों को अपना धर्मपालन करना सुगम-साध्य होना चाहिये और वह प्रायः सुगम रहा है।

गत ब्रिटिश शासन काल में हमें कई एक दिगम्बर-मुनियों के होने का पता चलता है। स 1870 में ढाका शहर में श्री नरसिंह नामक मुनि के अस्तित्व का पता चलता है।<sup>609</sup> इटावा के आसपास इसी समय मुनि विनय सागर व उनके शिष्यगण धर्मप्रचार कर रहे थे। लगभग पचास वर्ष पहले लेखक के पूर्वजों ने एक दिगम्बर मुनि महाराज के दर्शन जयपुर रियासत के फागी नामक स्थान पर किये थे। वह मुनिराज वहाँ पर दक्षिण की ओर से विहार करते हुये आये थे।

- दक्षिण भारत की गिरि-गुफाओं में अनेक दिगम्बर मुनि इस समय में ज्ञानध्यानरत रहें हैं। उन सबका ठीक-ठीक पता पालेना कठिन है। उनमें से कतिपयजो प्रसिद्धि में आ गये उन्हीं के नाम आदि प्रकट हैं। उनमें श्री चन्द्र कीर्तिजी महाराज का नाम उल्लेखनीय है। वह संभवतः गुरमडया के निवासी थे और जैनवादी में तपस्या करते थे। वह एक महान् तपस्वी कहे गये हैं। उनके विषय में विशेष परिचय ज्ञात नहीं है।<sup>610</sup>

608 Royal Proclamation of 1st Nov. 1858

609 "संवत् अष्टादश शतक व सतर बरस प्रमाण।

ढाका शहर सुहागण, देश बंग के नौहि। जैनधर्मधारक जिहां भावक अधिक सुहाहि। ---- तासु शिष्य विनयी विबुध हषधंद गुणधंत। मुनि नरसिंह धिनेयविधि पुस्तक एक लिखंत।।"

-- दि जैन बहा मंदिर का एक गुल्फा

610. दिनै., वर्ष ६ अंक १ पृ २३

किन्तु उत्तर भारत के लोगों में सागर दिगम्बर मुनि श्री चन्द्रसागरजी का ही नाम पहले-पहल मिलता है। वह फत्त टन (सखरा) निवासी हुआजतीय पंथी ब्रह्म ब्रह्मक थे। स. 1969 में उन्होंने कुम्हण्डाग्राम (खोसापुर) में दिगम्बर मुनि श्री जिम्बरायजी के समीप क्षुल्लक के वन धारण किये थे। स. 1969 में इल्लतराष्ट्रान के महोत्सव के समय उन्होंने दिगम्बर मुनि के महाग्रन्थों को धारण करके नमन मुद्रा में सर्वत्र विहार करना प्रारंभ कर दिया। उनका विहार उत्तर भारत में आगरा तक हुआ प्रतीत होता है।<sup>611</sup>

सन् 1921 में एक अन्य दिगम्बर मुनि श्री आनन्दसागर जी का अस्तित्व उदकपुर (राजपूताना) में मिलता है। श्री ब्रह्मदेव केशरिया जी के दर्शन करने के लिये वह गये थे, किन्तु कर्मचारियों ने उन्हें जाने नहीं दिया था। उस पर, उपसर्ग आया जानकर वह ध्यान मादकर वहीं बैठ गये थे। इस सत्याग्रह के परिणाम-स्वरूप राज्य की ओर से उनको दर्शन करने देने की व्यवस्था हुई थी।<sup>612</sup>

किन्तु इनके पहले दक्षिण भारत की ओर से श्री अनन्तकीर्तिजी महाराज का विहार उत्तर भारत को हुआ था। वह आगरा, बनारस आदि शहरों में होते हुये शिखरजी की वदना को गये थे। आखिर ग्वालियर राज्यान्तर्गत मोरेना स्थान में उनका असाध्यिक स्वर्वास माघ शुक्ला पंचमी स 1974 को हुआ था। जब वह ध्यानलीन थे तब किसी भक्त ने उनके पास आग की अगीठी रख दी थी। उस आग से वह स्थान ही आग मई हो गया और उसमें उन ध्यानासुत मुनिजी का शरीर दग्ध हो गया। इस उपसर्ग को उन धीर वीर मुनिजी ने समभावों से सहन किया था। उनका जन्म स 1940 के लगभग निल्लोकर (कारकल) में हुआ था। वह मोरेना में सस्कृत और सिद्धान्त का अध्ययन करने की नियत से ठहरे थे, किन्तु अभाग्यवश वह अकाल काल-कवलित हो गये।

श्री अनन्तकीर्तिजी के अतिरिक्त उस समय दक्षिण भारत में श्री चन्द्रसागर जी मुनि मणिहली, श्री सनत्कुमार जी मुनि और श्री सिद्धसागरजी मुनि तेरवाल के होने का भी पता चलता है।<sup>613</sup> किन्तु पिछले पाच-छ वर्ष में दिगम्बर मुनिमार्ग की विशेष वृद्धि हुई है और इस समय निम्नलिखित सद्य विद्यमान हैं, जिनके मुनिगण का परिचय इस प्रकार है -

(1) श्री ज्ञान्तिसागरजी का संघ - यह संघ इस समय उत्तर भारत में बहुत प्रसिद्ध है। इसका कारण यह है कि उत्तर भारत के कतिपय पण्डितगण इस संघ के साथ हो कर सारे भारतवर्ष में घूमे हैं। इस संघ ने गत चातुर्मास भारत की राजधानी दिल्ली में व्यतीत किया था। उस समय इस सग में दिगम्बर-मुद्रा को धारण किये हुये सात मुनिगण और कई क्षुल्लक-ब्रह्मचारी थे। दिगम्बर साधुओं में श्रीज्ञान्ति सागर ही मुख्य हैं। स. 1928 में उनका जन्म बेलगाम जिले के देनापुर-भोज नामक ग्राम में हुआ था। ज्ञान्तिसागरजी को

611 Ibid, p. 18-20

612 दिजे., वर्ष १४ अंक ५-६ पृ. ७

613. दिजे., विशेषांक वीर नि सं २४४३

तब लोग सत गौड़ा पार्टीस कहते थे। उनकी नौ वर्ष की आयु में एक पाँच वर्ष की बच्चा के साथ उनका ब्याह हुआ था। और इस घटना के 7 महीने बाद ही वह बाल-पत्नीकरण कर गई थी। तबसे वह बराबर ब्रह्मचर्य का अभ्यास करते रहे। उनका मन वैराग्य-भक्त में मन रहने लगा। जब वह अठारह वर्ष के थे, तब एक मुनिराज के निकट से ब्रह्मचारी षड को उन्होंने ग्रहण किया था। सं. 1969 में उत्तरप्रान्त में विराजमान दिगम्बर मुनि श्री वैशेन्द्र कीर्तिजी के निकट उन्होंने कुल्स्क का व्रत ग्रहण किया था। इस घटना के चार वर्ष बाद संवत् 1973 में कुंभोज के निकट बाहुबलि नामक पहाड़ी परित्यक्त श्री दिगम्बर मुनि अकलीकरवामी के निकट उन्होंने ऐलकपद धारण किया था। सं 1973 में वेरनाल में पंचकल्याणक-महोत्सव हुआ था। उसमें वह भी गये थे। जिस समय दीक्षाकल्याणक महोत्सव सम्पन्न हो रहा था, उस समय उन्होंने भोस्मी के निर्गम मुनि महाराज के निकट मुनिदीक्षा ग्रहण की थी।<sup>614</sup> तबसे वह बराबर एकान्त में ध्यान और तपक अभ्यास करते रहे थे। उस समय वह एक खासे तपस्वी थे। उनकी शान्त मनोवृत्ति और योगनिष्ठा ने उत्तर म्भारत के विद्वानों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया। कई पंडित उनकी सगति में रहने लगे। आखिर उनके शिष्य कई उद्यारीन श्रायक हो गये, जिनमें से कतिपय दिगम्बर मुनि और ऐलक कुल्स्क के व्रतों का पालन करने लगे। इस प्रकार शिष्य-समूह से वेष्टित होने पर उन्हें "आचार्य" पद से सुशोभित किया गया और फिर बम्बई के प्रसिद्ध सेठ घासीराम पूर्णचन्द्र जौहरी ने एक यात्रा संघ सारे भारत के तीर्थों की कन्दना के लिये निकालने का विचार किया। तदनुसार आचार्य शान्तिसागरजी की अध्यक्षता में वह संघ तीर्थ यात्रा के लिये निकल पड़ा। महाराष्ट्र के सांगली-मिरज आदि रिवासतों में जब वह सग पहुंचा या तब वहां के राजाओं ने उसका अथवा स्वागत किया था। निजाम सरकार ने भी एक खास हुकुम निकाल कर इस संघ को अपने राज्य में कुशलतापूर्वक विहार कर जाने दिया था। भोपाल राज्य में होकर वह संघ मध्यप्रान्त होता हुआ श्री शिखर जी फरवरी सन् 1927 में पहुंचा था। वहां पर बड़ा भारी जैन सम्मेलन हुआ था। शिखरजी से वह संघ कटनी, जबलपुर, खजुराहो, कानपुर, झांसी, आगरा, धौलपुर, मथुरा, फिरोजाबाद, पठा, बाबरत, अलाहाबाद, बरगनपुर, मुजफ्फरपुर आदि शहरों में होत हुआ दिल्ली पहुंचा था। दिल्ली में वर्षा-योग पूरा करके अब वह संघ अलाहाबाद की ओर विहार कर रहा था और उसमें वे साधुगण मौजूद हैं -

(1) श्री शान्तिसागरजी आचार्य (2) मुनि घंटेसागर (3) मुनि झूतरसागर (4) मुनि वीरसागर (5) मुनि नमिसागर (6) मुनि ज्ञानसागर।

614 दिजे., वर्ष १६ अंक १-२ पृ. ६

615 हुकुम नं. ६२८ (तीर्थ संशोधनी) १३४० पृ. ११

(2) दूसरा संघ श्री सूर्यसागर जी का राजा का है, जो अपनी साधवी और धार्मिकता के लिये प्रसिद्ध है। सूर्य में इस संघ का पितामह चातुर्मास सूरत था। उस समय इस संघ में मुनि सूर्यसागरजी के अतिरिक्त मुनि अजितसागर जी, मुनि धर्मसागर जी और ब्रह्मचारी भास्करदास जी थे। सूर्य से इस संघ का विहार उसी और हो रहा है। मुनि सूर्यसागरजी गृहस्थ दशा में श्री हजारीनाथ के नाम से प्रसिद्ध थे। वह चेरवाह जाति के ब्रह्मसापटन निवासी ब्राह्मण थे। मुनि शान्तिसागर जी छाणी के उपदेश से निराश्रय साधु दूये थे।

(3) तीसरा संघ मुनि शान्तिसागर जी छाणी का है, जिसका गत चातुर्मास हंडर में हुआ था। तब इस संघ में मुनि मल्लिसागर जी, ब. फादरसागर जी और ब. लक्ष्मीचंद जी थे। मुनि शान्तिसागर जी एकान्त में ध्यान करने के कारण प्रसिद्ध है। वह छाणी (उदवपुर) निवासी दश गृह जाति के रत्न हैं। भादव शुक्ल १४ सं. १९७६ को उन्होंने दिगम्बर-वेध धारण किया था। उन्होंने भुखिया (बासवाहा) के ठाकुर कूरसिंह जी साबब को जैनधर्म में दीक्षित करके एक आदर्श कार्य किया है।

(4) मुनि आदिसागर जी के चौथे संघ ने उदात्त में पिछली कर्पा पूर्ण की थी। उस समय इनके साथ मुनि मल्लिसागर जी व सुल्लक सूरिसिंह जी थे।

(5) गत चातुर्मास में श्री मुनीन्द्रसागर जी का पांचवा संघ मांडवी (सूरत) में मौजूद रहा था। उनके साथ श्री देवेन्द्रसागरजी तथा विजयसागर जी थे। मुनीन्द्रसागर जी खलितपुर निवासी और परवार जाति के हैं। उनकी आयु अधिक नहीं है। वह श्री शिखरजी आदि तीर्थंकी कन्दना कर चुके हैं।

(6) छठा संघ श्री मुनि पायसागरजी का है, जो दक्षिण-भारत की ओर ही रहा है। इनके अतिरिक्त मुनि ज्ञानसागर जी (खैराबाद), मुनि आनन्दशाबरजी आदि दिगम्बर-साधुगण एकान्त में ज्ञान ध्यान का अभ्यास करते हैं। दक्षिण-भारत में उनकी संख्या अधिक है। ये सब ही दिगम्बर मुनि अपने प्राकृत वेध में सारे देश में विहार करके धर्मप्रचार करते हैं। ब्रिटिश भारत और रियासतों में ये बेरोकटोक धूमें हैं; किन्तु यत्वर्य काठियावाह के कमिश्नर ने अज्ञानता से मुनीन्द्रसागर जी के संघ पर कुछ आदमियों के घेरे में चलने की पाबन्दी लगा दी थी; जिसका विरोध अखिल भारतीय जैनसमाज ने किया था और जिसको रद्द कराने के लिये एक कमेटी भी बनी थी।

सच बात तो यह है कि ब्रिटिश राज की नीति के अनुसार किसी भी सरकारी कर्मचारी को किसी के धार्मिक मामले में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है और भारतीय कानून की रू से भी प्रत्येक सम्प्रदाय के मनुष्यों को यह अधिकार है कि वह किसी अन्य सम्प्रदाय या राज्य के हस्तक्षेप बिना अपने धार्मिक रीति-रिवाजों का पालन विविध-रूप से करे। दिगम्बर जैन मुनियों का नानवेश कोई नई बात नहीं है। प्राचीनकाल से जैनधर्म में उसकी मान्यता चलती आई है और भारत के मुख्य धर्मों तथा सज्जों ने उसका सम्मान किया है, वह बात पूर्व फूटों के अवलोकन से स्पष्ट है। इस अवस्था में दुनिया की कोई भी सरकार या व्यवस्था इस प्राचीन धार्मिक रिवाज को रोक नहीं सकती। जैन साधुओं का यह अधिकार

है कि वह सारे कस्बों का त्याग करें और गृहस्थों का वह इक है कि वे इस नियम को अपने साधुओं द्वारा निश्चित पाले जाने के लिये व्यवस्था करें, जिसके बिना मोक्ष सुख निरन्तर दुर्लभ है।

इस विषय में यदि कानूनी नज़ीरों पर विचार किया जाय तो प्रमोद होता है कि प्रिवी-कौन्सिल (Privy Council) ने सब ही सम्प्रदायों के अनुष्ठानों के लिये अपनी धर्म सम्बन्धी जुलूसों को आम सहकों पर निकालना जायज करार किया है। निम्न उदाहरण इस बात के प्रमाण है। प्रिवी कौन्सिल ने मन्जूर हसन बनाम मुहम्मदजमन के मुकदमे में तय किया है कि :-

"Persons of all sects are entitled to conduct religious processions through public streets, so that they do not interfere with the ordinary use of such streets by the public and subject to such directions the Magistrate may lawfully give to prevent obstructions of the through fare or breaches of the public peace, and the worshippers in a mosque or temple, which abutted on a high road could not compel processions to intermit their worship while passing the mosque or temple on the ground that there was a continuous worship there" (Manzur Hasan Vs Mohammad Zaman, 23 All Law journal, 179)

भाषार्थ - "प्रत्येक सम्प्रदाय के अनुष्ठान अपने धार्मिक जुलूसों को आम रास्तों से ले जाने के अधिकारी हैं, बशर्ते कि उससे साधारण जनता को रास्ते के व्यवहार करने में दिक्कत न हो और मजिस्ट्रेट की उन सूचनाओं की पाबन्दी भी हो गई हो जो उसने रास्ते की स्कावट और अशान्ति न होने के लिये उपस्थित की हों। और किसी मस्जिद या मन्दिर में, जो रास्ते पर स्थित हो, पूजा करने वाले लोग जुलूस निकालने वालों को जबकि वह मन्दिर या मस्जिद के पास से निकलते, मात्र इस कारण कि उस समय वहाँ पूजा हो रही है उन की जुलूसी पूजा को बन्द करने पर मजबूर नहीं कर सकते।"

इस सम्बन्ध में "पारवसादी आयंगर बनाम चिन्हकृष्ण आयंगर" की नज़ीर भी दृष्टव्य है। (Indian Law Report, Madras, Vol Vp 309) शुद्धम चेट्टी बनाम महाराणा के मुकदमे में यही उसूल साफ शब्दों में इससे पहले भी स्वीकार किया जा चुका है। (ILR VI p 203) इस मुकदमे के फैसले में पृष्ठ 209 पर कहा गया है कि जुलूसों के सम्बन्ध में यह देखना चाहिये कि अगर वह धार्मिक हैं और धार्मिक अंशों का उद्देश्य किया जाना जरूरी है, तो एक सम्प्रदाय के जुलूस को दूसरे सम्प्रदाय के पूज्य-स्थान के पास से न निकलने देना उसी तरह की सख्ती है जैसे कि जुलूस के निकलने के वक्त उपासना मन्दिर में पूजा बन्द कर देना।

मुकदमा सदागोपाध्याय बनाम रामाराव (IL.R.VI p. 376) में भी यही राय जादिर की गई है। इन्डियन ला जर्नल (भा 23 पृ 180) पर प्रिवी कौन्सिल के जज म्हादिय

ने लिखा है कि भारतवर्ष में ऐसे जुलूसों के जिनमें मंडकवी रस्म अदा की जाती है सरसह निवृत्तों के अधिकारों के सम्बन्ध में एक तर्जवीज करण करने की जरूरत मालूम होती है क्योंकि भारतवर्ष में आला अदालतों के फैसले इस विषय में एक दूसरे के खिलफ हैं। सवाल यह है कि किसी धार्मिक जुलूस को मुन्सिब व जजरी विनय के साथ शाह-राह-आम से निकलने का अधिकार है ? मान्य जज महोदय इसका फैसला स्वीकृति में देते हैं अर्थात् लोगों को धार्मिक जुलूस आम-रास्तों से लेजाने का अधिकार है।”

मुकदमा शंकरसिंह बनाम सरकार कैसरे हिन्द (Al Law Journal Report 1929 pp 180-182) जेर-दफा 30 पुलिस एक्ट न 5 सन् 1861 में यह तर्जवीज हुआ कि तरतीब-व्यवस्था देने का मतलब मनाई नहीं है। मजिस्ट्रेट जिला की राय थी कि गाने-बजाने की मनाई सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस ने उस अधिकार से की थी जो उसे दफा 30 पुलिस - एक्ट की रू से मिला था कि किसी त्योंहार या रस्म के मौके पर जो गाने-बजाने आम-रास्तों पर किये जावें उनको किसी हद तक सीमित करदे। मैं (जज हाई कोर्ट) मजिस्ट्रेट जिला की राय से सहमत नहीं हू कि शब्द व्यवस्था का भाव हर प्रकार के बाजे की मनाई है। व्यवस्था देने का अधिकार उसी मामले में दिया जाता है जिसका कोई अस्तित्व हो। किसी ऐसे कार्य के लिये जिसका अस्तित्व ही नहीं है, व्यवस्था देने की सूचना बिल्कुल व्यर्थ है। उदाहरणतः आने जाने की व्यवस्था के सम्बन्ध में सूचना से आने जाने के अधिकार का अस्तित्व सम्भवन अनुमान किया जायेगा। उसका अर्थ यह नहीं है कि पुलिस अफसरान किसी व्यक्ति को उसके घर में बन्द रखने या उसका आना-जाना रोक देने के अधिकारी हैं।

दफा 31 पुलिस एक्ट की रू से पुलिस को आम रास्तों, सड़कों, गलियों, घाटों आदि पर आने-जाने के सब ही स्थानों में शान्ति स्थिर रखने का अधिकार है। बनारस में इस अधिकार के अनुसार एक हुक्म जारी किया गया था कि खास सम्प्रदाय के लोग यात्रावालों (पहों) को, जो इस पवित्र नगर की यात्रा के लिये लोगों का पथ प्रदर्शन करते हैं, रेल्वे स्टेशन पर जाने की मनाई है। इस मुकदमें में हाई कोर्ट इलाहाबाद के योग्य जज महोदय ने तर्जवीज किया कि किसी स्थान पर शान्ति स्थिर रखने के अधिकारों के बल पर किसी खास सम्प्रदाय के लोगों को किसी खास जगह पर जाने की आम मुमानियत करने का सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस को अधिकार न था। इस तर्जवीज के कारण वही थे जो बमुकदमा सरकार बनाम किशन लाल में दिये गये हैं। शान्ति स्थिर रखने का भाव आदमियों को घरों में बन्द करने का नहीं है।<sup>616</sup>

यही विज्ञापित्या दि जैन साधुओं से भी सम्बन्ध रखती है। वह चाहे अकेले निकले और चाहे जुलूस की शक्त में, सरकारी अफसरों का कर्तव्य है कि उनके इस हक को न रोके। दिगम्बर जैन साधुगण सारे ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों में स्वतन्त्रता से

कराकर धूमसे रोते हैं, कहीं कोई लोक-लोक नहीं दुर्लभ और न इस सम्बन्ध में किसी को कोई शिकायत हुई। अत्यन्त सरकारी अफसरों का तो यह प्यार करीब है कि वे सिगमर सुनिषे को अपना धर्म पालन करने में सहायता पहुँचाये। मरा काल में जितने भी शासक यहां हुये उन्होंने बड़ी किया, इसलिये अब इसके विरुद्ध कितने शासक कोई भी बर्बाद करने के अधिकारी नहीं हैं। उनको तो जैनों का अपना धर्म निर्वाह पालने बेज ही उचित है। ●

जिन राग-दोष त्यागा वह सतगुरु  
 जिन राग-दोष त्यागा, वह सतगुरु हमारा ॥१॥  
 तज राजभ्रष्ट तृणवत, निज काज सम्भारा ॥१॥  
 रहता है वह वनखण्ड में, धरि ध्यान कुठारा।  
 जिन मोह महा तरु को, जड़मूल उखारा ॥२॥  
 सदांग तज परिग्रह, दिक् अम्बर धारा।  
 अनन्त ज्ञान गुन समुद्र, चारित्र भण्डारा ॥३॥  
 शुकलाग्नि को प्रजाल के, बसु कानन जारा।  
 ऐसे गुरु को 'दौल' है, नमोऽस्तु हमारा ॥४॥

## दिगम्बरत्व और आधुनिक विद्वान्

"मनुष्य मात्र की आदर्श-स्थिति दिगम्बर ही है। नुस्ते स्वयं नग्नोवस्या हीय है।"

- न. बांधी

संसार के सर्वश्रेष्ठ पुष्प दिगम्बरत्व को मनुष्य के लिये प्राकृत सुसंगत और आवश्यक समझते हैं। भारत में दिगम्बरत्व का महत्व प्राचीन काल से माना जाता रहा है। किन्तु अब आधुनिक सभ्यता की लीलास्थली यूरोप में भी उसको महत्व दिया जा रहा है। प्राचीन यूनान-वासियों की तरह जर्मनी, फ्रान्स और इंग्लैण्ड आदि देशों के मनुष्य नग्न रहने में स्वास्थ्य और सदाचार की वृद्धि हुई मानते हैं। वस्तुतः बात भी यही है। दिगम्बरत्व यदि स्वास्थ्य और सदाचार का पोषक न हो तो सर्वज्ञ जैसे धर्मपूर्वक मोक्ष-मार्ग के साधनरूप उसका उपदेश ही क्यों देंगे ? मोक्ष को पाने के लिये अन्य आवश्यकताओं के साथ नंगा तन और नंगा मन होना भी एक मुख्य आवश्यकता है। श्रेष्ठ शरीर ही धर्म-साधन का मूल है और सदाचार धर्म की जान है। तथा यह स्पष्ट है कि दिगम्बरत्व श्रेष्ठ स्वस्थ शरीर और उत्कृष्ट सदाचार का उत्पादक है। अब भला कहिये वह परम-धर्म की आराधना के लिये क्यों न आवश्यक माना जाय आधुनिक सभ्य-संसार आज इस सत्य को जान गया है और वह उसका मनसा वाचा कर्मणा का कायल है।

यूरोप में आज सैकड़ों सभायें दिगम्बरत्व के प्रचार के लिये खुली हुई हैं जिनके हजारों सदस्य दिगम्बर वेप में रहने का अभ्यास करते हैं। बेडल्ल स्कूल, पीटर्स फील्ड (हैम्पशावर) में बैरिस्टर-डाक्टर इजिनियर, शिक्षक आदि उच्च शिक्षा प्राप्त महानुभाव दिगम्बर वेप में रहना अपने लिये हितकर समझते हैं। इस स्कूल के मंत्री श्री बर्फोर्ड (Mr N F Barford) कहते हैं कि -

Next year, as I say, we shall be even more advanced, and in time people will get quite used to the idea of wearing no clothes at all in the open and will realise its enormous value to health, (Amrita Bazar Patrika, 8-8-31)

भाव यही है कि एक साल के अन्दर नग्न रहने की प्रथा विशेष उन्नत हो जायेगी और सम्मानानुसार लोगों को खुले आम कपड़े पहनने की आवश्यकता नहीं रहेगी। उन्हें नग्न रहने से स्वास्थ्य के लिये जो अभिमत लाभ होगा वह तब ज्ञात होगा।

इस प्रकार संसार में जो सभ्यता पुज रही है उसकी यह स्पष्ट घोषणा है कि मनुष्य जाति को स्वस्थ रखने के लिये कर्मों की तिलाजलि देनी पड़ेगी। नग्नता रोगियों के लिये ही केवल एक महान् औषधि नहीं है, बल्कि स्वस्थ जीवों के लिये भी अत्यन्त आवश्यक है। स्विटजरलैंड के नगर लेक्सन (Leysen) निवासी डा० रोलिएर (Dr. Rollier) ने केवल नग्नचिकित्सा द्वारा ही अनेक रोगियों को अरोग्यता प्रदान कर जगत में हस्तक्षर मचा दी है। उनकी चिकित्सा प्रणाली का मुख्य अंग है स्वच्छ वायु अथवा धूप में नगे रहना, नगे टहलना और नगे दौड़ना। जगतविख्यात् ग्रंथ इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में नग्नता का बड़ा भारी महत्व वर्णित है।<sup>617</sup> वास्तव में डाक्टरों का यह कहना कि जब से मनुष्य जाति कर्मों के लपेट में लिपटी है तब से ही सर्दी, जुकाम, क्षय आदि रोगों का प्रादुर्भाव हुआ है, कुछ सत्य-सा प्रतीत होता है। प्राचीन काल में लोग नगे रहने का महत्व जानते थे और दीर्घजीवी होते थे।

किन्तु दिग्भरत्व स्वास्थ्य के साथ-साथ सदाचार का भी पोषक है। इस बात को भी आधुनिक विद्वानों ने अपने अनुभव से स्पष्ट कर दिया है। इस विषय में श्री ओलिएर हर्स्ट सा "The New Statesman and Nation" नामक पत्रिका में प्रकट करते हैं कि अन्तत अब समाज बाईबिल के पहिले अध्याय के महत्व को (जिसमें आव्रम और हवा के नगे रहने का जिक्र है) समझने लगी है और नग्नता का भय अथवा झूठी लज्जा मन से दूर होती जा रही है। जर्मनी भर में बीसों ऐसी सोसाइटिया कायम हो गई हैं जिनमें मनुष्य पूर्ण नग्नतास्था में स्वच्छ वायु का उपयोग करते हुये नाना प्रकार के खेल खेलते हैं। वे नग्न रहना प्राकृतिक, पवित्र और सरल समझते हैं। शताब्दियों से जिसके लिये उद्यम हो रहा था, वह यही पवित्रता का आन्दोलन है। यह पवित्रता कैसी है ? इसको स्वयं उनके निवास-स्थान गैलैन्ड (Gelande) के देखने से जाना जा सकता है, जबकि वहाँ सैकड़ों स्त्री पुरुष, बालक बालिकायें आनन्द मय स्वाधीनता का उपभोग करते दृष्टि पड़ें। ऐसे दृश्य के देखने से मन पर क्या असर पड़ता है, वह बताया नहीं जा सकता। जिस प्रकार कोई मैल कुधेला आदमी स्नान करके स्वच्छ दिखाई दे, ठीक उसी तरह वह दृश्य सर्व प्रकार के सूक्ष्म अंतरंग-विषयों से शून्य दिखाई पड़ेगा। ऐसे पवित्र मानवों के सामने जो कस्त्रधारी होगा वह लज्जा को प्राप्त हो जायेगा। ऐसे आनन्दमय वातारण में ताजी हवा और धूप का जो प्रभाव शरीर पर पड़ता है उसको सर्वसाधारण अच्छी तरह जान सकते हैं, परन्तु जो मानसिक तथा आत्मीक लाभ होता है, वह विचार के बाहर है। यह क्रान्ति दिनों दिन बढ़ रही है और कभी अखन्त नहीं हो सकती। मानवों की उन्नति के लिये यह सर्वोत्कृष्ट भेट जर्मनी संसार को देगा, जैसे उसने आपेक्षिक-सिद्धांत उसे अर्पण किया है। बर्लिन में जो अभी इन सोसाइटियों की सभा हुई थी उसमें भिन्न-भिन्न नगरों के 3000 सदस्य शरीक हुये थे। उसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों और राष्ट्रीय कौन्सिल के सदस्यों ने अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ देखा था। उन स्त्रियों के भाव उसे देखकर बिल्कुल बदल

गये। नरनरत का विरोध करने के लिये कोई हेतु नहीं है, जिस पर वह टिक सके। जो इसका विरोध करता है, वह स्वयं अपने भावों की गन्तव्यी प्राप्त करता है। किन्तु यदि वह इन लोगों के निरन्तर स्मरण को गौर से देखे तो उसे अपना विरोध छोड़ देना होगा। वह देखेगा कि सैकड़ों स्त्री-पुरुषों-भ्राता, पिता और बच्चों ने कैसी पवित्रता प्राप्त कर ली है।<sup>618</sup>

अतःसं पश्चात्त विद्वानों की अनुभव पूर्ण संवेक्षण से दिगम्बरत्व का महत्व स्पष्ट है। दिगम्बरत्व मनुष्य की आदर्श स्थिति है और वह धर्म मार्ग में उपादेय है, यह पहले भी लिखा जा चुका है। स्वस्थ और सदाचार के पोषक नियम का वैशानिक धर्म में आदर होना स्वाभाविक है। जैनधर्म एक धर्म विज्ञान है और वह दिगम्बरत्व के सिद्धान्त का प्रचारक अनादि से रहा है। उसके साधु इस प्राकृत वेप में शील धर्म के उत्कृष्ट पालक और प्रचारक तथा इन्द्रियजयी योगी रहे हैं, जिनके सम्मुख सम्राट छन्दगुप्त मौर्य और सिकन्दर महान् जैसे शासक नतमस्तक हुये थे और जिन्होंने सदा ही लोक का कल्याण किया, ऐसे ही दिगम्बर मुनियों के संसर्ग में आवे हुये अथवा मुनिधर्म से परिचित आधुनिक विद्वान् भी आज इन तपोधन दिगम्बर मुनियों के चरित्र से अत्यन्त प्रभावित हुये हैं। वे उन्हें राष्ट्र की बहुमूल्य वस्तु समझते हैं। देखिये साहित्याचार्य श्रीकन्नोमल जी एम. ए. जज उनके विषय में लिखते हैं कि "मैं जैन नहीं हूँ, पर मुझे जैन साधुओं और गृहस्थों से मिलने का बहुत अवसर मिला है। जैनसाधुओं के विषय में बिना किसी सकोच के कह सकता हूँ कि उनमें शायद ही कोई ऐसा साधु हो, जो अपने प्राचीन पवित्र आदर्श से गिरा हो। मैं तो जितने साधु देखे उनसे मिलने पर चित्त में बड़ी प्रभाव पड़ा कि वे धर्म, त्याग, अहिंसा तथा सदुपदेश की मूर्ति हैं। उनसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता होती है।"<sup>619</sup> बंगाली विद्वान श्री बरदाकान्त मुख्योपाध्याय एम. ए. इस विषय में कहते हैं -<sup>620</sup>

"घौदह आभ्यन्तरिक और दशवाहय परिग्रह परित्याग करने से निर्गन्थ होते हैं। जब वे अपनी नगनावस्था को विस्मृत हो जाते हैं तब ही भवसिन्धु से पार हो सकते हैं। (उनकी) नगनावस्था और नग्न मूर्तिपूजा उनका प्राचीनत्व सप्रमाण सिद्ध करती है, क्योंकि मनुष्य आदिम अवस्था में नग्न थे।"

महाराष्ट्रीय विद्वान् श्री वासुदेव गोविन्द आपटे बी. ए. ने एक व्याख्यान में कहा था कि "जैनशास्त्रों में जो यतिधर्म कहा गया है वह अत्यन्त उत्कृष्ट है, इसमें कुछ भी शक नहीं है।"<sup>621</sup> प्रो. डा. शेषागिरि राव, एम. ए. पी. एच. डी. बताते हैं कि -<sup>622</sup>

- 
- 618 जैमि, वर्ष ३३ पृ. ७१२  
 619 दिनु, पृ. २३  
 620 जैम, पृ. १५२  
 621 जैम, पृ. ५७  
 622 SSJ, pt. II, p. 30

"(The Jaina) faith helped towards the formation of good and great character helpful to the progress of Culture and humanity. The leading exponents of that faith continued to live such lives of hardy discipline and spiritual culture etc."

भावार्थ - "जैनधर्म संस्कृति और मानवसमाज की उन्नति के लिये उत्कृष्ट और महान् खासिज को निर्माण कराने में सहायक रहा है। इस धर्म के आचार्य सदा की भांति तपस्व्यरूप और आत्मविकास का उन्नत जीवन व्यतीत करते रहे।"

ईसाई मिशनरी ए ह्यूबोई सा. ने दिगम्बर मुनियों के सम्बन्ध में कहा था कि :-

"सबसे उच्चपद जो कि मनुष्य धारण कर सकता है वह दिगम्बर मुनि का पद है। इस अवस्था में मनुष्य साधारण मनुष्य न रहकर अपने ध्यान के बल से परमात्मा का मानो अंश हो जाता है। . . . जब मनुष्य निर्वाणी (दिगम्बर) साधु हो जाता है तब उसकी इस संसार से कुछ प्रयोजन नहीं रहता और वह पुण्य-पाप, नैकी-बदी को एक ही वृष्टि से देखता है-उसको संसार की इच्छायें तथा तृष्णायें नहीं उत्पन्न होती हैं। न वह किसी से राग और न द्वेष करता है। वह बिना दुःख मालूम किये सर्व प्रकार के उपसर्गों को सहन कर सकता है। . . . अपने आत्मिक भावों में जो भी ज्ञ हो उसके क्यो इस संसार की और उसकी निस्सार क्रियायों की चिन्ता होगी।"<sup>623</sup>

एक अन्य महिला मिशनरी श्री स्टीकेसन ने अपने ग्रंथ "हार्ट आव जेनीज्म" में लिखा है कि -

"Being rid of clothes one is also rid of a lot of other worries, no water is needed in which to wash them Our knowledge of good and evil, our knowledge of nakedness keeps us away from salvation. To obtain it we must forget nakedness. The Jain Nirgranthas have forgot all knowledge of good and evil Why should they require clothes to hide their nakedness ?" (Heart of Jainism, p 36)

भावार्थ - "वस्त्रों की झंझट से छूटना, हजारों अन्य झंझटों से छूटना है। कपड़े धोने के लिये एक दिगम्बर वैषी को पानी की जरूरत नहीं पड़ती। वस्तुतः पापपुण्य का भान ही नम्रता का ध्यान ही मनुष्य को मुक्त नहीं होने देता। मुक्ति पाने के लिये मनुष्य को नम्रता का ध्यान भुला देना चाहिये। जैन निर्गन्थों ने पापपुण्य के भान को भुला दिया है। भला उन्हें अपनी नम्रता छिपाने के लिये वस्त्रों की क्या जरूरत ?"

सन् 1927 में जब लखनऊ में दिगम्बर मुनिसंघ पण्य तो श्री अल्फ्रेड जेकब्सॉन (Alfred Jacob Shaw) नामक एक ईसाई विद्वान् ने उसके दर्शन किये थे। वह लिखते हैं कि प्राचीन पुस्तकों में सम्प्रतिविधि पर दिगम्बर मुनियों के ध्यान करने बाबत क्या ऊपर या लेखिम ऐसे साधुओं को देखने का अवसर अजिताशन में ही मिला। क्या वार दिगम्बर मुनि ध्यान और तपस्य में लीन थे। अगली जनती हुई छत पर बिना किसी वस्त्र के वत ध्यान कर रहे थे। उनसे पूछा तो उन्होंने कहा कि उन परमात्मस्वरूप आत्मा के ध्यान में लीन रहते हैं। इसे बाहरी दुनियों की शक्तों और दुःख सुख से क्या मतलब ? कदापि मैं पक्का ईसाई हूँ पर तो भी मैं कबूत कि इन साधुओं का सम्बन्ध हर साधुवाद के कणुष्यों को करना चाहिये। उन्होंने संसार के सभी सम्बन्धों को त्याग दिया है और एक मात्र मोक्ष की साधना में लीन हैं।" 624

संघमुच इन विद्वान् को उक्त कथन दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनियों की महिमा का स्वतः छोटक है। यदि विद्वान् ग्रीन् पाठक तनिक इस विषय पर गम्भीर विचार करेंगे तो वह भी मनता के मरुत और मन साधुओं के स्वरूप को मोक्ष प्राप्ति के लिये आवश्यक जान जायेगे। कविवर वृन्दावन के शब्द स्वतः उनके हृदय से निकल पडेगें -

"बसुर नवन मुनि हरसत,  
उमग उर सरसत ।  
गुतिगुति करि नव हरसत,  
तरल नवन जल वरसत ।।"

# उपसंहार ।

वाद्यो गन्धोऽप्यङ्गानामन्तरो विष्वेष्टिषा ।

निर्गोहस्तत्र विग्रह्यः पांशुः शिबरोऽर्धतः ॥ - कवि आनन्दधर 625

“यह शरीर वाद्य परिग्रह है और स्पर्शनादि इन्द्रियों के विषयों में अभिलाषा रखना अन्तरंग परिग्रह है। जो साधु इन दोनों परिग्रहों में ममत्व-परिणाम नहीं रखता है, परमार्थ से वही परिग्रह-रहित गिना जाता है। तथा वही निर्द्वेष नगर व मोक्ष में पहुँचने के लिये पाथ अर्थात् नित्य गमन करने वाला माना जाता है। इसका कारण यह है कि मोक्षमार्ग में निरन्तर गमन करने की सामर्थ्य एक मात्र यथाजात-स्वधारी निर्गन्धि ही के है। जो मनुष्य शरीर-रक्षा और विषय कषायों की द्रिशाओं में फंसकर पराधीन बना हुआ है, भन्ना वह साधु पद को कैसे धारण कर सकता है ? और जब दिगम्बर वेप को धारण करके वह साधु नहीं हो सकता तो फिर उसका निरन्तर मोक्षमार्ग पर गमन करना अथवा मोक्ष-पद को पालेना कैसे सम्भव है ? इसीलिये दिगम्बरत्व को महत्त्व देकर मुमुक्षु शरीर से नाता तोड़ लेते हैं और नगो तन तथा नगो मन होकर आत्म-स्वातन्त्र्य को पाल लेते हैं। शास्वत-सुख को दिलाने वाला यही एक राजमार्ग है और इसका उपदेश प्रायः ससार के सबही मुख्य-मुख्य मत प्रवर्तकों ने किया था।

मनोविज्ञान की दृष्टि से जरा इस प्रश्न पर विचार कीजिये और फिर देखिये दिगम्बरत्व की महिमा। जिसका मन शरीर में अटका हुआ है, जो लज्जा के बन्धन में पड़ा हुआ है और जो साधु वेप को धारण कर के भी साधुता का नहीं पा पाया है, वह दिगम्बरत्व के महत्त्व को क्या जाने ? मन की शुद्धि - भावों की विशुद्धता ही मुमुक्षु क लिये आत्मोन्नति का कारण है और वस्तुतः वही साक्षात् मोक्ष को दिलाने वाली है। किन्तु मन की यह विशुद्धता क्या बनावट और सजावट में नसीब हो सकती है ? वस्त्रादि परिग्रह के मोह में अटका हुआ प्राणी भला कैसे निर्गन्धि पद को पा सकता है ? इसीलिये ससार के तत्त्वज्ञानियों ने हमेशा दिगम्बरत्व का प्रतिपादन किया है। भगवान् ऋषभदेव के निकट में प्रथार में आकर यह महत सिद्धान्त आज तक बराबर मुमुक्षुओं का आत्मकल्याण करता आ रहा है और जब तक मुमुक्षुओं का अस्तित्व रहेगा बराबर वह कल्याण करता रहेगा।

दिगम्बरत्व मनुष्य को रंक से राव बना देता है। उसको पाकर मनुष्य देवता हो जाता है। लेकिन दिगम्बरत्व खाली नंगा-तन नहीं है। वह नगो होने से कुछ अधिक है। नगो तो पशु भी हैं पर उन्हें कोई नहीं पूजता ? इसका कारण है। वह यह कि मानव जगत जानना है कि पशुओं को अपने शरीर ढकने और विवेक से काम लेने की तमीज नहीं है। पशुओं ने



## परिशिष्ट

तुर्किस्तान के मुसलमानों में मानस्य आदर की कृति से देखा जाता है, यह बात पहले लिखी जा चुकी है। मिस्र लुसी मर्नेज़ की पुस्तक "Mysticism & Magic in Turkey" के अध्ययन से स्पष्ट है कि "पैगम्बर सा. ने एक रोख मुरीदों के संघ और मारफत की बातें अन्ही सा. को बत दी और कह दिया कि वह किसी को बतायें नहीं। इस बात से ४० दिन तक तो अली सा. उस युक्त संदेश को छुपाये रहे किन्तु फिर उसको मिस्र में दुपाये रखना असम्भव जानकर वह जंगल को भाग गये (पृष्ठ ११०)"। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि मुहम्मद सा. ने राजे-मारफत अर्थात् योग की बातें बताई थी, जिनको बाद में सूफी दरवेशों ने उन्नत बनाया था। इन दरवेशों में "अजालुलौब" और "अम्दाल" श्रेणी के फकीर बिल्कुल नग्न रहते हैं। (मि. जे. पी. ब्राउन नामक साहब को एक दरवेश मित्र ने खालिफअली की जियारतगाह में मिले हुए एक "अजालुलौब" दरवेश का हाल कहा था।) उसका नाम जमालुद्दीन कूफिय था। उसका शरीर मद्योले कटका था। और वह बिल्कुल नग्न (Perfectly naked) था। उसके बाल और दाढ़ी छोटे थे और शरीर कमजोर था। उसकी उम्र लगभग ४०-५० वर्ष की थी (पृ. ३६)। इन दरवेशों के संघ की ऐसी प्रसिद्धि है कि देश में चाहे कहीं बेरोकटोक घूमते हैं - कभी अर्द्धनग्न और कभी पूरे नग्न वे हो जाते हैं। जितने ही वह अर्द्धनग्न दिखते हैं उतने ही अधिक पबित्र और नेक वे गिने जाते हैं।

(The result of this reputation for sanctity enjoyed by Abdais is that they are allowed to wander at large over the country, sometimes half-clad, sometimes completely naked) वे अपने ज्ञान का प्रयोग खूब करते हैं। घर और साथियों से उन्हें मोह नहीं होता। वे मैदानों और पहाड़ों में जा सकते हैं। कहीं कनकलों पर गुजरान करते हैं। जंगल के बाँसवार जानवरों पर वे अपने अत्यात्मबल से अधिकार जमा लेते हैं। सारांशतः तुर्किस्तान में वह नग्न दरवेश प्रसिद्ध और पूज्य माने जाते हैं।

यूरोप में नग्न रहने का रिवाज जिनो दिन बढ़ता जा रहा है। जर्मनी में इस की खूब वृद्धि है। अब लोग इस आन्दोलन को एक विशेष उन्नत जीवन के लिए आवश्यक समझने लगे हैं। देखिये, २ फरवरी के "स्टेट्समैन" अखबार में यह ही बात कही गई है -

"Germany is at present challenging the traditional view that clothes are requisite for health and virtue. The habit of wearing only the sun and air at exercise is growing and the "Nudist" movement at first laughed at and blushed at else where, is now seriously studied as probably the way to a saner morality" - The Statesman, 2 2 32

भारतवर्ष में नग्न रहने का महत्त्व बहुत पहले ही समझा जा चुका है। विशेषों में अब यही बात पुनः कही जा रही है।

